प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२३

मूल्य : १२-००

© The Chowkhamba Vidya Bhawan,

Chowk, Varanasi-1 (India)

1966

Phone : 3076

प्रधान कार्यालय :—

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

गोपाल मन्दिर लेन,

पो० आ० चौखम्बा, पोस्ट बाक्स ८, वाराणसी-१

THE

VIDYABHAWAN AYURVEDA GRANTHAMALA

48

KRIYĀTMAKA AUṢADHIPARICHAYA VIJÑĀN

(Practical Pharmacognosy in Ayurveda With Illustrations)

By

SRI VISHWANATH DWIVEDI

B. A., Ayurveda Shastracharya, (B. H. U. Varanasi),

Professor of Dravya Gun Vijñan in Post Graduate Training Centre and Director—Institute of Ayurvedic Studies and Research, Jamnagar. Dean of the Faculty of Ayurveda, Gujrat University, Ahamedabad.

THE

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI-1

1966

First Edition
1966
Price Rs 12-00

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers and Antique Book-Sellers
P. O. Chowkhamba, Post Box arian 8, Varanasi-1 (India)
Phone : 3144

परमपूज्य प्रातःस्मरणीय

सर्वतंत्रस्वतत्र, वैद्यसम्राट्, पद्मभूषण

गुरुदेव श्री सत्यनारायण जी शास्त्री

के

करकमलों मे

सादर समर्पित

भूमिका

(क्रियात्मक औषधि विवरण की आवश्यकता)

भारतवर्ष में आयुर्वेद के विद्यालय व महाविद्यालयों की संख्या कम नहीं है। कई स्टेटों मे आयुर्वेद विद्यालय सरकार द्वारा भी परिचालित है। कई प्रान्तों में ये आयुर्वेद व यूनानी के चिकित्सा वोर्डों द्वारा सम्बद्ध व साहाय्य प्राप्त भी हैं। विश्वविद्यालयों से भी कई सम्बद्ध हैं। इनमें दो प्रकार के पाठ्य-क्रम परिचालित है। एक वह जिनमें विशुद्ध आयुर्वेद का कोर्स पढ़ाया जाता है। दूसरे वे जिनमे मिश्रित कोर्स पढाया जाता है। दोनों प्रकार के विद्यालयों में द्रव्य गुण के विपय का पाठ्यक्रम केवल नाममात्र के क्रियात्मक आधारों पर शिक्षा देते हैं। इनके क्रियात्मक विवरण मे केवल मात्र औषधि दिखा देना ही या वहुत हुआ तो कहीं वनौषधि यात्रा करा करके पूरा समझ लिया जाता है। कुछ जगहों में तो इनका भी प्रबन्ध नही है। इस प्रकार एक-दो बार द्रव्य देखने से छात्र को सन्तोष नहीं होता, न स्मरण ही रह सकता है।

इधर बाज़ार में जो द्रव्य मिलते हैं उनमे मिलावट वहुत होती है। कौन द्रव्य शुद्ध है, कौन सा अशुद्ध है यह कहना सरल नहीं है। अतः उचित वस्तु का ज्ञान होना अशक्य-सा हो जाता है। कई द्रव्य व्यापारियों द्वारा टिकाऊ करने के लिये रंगे जाते है। किसी में तैल मिलाया जाता है। यथा : पारसीक यमानी व सोंठ में चूना मिलाकर सफेद वनाया जाता है। सीगिया को तैल में रंगने से पूर्व उसे गोमूत्र व काशीश के जल में भिगोया जाता है। कुछ विशेप विधि से तैयार होते हैं। यथा : कुटकी को वाजार मे लाने से पूर्व फरमेण्ट करके सुखा कर लाते हैं। तव रंग पीला होता है व सुगन्ध आती है। पुष्कर-मूल को उसके ऊपर के छिलके को छुडाकर तव वाजार में लाते हैं। इत्यादि।

अतः केवल एक वार के दर्शन से ही द्रव्य का ज्ञान नहीं हो पाता। संदिग्ध द्रव्यों की तो वात ही पृथक है। इस निमित्त आवश्यकता इस बात की पडती है कि छात्र को ठीक ज्ञान देने के लिये उसके दिखाने के वदले उसके रचनात्मक ज्ञान का भी विवरण जानना आवश्यक है। नकली वनाने वालों ने तो सारे परीक्षा के साधनों को निर्मूल वना रखा है। नकली चीजें परीक्षा में अधिक देर ठहरती है। असली मे वे लक्षण कम मिलते हैं यथा : शिलाजीत को ही ले लें तो नकली को सरलता से असली परीक्षा द्वारा मनवाया जा सकता है। अतः द्रव्य की अन्तःरचना व बाह्यरचना को देखकर व रासा-

यनिक परीक्षा द्वारा परीक्षा करके उसका परिचय करने पर द्रव्य का जो ज्ञान विद्यार्थी को रहता है वह रचना आदि देखकर भ्रम में नहीं पड़ सकता व परीक्षणों से परीक्षा करके द्रव्य लेने से नकली द्रव्य नहीं लिया जा सकता। अतः क्रियात्मक परिज्ञान का होना अत्यावश्यक मानकर इस पुस्तक का निर्माण किया गया है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इस विषय की शिक्षा के लिये विभिन्न प्रत्यक्ष परीक्षणों का ज्ञान कराया जाता है। प्रत्यक्ष दर्शन व क्रियात्मक स्वरूप परिचय से द्रव्य का ज्ञान मानसपटल पर देर तक अंकित रहता है। छात्र इस प्रकार प्रभावित भी बहुत होता है। आयुर्वेद के शिक्षक इसमें विशेष दिलचस्पी नही लेते। अतः विषय भी उनकी दृष्टि में नगण्य हो जाता है।

यही नहीं, आयुर्वेद में क्रियात्मक प्रत्यक्षीकरण न होने से आधुनिक चिकित्साशास्त्र की शिक्षा की तरह प्रभावशाली नहीं होता। अतः छात्र सदा मिश्रित कोर्स में अधिकतर आधुनिक विषयों की तरफ आकर्षित होते हैं और झुकाव भी उधर ही होता जाता है। अतः आवश्यकता है कि आयुर्वेद के विषय जो कि प्रत्यक्ष दृष्ट हैं आधुनिक विषयों की तरह रुचिपूर्ण बनाये जाँय।

इस क्रियात्मक विवरण में द्रव्य गुण के विषय को समुचित बनाने के लिये यह प्रयत्न किया गया है। इसमें की प्रकृष्ट पद्धति द्वारा द्रव्य गुण की शिक्षा देने पर यह विषय हस्तामलकवत हो जाता है। एक द्रव्य को दो घंटे तक देखना, विवरण लिखना व भीतर की रचना को स्वयं देखकर उसका ज्ञान करना आदि एक द्रव्य पर पर्याप्त समय लगाना द्रव्य का ज्ञान मानस पटल पर जमा देता है। अत. इस विषय को आयुर्वेद की शास्त्रीय परिपाटी का स्वरूप देकर इसका यह स्वरूप निर्धारण किया गया है।

इसमे द्रव्य की बाह्य आकृति का ज्ञान, छेदन करके विशेष शक्ति के ताल द्वारा भीतरी बनावट का ज्ञान करना, उसके रस, वर्ण, विलेयता, गन्ध व शब्द आदि का स्वतः प्रत्यक्षीकरण सम्मिलित है। यथा : द्रव्य के वर्ण परिज्ञान के लिए द्रव्य का प्राकृतिक वर्ण, चूर्ण करके उसका वर्ण, भग्न करके भीतर का वर्ण, जल, घृत व तेल से पकाकर उससे का वर्ण, सुरा व ज्वाला से डालकर वर्ण का ज्ञान करके देखना होता है। इस तरह उसका स्वरूप चिरस्थायी होता है। रस परिज्ञान के लिए द्रव्य को जीभ पर रखकर उसके रस का प्रत्यक्षीकरण करते है। कुचला, धत्तूर, कुटकी, अश्वगन्धा का जो स्वयं रस चख

कर नहीं जानता वह रोगी को देने में वास्तविकता का ज्ञान नहीं रख सकता। इसी प्रकार गंध विज्ञान के लिए द्रव्य का प्राकृतिक गन्ध, उसके चूर्ण का गंध, अग्नि में डालकर उसका गंध जानने पर द्रव्य का गन्ध घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष हो जाता है। द्रव्यों के मूर्त्त गुणों की परीक्षा विना स्पर्श किये सम्भव नही होती। गुण कार्मुक व मूर्त्त दो प्रकार के होते है। मूर्त्त गुणों का स्पर्श करके उष्ण, शीत, रूक्ष, खर, कठिन, स्निग्ध, पिच्छिल, मृदु आदि का ज्ञान हो जाता है। कार्मुक गुण तो शरीर में जाने पर ही ज्ञात होते हैं, अतः इस परीक्षा मे मूर्त्त गुणों का ज्ञान ही अपेक्षित होता है। शब्द परीक्षा में द्रव्यगत कोई शब्द होता है तो उसको जानते हैं। यथा : करंज शण आदि। भंगुर व अभंगुर की भी परीक्षा करते हैं।

वर्ग निर्धारण : यह विषय पाँच भौतिक लक्षणों के आधार पर मिलता है। किन्तु इसका विवरण रसाधार पर ही करना ठीक होता है। सुश्रुत ने इसको अधिक स्पष्ट करके लिखा है और उसके आधार पर वर्ग बनाने पर सामान्यरूप से गण का ठीक पता चल जाता है। इसका विवरण विशेषरूप में आगे किया गया है। अतः इस प्रकार से छात्र के सामने एक रूप आ जाता है और वह अपना विचार बनाने में सफल हो जाता है।

इस प्रकार क्रियात्मक ज्ञान के हो जाने पर द्रव्य का एक परिपक्व ज्ञान हो जाता है और छात्र को भी सन्तोष हो जाता है। इसमें अभी इतना ही ज्ञान दिया गया है जो कि आयुर्वेद के छात्र के लिये उपयोगी हो। सूक्ष्म विवेचन के लिये अणुवीक्षण यन्त्र का सहारा लेना होता है। इसमे सब छात्र जानकारी नही रखते। अतः आवश्यकता है कि इस तरफ अध्यापक पूर्ण ध्यान दें।

कठिनाई : इस विषय के तैयार करने में पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ा है। अभी तक कोई पुस्तक इस विचार की आयुर्वेद मे नहीं थी। आधुनिक फारमेकोग्नोसी मे इसका विशाल साहित्य है और एक स्थायीरूप का है। किन्तु उसमे आयुर्वेद की औषधियों का विवरण न होकर ब्रिटिश फारमाकोपिया व अमेरिकन फारमाकोपिया के द्रव्य होते है। जिनमे का अधिकांश भाग वैद्य चिकित्सक प्रयोग नहीं करते। अतः उनको आयुर्वेदानुकूल बनाने मे नये रूप से स्वयं करके उसका विवरण दिया गया है। जहाँ पर साधन मिले उनका उपयोग किया गया है। इसके बाद यह प्रयत्न भी चालू है कि शेष औषधियों का भी विवरण तैयार करके उसका भी योग किया जाय। यह

क्रम बहुकालापेक्षी है। सूक्ष्म रचना का भी क्रम तैयार किया जा रहा है। जो कि इस विषय के विशेषज्ञ बनने वालों के लिये उपयोगी होगा। इसके बाद उस साहित्य का भी निर्माण हो रहा है जिससे छात्र चूर्ण को देखकर किस द्रव्य का चूर्ण है यह ज्ञान कर सकें। नकली व अन्य वस्तुओं के मिश्रण को समझ सकें। प्रस्तुत साहित्य केवल क्रियात्मक रूप का ही विवेचन है। इसका विस्तृत साहित्य बृहत्त्रयी निघण्टु के रूप में आपके समक्ष शीघ्र आने वाला है। इसका कार्य हो चुका है। विवरण उसमें देखने की आवश्यकता है। इसमें सूक्ष्म रूप से वनौषधि का परिचय दिया गया है। अतः केवल क्रियात्मक रूप देखकर हताश होने की आवश्यकता नहीं है।

आभार प्रदर्शन :

इस पुस्तक के निर्माण में पूर्णता लाने के लिए कई आधुनिक व आयुर्वेदिक पुस्तकों से सहायता ली गई है। वानस्पतिक विवरण को स्पष्ट करने में वनस्पतिशास्त्र की पुस्तकों का आश्रय लिया गया है। जहाँ तक आयुर्वेद की संज्ञाये मिली है उनका प्रयोग किया गया है। शेष को आधुनिक संज्ञाओं के आधार पर तैयार किया गया है।

हमारे विभागीय सब व्यक्तियों ने इसमें सहयोग दिया है। चित्र बनाने में कान्तिलाल भट्ट का हाथ अधिक रहा है। हमारे छात्रों ने भी उत्साह से भाग लिया है। कई चित्र श्री श्यामलालजी सक्सेना द्वारा भी बनाये गये है। अतः मैं उन सब सज्जनों के प्रति आभार प्रदर्शन करना अपना प्रधान कर्तव्य समझता हूँ जिनका सहयोग हमें मिला है। जिन ग्रन्थों की सहायता ली गई है उनकी सूची अन्यत्र दी गई है।

निवेदक—
विश्वनाथ द्विवेदी

आधार-ग्रन्थ

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन मे निम्नलिखित ग्रन्थों से सहायता ली गई है उनके रचयिताओं का हम हृदय से आभार मानते है—

१. चरकसंहिता ।
२ सुश्रुतसंहिता ।
३. अष्टाङ्गहृदय ।
४. अष्टाङ्गसग्रह ।
५. धन्वन्तरिनिघण्टु ।
६. राजनिघण्टु ।
७. भावप्रकाशनिघण्टु ।
८. कैयदेवनिघण्टु ।
९. मदनपालनिघण्टु ।
१०. द्रव्यगुणविज्ञान द्वितीय भाग, श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य ।
११. वनस्पतिवर्णनप्रवेश, श्री बापालालजी गुजराती ।
१२. टेक्स्ट बुक ऑफ बोटानी इंडियन एडीशन, लाउसन व साहनी ।
१३. प्रैक्टिकल फारमेकोगनोसी, टी० इ० ट्रीज ।
१४. टेक्स्ट बुक ऑफ फारमेकोगनोसी, वैलिस ।
१५. ... ..., ट्रीज ।
१६. इण्डियन मेडिसिनल प्लांट्स, कीर्तिकर वसु ।
१७. इण्डियन मेटिरिया मेडिका, नादकरनी ।
१८. फोरेस्ट फ्लोरा, श्री कुञ्जीलालजी ।
१९. प्रैक्टिकल फारमेकोगनोसी ।



विषय सूची

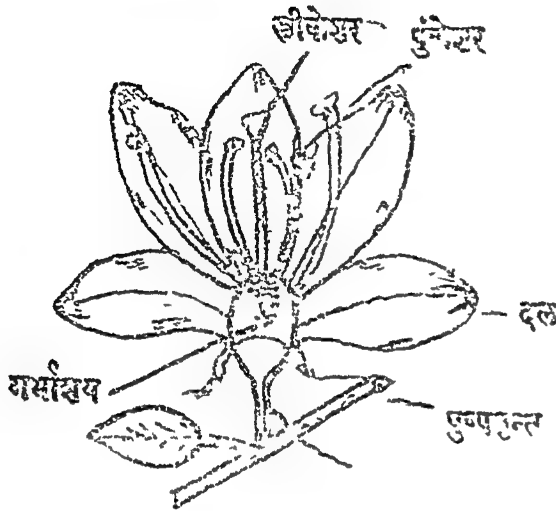


चित्र-सूची

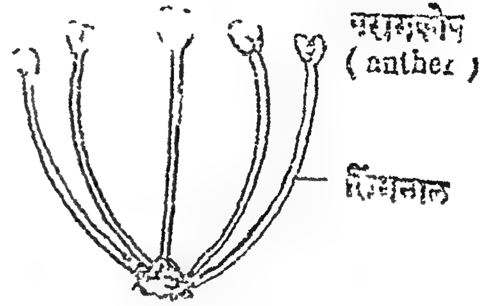
चित्र-संख्या

अवशिष्ट चित्र

[कृपया पृष्ठाङ्को के अनुसार यथा स्थान इन चित्रो का अध्ययन करे ।]



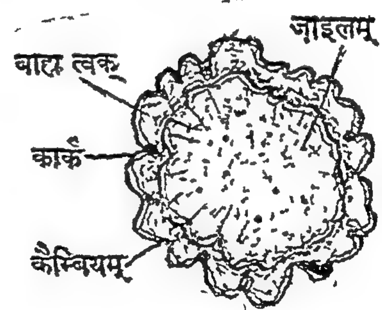
पृष्ठ ७५—पुष्प का परिचय



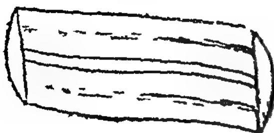
पृष्ठ ८२—पुंकेशर व परागकोष



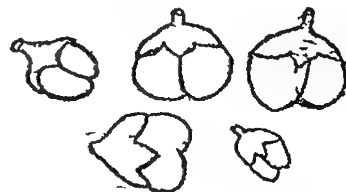
पृष्ठ १०८—कर्चूर का भीतरी विवरण



पृष्ठ १२३—जैलप मूल की रचना का विवरण



पृष्ठ १४०—कृष्ण सारिवा काड



पृष्ठ १८३—ज्योतिष्मती बीज

क्रियात्मक औषधि परिचय विज्ञान

द्रव्य परिचय विज्ञान

आमुख :

द्रव्य परिचय विज्ञान द्रव्य गुण शास्त्र का एक प्रधान अग है जिसमे केवल द्रव्य के परिचय का ही समावेश होता है। इस परिचय मे उन सब बातो का समावेश होता है जिनसे द्रव्य का पूरा परिचय हो जाय। इसमे द्रव्य के अकुरोद्भेद से लेकर फलपाकान्त तक की सारी स्थिति तक का विवरण रहता है। इसके साथ ही द्रव्य की उत्पत्ति का स्थान, उत्पन्न होने व परिपक्व होने का काल, उसके सग्रह व सरक्षरण की विधि, व्यापारिक स्वरूप व अन्य विवरण का भी ज्ञान होना अत्यावश्यक समझा जाता है। महर्षि चरक ने इन सभी बातो पर बड़ा ही सुन्दर विचार उपस्थित किया है और द्रव्य की परीक्षा के विषय मे लिखते हुये उन्होने लिखा[1] है कि निम्न बाते द्रव्य के विषय मे जानना अत्यावश्यक है—

१ द्रव्य परिचय विज्ञान	५ ओषधि सग्रह व सरक्षरण विज्ञान
२ द्रव्य गुण विज्ञान	६ औषधि सस्कार विज्ञान
३ द्रव्य प्रभाव विज्ञान	७ मात्रामात्र विज्ञान
४ देश विज्ञान	८ औषधि प्रयोग विज्ञान

औषधि के विषय मे यह जानना चाहिये कि इस की आकृति क्या है, किस देश मे किस प्रकार की भूमि मे उत्पन्न होती है, इसके सरक्षण व सग्रह की विधि क्या है, किस सस्कार के करने पर क्या कल्प बनता है, इसके गुण व कर्म क्या है, कितनी मात्रा मे देने पर इसका लाभ होता है, किस-किस रोग मे प्रयोग करना चाहिये और इससे क्या लाभ व हानि होती है। विना इसके जाने औषधि का प्रयोग करना प्राचीन काल मे मना था। यह सारा विषय द्रव्य-गुण शास्त्र का है। इसमे से द्रव्य परिचय का, उत्पन्न होने वाले देश व भूमि का व सग्रह एव सरक्षरण का ज्ञान द्रव्य परिचय विज्ञान की

---

१. इदमेवप्रकृतिमेवगुणमेवप्रभावमस्मिन् देशे जातमस्मिनृतावेवंगृहीतमेव-निहितमेवमुपस्कृतमनया मात्रया प्रयुक्तमस्मिन् व्याधावेवविधस्य पुरुषस्यैतावन्त दोपमपकर्पयति उपशमयति वा। च० वि० स्था० अ० ८।

सीमा मे आते है तथा शेष द्रव्य गुण के कर्म व गुण विज्ञान मे आते है। अत द्रव्य परिचय विज्ञान मे इन बातो का समावेश होता है जैसा कि ऊपर लिखा गया है।

द्रव्य परिचय विज्ञान मे द्रव्य के आर्द्र एव शुष्क स्वरूप का तथा उसके मूल, काड, पत्र, पुष्प, फल आदि के स्वरूप का ज्ञान होना चाहिये। उसकी आभ्यतर रचना का भी ज्ञान होना चाहिये ताकि औपधि के विपय का पूर्ण ज्ञान हो सके। द्रव्य के अंगादि के ज्ञान के अतिरिक्त यह भी ज्ञान होना चाहिये कि इसकी जाति क्या है, शास्त्र मे किस-किस गण मे वर्णन आया है तथा इसके भेद व उपभेद क्या है।

आयुर्वेदशास्त्र मे २००० औपधियो का विवरण आता है। सहिता ग्रंथो को देखे तो चरक मे ६३६ द्रव्यो, सुश्रुत सहिता मे ५७३ द्रव्यो, अष्टाग हृदय मे ९०२ द्रव्यो, वेदो मे २५० औपधियो, निघण्टु ग्रथो मे मे धन्वन्तरि निघट्ट मे ३७३ द्रव्यो, राजनिघट्ट मे ११२९ द्रव्यो व अन्य कई उपयोगी धान्यो व जलादि का विवरण मिलता है। इसी प्रकार भाव प्रकाश मे ४२६, मदन पाल मे ४९४ व कैयदेव निघट्ट मे ४२४ औपधियो का उल्लेख है। यदि चिकित्सक को इसका ज्ञान नही होगा तो द्रव्य से बनने वाली औपधि का निर्माण भी न हो पायगा। अत यह जानना आवश्यक है कि द्रव्य का आकार-प्रकार व उसकी रचना क्या है, ये कहाँ से उपलब्ध होते है और कहाँ से व्यापार होता है।

इस पुस्तक मे द्रव्य-परिचय के विपय मे वैद्योपयोगी साहित्य का वह भाग मिलेगा जिसे जानकर वह द्रव्य की ठीक स्थिति का ज्ञान कर सके। साथ ही शिक्षाकाल मे कितना विपय द्रव्य-गुण के प्रत्यक्षीकरण-काल मे लिखना चाहिये जिससे द्रव्य का विवरण हो सके इसका निर्देश यहाँ पर किया गया है। औषधि-विवरण के लिखने से पूर्व सक्षिप्त ज्ञान होना भी आवश्यक है अत इस स्थान पर औषधि सवधी साधारण विवरण उपस्थित किया जा रहा है। शिक्षा-काल मे बहुत से विद्यार्थी इस प्रकार के आ जाते है कि उन्हे इसका ज्ञान ही नही रहता। अत सबकी सुविधा के लिये इस स्थान पर इनका भी समावेश किया गया है ताकि इसको जानकर वे भी कार्यरत हो सके।

आधुनिक वनस्पति शास्त्र बहुत ही प्रौढ हो चुका है। आज प्रत्येक प्रकार की जानकारी की सुविधा उपलब्ध है अत उससे वैद्य समाज व विद्यार्थी गण

को भी लाभान्वित होना चाहिये। अत: स्वरूप-विज्ञान के साथ आभ्यंतर रचना तथा वाह्य रचना का ज्ञान कराने के सब साधन उपलब्ध किये गये है। आयुर्वेद के ग्रथो मे इनका विवरण तो है परन्तु उनका विस्तारपूर्वक ज्ञान अभी तक सगृहीत नही है, जिसके अभाव मे छात्र पसारियो के शिकार हो सकते है। वैद्य समाज भी अच्छी तरह परिचय का ज्ञान नही रखता अत: कई द्रव्य इस त्रुटि से सदिग्ध हो गये है। इसके निवारण के लिये आवश्यक है कि उन समुचित ज्ञान किया जाय। इस सबन्ध का ज्ञान इसलिये ही सक्षेप मे दिया जा रहा है।



औषधि-परिचय लिखने की विधि

औषधि-परिचय लिखने का भी एक क्रम होता है और उस क्रम का त्याग करने पर पूरा विवरण नही लिखा जा सकता जो कि उचित होना चाहिये। आवश्यकता इस वात की है कि उसका ज्ञान ठीक प्रकार का हो अत उसका एक नमूना यहाँ पर दिया जाता है।

द्रव्य का नाम, पर्याय व गण : जिस द्रव्य का विवरण लिखना अभिप्रेत हो उसका नाम देना चाहिये, विशेषकर जो कि प्रचलित नाम हो। छात्र को उसके प्रसिद्ध पर्याय भी देना उचित है। इसके वाद उसके गण का नाम, लिखना चाहिये जो कि चरक व सुश्रुत मे दिया हो। आधुनिक गण का नाम भी लिखना आवश्यक है ताकि विद्यार्थी को याद रह सके।

आकृति-विज्ञान : आकृति-विज्ञान से ही स्पष्ट है कि उसमे उपलव्ध विवरण देकर परिचय लिखा जाय और वह ऐसा होना चाहिये जिससे कि उसका पूरा ज्ञान आ जाय। अर्थात् यह द्रव्य, वनस्पति, वानस्पत्य, औषधि व वीरुध् मे से किस जाति का है। इसके किस अङ्ग का विवरण दिया जा रहा है। वह मूल है, पत्र है, काण्ड है, या क्या है। उसकी क्या विशेषता है। उसका आकार, प्रकार लम्वाई, चौडाई, मोटाई आदि क्या है, वाजार मे किस रूप मे मिलता है, उपस्थित किस रूप मे है, उसका वर्ण क्या है। टुकडो के रूप मे है, अखडित है या खडित है। उसमे जो भी विशेषता है वह सव लिखना आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि उसके विवरण का कोई अंश छूटने न पावे। हो सके तो रेखा-चित्र वनाकर प्रस्तुत करना उचित है।

वर्ण-विज्ञान . वर्ण की उपलब्धि के लिए निम्न कई उपाय वरतना आवश्यक है।

१. प्रथम प्राकृतिक वर्ण क्या है। उसका छेद लेने पर भीतर का क्या वर्ण है, वाहर-भीतर के वर्ण मे कोई भिन्नता हो तो उसका भी विवरण देना चाहिये। फिर घिसने, तोडने, चूर्ण करने, क्वाथ की तरह पकाने पर क्या वर्ण मिलता है। तैल व घृत मे पकाने पर व सुरा मे डालने पर क्या वर्ण मिलता है। जलाने पर ज्वाला का वर्ण क्या है। छेद लेकर चित्र वनाकर विवरण देना चाहिए।

रसविज्ञान : उसके रसज्ञान के लिये जिह्वा पर रखकर रसज्ञान करना चाहिए। यह सामान्य साधन है। कभी-कभी कई द्रव्य जीभ पर नही घुलते, यथा : राल, गुग्गुल, लाक्षा आदि। यह द्रव्य सरलता से तैल, घृत या सुरा मे घुल जाते है। इनके ज्ञानार्थ रसना पर रखना चाहिये और मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कपाय का ज्ञान जो भी हो लिखना चाहिए।

गंधविज्ञान : प्रत्येक द्रव्य मे कुछ गध होता है किसी-किसी का विशेष गध होता है वह घ्राणेन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष होता है अत. इस विधि से ज्ञान करना चाहिये। कभी-कभी गध का विशेष ज्ञान नही होता, तव चूर्ण मे पानी मिलाकर रगड़ कर सूघने से ज्ञान हो जाता है। जलाने पर गन्ध का ज्ञान होता है।

स्पर्शविज्ञान : द्रव्य मे मूर्त व अमूर्त गुण रहते है। इनका ज्ञान स्पर्श के द्वारा होता है। मूर्त गुण का ज्ञान स्पर्श से जानकर लिखना चाहिये कि यह कोमल या मृदु, रूक्ष, कठिन, आदि क्या है। पानी मे डालकर गुरुता व लघुता का ज्ञान हो जाता है।

शब्दविज्ञान : द्रव्य मे कोई शब्द हो तो लिखना चाहिए। यथा करंज बीज मे, सन मे होता है। जिसमे नही हो तो भग्नकाल का शब्द, जलाने के समय का शब्द लिखना चाहिये।

गणपरिचय : ऊपर के विचारो के आधार पर इस द्रव्य का क्या गण होगा यह लिखना चाहिये। इसमे विशेपता रसाधार पर ही लिखने मे मिलती है। विशेष विवरण आगे दिया जा रहा है।

वर्ग का निर्धारण :—

चरकादि ऋपियो ने इस विषय पर जो विचार दिये है वह निम्न है यथा .

पार्थिव द्रव्य : गुरु, खर, कठिन, मद, स्थिर, विशद, सान्द्र, स्थूल व गध-गुणबहुल होते हैं।

आप्य द्रव्य : द्रव, स्निग्ध, शीत, मृदु, मद, पिच्छिल, गुरु, स्तिमित, सर, सान्द्र, रसबहुल होते है।

तैजस द्रव्य : उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, लघु, रूक्ष, विशद, खर, रूपबहुल होते है।

वायव्य द्रव्य : लघु, रूक्ष, शीत, खर, विशद, सूक्ष्म, व्यवायी, विकाशी, स्पर्शबहुल होते है।

नाभस द्रव्य : मृदु, लघु, सूक्ष्म, श्लक्ष्ण, विशद, विविक्त, व्यवायी व शब्दबहुल होते है।

इनमे ऊपर जो भी लक्षण दिये गये है उनके आधार पर कोई वर्ग-निर्धारण कठिन हो जाता है क्योकि यह कार्मुक व मूर्त गुण युक्त कहे गये हैं। न केवल गधवहुल, रसवहुल, रूपवहुल व स्पर्शवहुल कहने मात्र से ही वर्ग वनता है। प्रत्येक द्रव्य मे गध होगा ही अत गधवहुल मानकर चलें तो एला, लवंग, उशीर को पार्थिव मानना होगा। मधु व घृत के अतिरिक्त आप्य कोई न होगा। द्रव्य अधिकतर शुष्क ही वाजार से आते है। अत उनमे भेद करना कठिन होगा। रूपबहुल मे प्रत्येक द्रव्य मे कोई न कोई रुप होता ही है। इसी प्रकार स्पर्शवहुल की स्थिति है। शब्द तो किसी द्रव्य मे शायद ही मिलेगा अतः वर्गीकरण मे कठिनाई आती है।

इनके समाधान के लिये केवल सुश्रुत का रसप्रधान आधार लेने पर काम चल जाता है और सर्वापेक्षा अधिक निकट होता है। यथा :

१ प्रायशो मधुरमीषत्-कषायम्-इति पार्थिवम्।

२ प्रायशो मधुरमीषत्, कषायाम्ललवणम् आप्यम्।

३ प्रायश कटुकमीषत् अम्ललवणम्—तैजसम्।

४ प्रायशः कषायमीषत्तिक्तम्—वायव्यम्।

५ प्रायशोऽव्यक्तरसम् ईषत्तिक्तम्—नाभसम् इति।

इसके आधार पर विचार करके यदि वर्ग बनावे तो पाञ्चभौतिक वर्गीकरण का एक स्वरूप वन जाता है। केवल प्रश्न प्रायश तिक्त, प्रायश. अम्ल व प्रायश लवण वालो का विचारणीय रह जाता है।

तिक्त रस वाले द्रव्य उष्ण व शीत दोनो प्रकार के गुण युक्त होते हैं। अत इनका विचार रसाधार पर सुश्रुत ने नही दिया है। वीर्याधार व विपाकाधार पर विचार कर लिया जाय तो कुछ स्वरूप वन जाता है। वीर्याधार पर करें तो उष्ण द्रव्य तैजस व शीतद्रव्य आप्य हो सकेगे। इसमे सन्देह होने पर सुश्रुत के निम्न वाक्य का आश्रय लेकर चले तो कुछ स्वरूप बन जाता है। यथा :

तेजोभूयिष्ठाया भूमौ कटुक तिक्त च। सु० सू० स्था० ४६।६

अत. तिक्त को कटु समान होने से आग्नेय वर्ग मे रखा गया है। तिक्त का विपाक भी कटु होता है और वीर्य भी उष्ण प्रायश होता है। अत. आग्नेय मानने मे हेतु कुछ वनता है।

वहुत से चिकित्सक तिक्त रस को वायव्य मानने को कहते है क्योकि तिक्त रस का निर्माण वायु व आकाश तत्त्व के संयोग से होता है और कोई

तिक्त रस वाले द्रव्य शीतवीर्य भी होते है। अत उनका कथन है कि वायव्य माना जाय। इसको माने तो आकाशीय क्यो न माना जाय यह भी प्रश्न है? अत विवादरहित विचार नही बनता। उनको अपने बात की पुष्टि मे कोई विशेष तर्क नही मिलता। अत प्रायशः पूर्व के आधार पर तिक्त का वर्गीकरण किया गया है। सूक्ष्म विवेचन के लिए प्रत्यक्ष वर्गीकरण मे स्थान न होने से व कठिनाई होने से अभी तक इसे तैजस वर्ग मे ही रखा है। यदि कोई सतोषजनक कोई विचार देगे तो इस पर पुनः विचार कर लेगे। यह भौतिक वर्गीकरण प्रायश. एकरूपता लाने के लिए ही किया गया है। यह निर्णयात्मक नही है। यह विवरण अधिक युक्तिसगत जान पड़ता है। इसके मानने का एक शास्त्रीय आधार भी है, यथा :

रसवीर्यप्रभृतयो भूतोत्कर्षापकर्षतः।
एकरूपा विरूपा वा द्रव्य समधिशेरते ॥ अ० हृ० सू० अ० १७।

अम्ल को भी इसी प्रकार वीर्य व विपाक के आधार पर तैजस माना गया है। लवण मधुरविपाकी प्रायश. होता है। अत शीतवीर्य होने से आप्य हो सकेगा। अत. विचार रसप्रधान के आधार पर किया गया है। इससे भी सूक्ष्म विचार करना हो तो तिक्त के साथ कटु-अम्ल अनुरस रहने पर तैजस व मधुर-कषाय अनुरस रहने पर वायव्य वर्ग मे रखा जाता है। एक महत्त्वपूर्ण विवरण सुश्रुत ने विचारणीय लिखा है। मधुर प्राय. पार्थिव व आप्य दोनो है। फिर किस प्रकार इनमे भेद होगा व 'प्रायश' मधुर' ईषत् कषाय पार्थिव'', व 'प्रायश. मधुरमीषदम्ललवणम्' आप्यम् कहा है। ऐसे ही 'ईषदम्ललवणकटुरस-प्राय तैजसम्' 'ईषत्तिक्त विशेपतः कषायम्-वायव्यम्' आदि जो प्रधान रस के साथ ईषद् लगे है उनका समाधान करना चाहे तो निम्न विचार मिल सकता है और सुश्रुत का निर्णय भी तब समझा जा सकता है। यह विचार बहुत सूक्ष्मता के साथ विचारा गया है। यथा : भूतोत्कर्ष—दो महाभूतो के अधिक होने पर प्रायश. रसोत्पत्ति सब आचार्य मानते हैं। विचारिये. यथा

१ पृथिवी + जलप्रधान (नाभस + वायव्य + तैजस) = मधुर रस।
२ पृ० + वायुप्रधान (आप्य + तैजस + नाभस) = कषाय रस।
३ पृ० + अग्नि (वा० + तै० + ना०) = अम्ल रस।
४ जल + अग्निप्रधान (वा० + तै० × ना०) = लवण रस।
५ वायु + अग्निप्रधान (पृ० + ना० + तैजस) = कटु रस।
६ वा० + ना० प्रधान (तै० + पा० + जल) = तिक्त।

ऊपर के विचारानुसार निम्न तत्त्व विशेष रूप में इन रसो का निर्माण करते है यथा :

पृथिवी तत्त्व	अधिक—	मधुर, कषाय, अम्ल रस,
जल तत्त्व	,,	मधुर, अम्ल, लवण,
अग्नि तत्त्व	,,	लवण, कटु, अम्ल,
वायु तत्त्व	,,	तिक्त, कटु, कषाय,
आकाश तत्त्व	,,	तिक्त।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि भूतो के परस्पर सन्निकर्ष व अपकर्ष से जो रस बनते है उनमे उनका सान्निध्य अधिक रहता है। अत'

पार्थिव मे   प्रायश माधुर्य के साथ ईषत् कषाय लिखा है।
आप्य मे . प्रायश. मधुर के साथ ईषदम्ल लवण हो सकता है।
तैजस मे   प्रायश कटु के साथ ईषदम्ल लवण हो सकेगा।
वायव्य मे ' प्रायशः कषाय के साथ ईषत्तिक्त व कटु रस चल सकेगा।
नाभस मे : अव्यक्त के साथ ईषत् तिक्त रस रह सकेगा।

अत' इस आधार को लेकर चला जाय तो एक निरापद भौतिक वर्ग की कल्पना की जा सकती है। अन्यथा कोई भी वर्ग क्रियात्मक काल मे बनाना सभव नही हो सकता। बहुत विचार करने पर यह एकस्वरूप दिखाई पडा है। यद्यपि इसे भी निरापद नही माना जा सकता परन्तु औरो से यह बहुत सन्निकट आता है अत इसको इस रूप मे ही रखा गया है।

क्योकि द्रव्य के आकृतिविज्ञान के लेखन मे अन्य विचार मानतुला पर प्रायशः नही पहुंचते अत' वर्गीकरण का आधार यह लिया गया है।

क्रियात्मक द्रव्य-विज्ञान के वर्ण्य विषय

द्रव्यविज्ञान यह द्रव्यगुणविज्ञान का प्रारम्भिक अंश है। इसमे द्रव्य के अंग-प्रत्यंग का ज्ञान करना पडता है। इस अवसर पर विवरणार्थ कई प्रकार के विपयो का समावेश होता है, जिनमे द्रव्यविज्ञान का व द्रव्य-परिचयविज्ञान का अंश प्रधान होता है, यह महत्त्वपूर्ण विज्ञान जो द्रव्य के अकुरोद्भेद काल से लेकर के द्रव्य की फलपाकान्त तक की अवधि का विवरण उपस्थित करता है। इसमे हरित या शुष्क द्रव्य परीक्षार्थ आते है और उस द्रव्य के अंग-प्रत्यग का निरीक्षण करके तव साराश लिखना पडता है। उनमे प्रधान निम्न लिखित अंग विशेष रूप से वर्णनार्थ आते है।

१ मूल मूल, कद, मूल त्वक्, मूल सधि।

२ काण्ड काड, काण्डत्वक्, काड का परिवर्तित स्वरूप, कद आदि।

३ शाखा शाखा, शाखाग्र।

४ पत्र पत्रवृन्त, पत्रमूल, पत्राग्र, पत्रपार्श्व, पत्रशिरा, पत्रकोण, पत्रस्थ ग्रथि।

५ पुष्प पुष्प का वाहरी आवरण, भीतरी आवरण, पुष्पपत्र, पराग कोष, केशर, गर्भाशय।

६ फल कच्चे व पके हरित फल, शुष्क फल।

७ बीज वीजावरण, द्विदल, अकुर, गर्भभोज्य आदि।

८ सार।

९ निर्यास।

१० क्षीर व क्षार आदि।

इनसे सबंधित विवरण का स्वरूप आगे दिया है।

इन सव बातो के लिये विभिन्न प्रकार के परीक्षण की आवश्यकता पडती है और उन परीक्षाओ के निमित्त कई यत्रो की आवश्यकता होती है, जिनमे प्रधान अणुवीक्षण यंत्र, व्यवच्छेदक शस्त्रादि, शीशियाँ, उच्च शक्ति के ताल, कुछ अन्य यत्र तथा कुछ रासायनिक द्रव्यो की आवश्यकता होती है। उनकी सूची निम्न लिखित है

१ प्रयताग्रवृद्धि पत्र (Scalpel)	१० जलपूर्ण ग्लास
२ क्षुरक व वृद्धि पत्र (Razor)	११ सुरा ९० प्रतिशत
३ सदश (Forceps)	१२ ग्लिसरिन
४ काच या ताल (Pocketlens)	१३ तैल
५ वाल की कूर्चिका (Brush)	१४ घृत
६ सुराप्रदीप . (Spirit lamp)	१५ विन्दुक (Dropers)
७ शीशे के पात्र, शीशी आदि	१६ रजक वस्तु
८ काचपट्टिका (Slides)	१७ ब्लाटिंग पेपर
९ सूचिका (Needle)	१८ रूई

इनके अतिरिक्त पेंसिल, नोटवुक, कागज, डस्टर व प्यालिया आदि जो आवश्यक पदार्थ चाहिए वह सव लेना आवश्यक है ।

औषधि-विवरण में क्या लिखना उचित होगा

किसी औषधि के विवरण को लिखने मे निम्न लिखित बातों को ध्यान मे रखना चाहिये। यदि ठीक तरह किसी वस्तु का निरीक्षण करे तो ज्ञात होगा कि वह वस्तु हरित अवस्था मे जैसी थी, शुष्क हो जाने पर वैसी ही नही रही। उसके आकार, प्रकार, आकृति और भार मे वहुत वडा अतर आ जाता है। जिसने हरित औषधि के पत्र, पुष्प, फल, मूल आदि को प्रारम्भ मे नही देखा है वह उसको शुष्क हो जाने पर शीघ्र पहिचान नही सकता। द्रव्य-गुणविज्ञान के एक विद्यार्थी को इन द्रव्यों का सूक्ष्म निरीक्षण करना पडता है। यदि वह थोडी भी अवहेलना कर ले तो भयकर भूल कर सकता है। अत आवश्यकता इस वात की है कि प्रारम्भ मे द्रव्य का निरीक्षण किया जाय। जो द्रव्य परीक्षणार्थ उपस्थित हो उसके विवरण को स्पष्ट लिखना चाहिये और उनमे पार्थक्य न हो इस निमित्त उसकी प्रत्येक स्थिति को एक समान ही लिखने के निमित्त निम्न सरणि को ध्यान मे रखना चाहिये। इससे विवरण मे एकरूपता आ जाती है।

संक्षिप्त विवरण :—

मूल और कन्द :—

१ आकृति-विस्तार व वर्ण—(Dimension and colour) जैसा द्रव्य मे दृष्टिगोचर होता हो।

२ आकृति (Shape)—वर्तुल, चपटा, पतला, लम्वा, गाठदार, त्रिकोणाकार, सूत्राकार, सीधा, विपमग्रथियुक्त।

३ शाखा-प्रशाखा—वर्तुल, नलिकाकार, अवकाशयुक्त, कठिन, त्रिकोण, चतुष्कोण इत्यादि।

४ स्थिति (Conditon)—शुष्क, आर्द्र, छिल्कायुक्त, त्वग्रहित, सम्पूर्ण, कर्त्तित लम्वाई या चौडाई मे कटा हुआ।

५ उपमूल—इसमे किसी छोटी मूल की शाखा का ज्ञान होता है कि नही ? है तो प्रकार, प्राकृत या वायवीय, लगा हुआ, टूटा हुआ, लटका हुआ, पतला छोटा, सूत्रवत्, भगुर।

६ वृद्धिगत क्रम—ऊर्ध्वगामी, अधोगामी, समतलीय, झुका हुआ, त्रिकोणाकार, लट्वाकार ।

७ बाह्यस्तर (Sarface character)—व्रणचिह्न, पत्रचिह्न, शाखाचिह्न, फटा हुआ, रूक्ष, खुरदरा, पिच्छिल, छिलके दार, चिक्कण ।

८ व्यत्यस्तच्छेद (Transverse section)—इसमे स्तरो की रचना, सूत्र, सेल, ऊर्ध्वस्तरीय, आभ्यतर-काष्ठीय, सारभागीन सहभाग ।

९ बनावट व भग (Fracture and structure)—तोडने पर शृगाकृति, सूत्राशयुक्त, विशिष्टाशयुक्त, स्नेहयुक्त (Horny, fibrous, starchy, fatty) ।

१० स्वाद व वर्ण ।

११ वैचित्र्य—पूर्णायु, अपूर्णायु, पत्रकाण्ड की विशेष रचना ।

१२ रासायनिक परीक्षण ।

पत्र :—

आकार-प्रकार—लम्बाई, चौडाई, मोटाई ।

रूप—पत्र का वर्ण जो दिखाई पडता हो ।

दशा (Condition) —(ताजी), शुष्क, पूर्ण-भग्न, चपटी, सद्योद्धृत, आर्द्र (सद्यस्क) ।

पर्णाधार (lamina) —सामान्य पत्र (Simple leaf), पक्षाकार (Pinnate), करतलाकार (Palmat), सयुक्त पत्र (Compound), मध्यशिरा (Rachis), एकपक्षाकार (Unipinnate), द्विपक्षाकार (Bipinnate), त्रिपक्षाकार (Tripinnate) ।

शिरारचना (Venation)—जालीदार (Reticulate), समानान्तर (Parallel), जालीदार-पक्षाकार (Unicostate) , शिराओ की संख्या व आकार ।

किनारे (Margin) —अखंडित—(Entire), तरगायित (Repand or Undulate), दन्तुरित (Serrate), कंगूरेदार (Crenate), कटकित (Spinous) ।

पत्राग्र (Apex) —सूक्ष्माग्र (Acute'), अतिसूक्ष्माग्र (Acuminate), कुठिताग्र (Obtuse), कटाग्र (Mucronate), नताग्र (Emarginate), कंटकी (Spinouse), तन्तुमय (Tendrillar)

पर्णतल (Base)—परिवेष्टक (Seathing), पत्रवृन्त (Petiole), दीर्घक्षुद्र-अवृन्तक-सवृन्तक (Petiotate), कर्णाकार (Auriculate), प्रकाण्डासक्त (Amplexicaul), सहजात (Connate), काण्डलग्न (Decurrent) समुज्ज्वल ।

सतह—चिकनी-लोमश-मसृण (Glabrous), कर्कश (Rough), रोमश (Hairy), कंटकाकीर्ण (Stinging), समुद्ररंगी (Glaucous) ।

आकार—रेखाकृति (Linear), भल्लाकृति (Ianceolate), गोलाकार (Rotund), अण्डाकार (Eleptical Oval), विषमाकार (Oblique), लम्बगोल (Oblong), कर्णपाली सदृश (Hastate), सर्षपपत्रकाकार (Lyrate), सूचिकाकार (Acicular), करतलाकार (Palmate), हस्तांगुली सदृश (Degetate), त्रिपर्णी (Trifoliate), पक्षिपदानुकारी (Pedats), गोजिह्वाकार (Runcināte) ।

पर्णरचना (Phyllotaxis)—समानान्तर–एकातरित (Alternate) गुच्छाकार (Whorled) ।

वैचित्र्य ग्रथिया-विचित्रता

स्वाद-गन्ध—

बीज (Seeds) :—

आकृति-आकार-ऊँचाई, लम्बाई, मोटाई, कठिन, मृदु, मसृण—

भेद-एकाकी, संयुक्त फल, सामूहिक फल (Aggregate) ।

बीजावरण (Seed Coat) संख्या, चिह्न, नालचिह्न ।

बीजशस्य (Perispērm)—Present—Absent.

बीजान्तर (बीजमध्य)–गर्भभोज्य—Endosperm-Present-Absent,

स्वाद, गन्ध—

भार–१०० बीज का

वैचित्र्य—

रासायनिक परीक्षा—

काण्ड (Stems) .

१ जाति (Kinds)—कठिन, काष्ठमय, वार्षिक, द्विवार्षिक, क्षुपजातीय, वृक्षलताजातीय इत्यादि सूत्रात्मक जड़ी-बूटी पचाङ्ग ।

२ स्थानस्थितिनिर्णय (Direction)—ऊर्ध्वमुख, अधोमुख, विस्तारित, परिसर्पण, आरोही-अवरोही ।

३ आकृति—कोणीय, वर्तुल, चतुष्कोण, षट्कोण, त्रिकोण, विषम आदि।

४ ऊर्ध्वस्तर (Surface)–वर्ण, चिकना, लोमश, रूक्ष, खर, दारुण, स्निग्ध।

५ पत्रचिह्नस्थिति—उभयतः, आन्तरिक, दूरवर्ती, अधिक पत्रविन्यास।

६ गन्ध व स्वाद—

७ कर्तित—आयामिक-विस्तारिक-काष्ठतरो का क्रम

८ काष्ठ—वर्ण और घनत्व।

९ दाने—यदि कोई दानेदार वस्तु दिखाई पडे तो उनकी आकृति, स्तरो को अलग करने पर की स्थिति।

१० वार्षिक वृत्ताकृति चिह्न—उपस्थित या अनुपस्थित–लम्बाई मे या चौडाई मे।

११ स्रोतस्—छिद्रयुक्त, नलिकाकृति।

१२ सार—आकृति घनत्व।

१३ वैचित्र्य—यदि कोई हो।

त्वक् (Barks) —

१ आकृति—त्वक्-खण्ड की आकृति, नालिकेय, स्रोतोयुक्त, चपटा, वृत्त, अर्धवृत्त, समतल, चतुष्कोण, वर्गाकार।

२ आकार—प्रकार लम्बाई, मोटाई, चौडाई।

३ वर्ण—हल्का, गहरा, विषम (कही हल्का-कही गहरा)।

४ वाह्य स्तर—वर्ण, स्तर का रूप।

५ आभ्यन्तर स्तर—वर्ण, स्तर का रूप।

६ भङ्ग—भगुर, सूत्रात्मक, दानेदार।

७ व्यत्यस्तच्छेद—स्तरो की स्थिति का अवलोकन, सारवान्, स्नेहयुक्त, दृढ, स्निग्ध।

८ गन्ध और रस।

९ वैचित्र्य।

१० रासायनिक विवरण।

पुष्प (Flowers)

साधारण आकृति (General Feature)—नियमित, अनियमित।

पुष्प बाह्यकोष—आवरणपत्रो की सख्या।

सयुक्तत्व (Cohesion), संयुक्तदल (Gamosepalous), भिन्नपत्र बहुपत्र (Polysepalous)

मेल (Insertion) :—सामान्य, विशिष्ट ।

वैचित्र्य—वर्ण, आकार ।

आभ्यन्तरकोप (Corolla), संयुक्तत्व (Cohesion)—मेल (Insertion), गर्भाशयाध स्थित (Hypogynous), वैचित्र्य (Peculiarities), उपरिस्थित (Perigynous) ।

पुंकेशर (Androeceum) संख्या—

सयुक्तत्व—स्वतंत्र या संयुक्त (Monade phous)—गर्भाशयाध.स्थित, गर्भाशयोपरिस्थित ।

वैशेष्य—

योनिसूत्र (Style) :—लम्बा, छोटा, शाखायुक्त-साधारण ।

योनिच्छत्र (Stegma) :—वृत्त–चपटा–छत्राकार ।

गर्भाशय—एक वा एकाधिक सख्या, आदिबीज (Ovules), गर्भाशय थैली (Embryosac), वीजस्थान (Placenta), स्थालक ।

फल (Fruits) :—

भेद—सामान्य संयुक्त (Aggregate)-(Succulant) ।

आकृति व परिणाह—लम्बाई, मोटाई, चौडाई ।

आकार—वृत्त, अंडाकार, कोणीय, चपटा ।

मेल—उत्तम, अनुत्तम ।

स्फोटनशील (dehiscent), अस्फोटनशील (Indepiscent), मासल ।

वाह्यभाग (Pericarp)—वर्ण ।

रचना (Texture)—कठिन, मृदु, मांसल, अमांसल ।

चिह्न (Marking) —योनिच्छत्र, उभार, व्रणचिह्न ।

सीवन—लम्वाकृति, व्यत्यस्तसंधि ।

वीजकवच (Testa), दृढ फलो मे (Drupe), बहिर्वेष्ट (Epicarp) तनु, दृढ मासलभाग (Masocarp) मासल, सौत्रिक, अन्तर्भाग (Endocarp) कठिन ।

वीजक्रम—कक्षीय (Axile), मध्यस्वतंत्र (Trancentral), पार्श्वीय (Pericentral), तलस्थ (Besal), वाहरी (Superficial)

वीज—सख्या ।

विशेष—स्वाद, गन्ध ।

निर्यास (Gum) :

आकृति—थक्का, दानेदार, पृथक्-पृथक् , वर्तिरूप, कोणीय, इत्यादि ।

वर्ण—

आवरण (Packing)—त्वक् , पत्र, चर्म, इत्यादि ।

रूप—चमकदार, साफ, गन्दा ।

स्वाद—

गन्ध ।

घुलनशीलता ।

रासायनिक परीक्षण

सत्त्व (Stach) :

वर्ण—श्वेत, कृष्ण, नील, पीत ।

स्पर्श (Feel)—भंगुर, अभंगुर ।

आकृति—दानो की आकृति ।

मिश्रण—

गन्ध—स्वाद

रासायनिक परीक्षण

क्षार व लवण :

आकृति

वर्ण

प्राप्ति

विशेषता

रासायनिक परीक्षण



क्रियात्मक विवरण का नमूना

क्रियात्मक विवरण

द्रव्यनाम ________________ शिक्षार्थीनाम ________________

कुलनाम ________________ तिथि ________________

आकृतिविज्ञान—परीक्षार्थ या परिचयार्थ उपस्थित द्रव्य के अग व प्रत्यंग का पूर्ण सचित्र विवरण (यथा-मूल, काण्ड, त्वक्, पत्र. फल, बीज, निर्यास, क्षीर, क्षार, सत्त्वादि.)

चाक्षुषी परीक्षा

प्रत्यक्ष—

यान्त्रिक—द्रव्य के मूल, काण्ड, पत्र, फल, इत्यादि का छेद लेकर उसका सचित्र विवरण।

द्रव्यपरिमाण

द्रव्याग	भार	आयाम (लम्बाई)	विस्तार (चौडाई)	उत्सेध (ऊंचाई)	परिणाह

वर्णपरिज्ञान

द्रव्यस्थितप्रकृतिवर्ण	कषे	भंगे	चूर्णे	क्वाथे	तैले	घृते	ज्वालायाम्	

विलेयता

विलेयता	वारिणि	तैले	घृते	सुरायाम्				
अल्पांश ...								
सर्वांश ...								

रस परीक्षा

द्रव्य		मधुर	अम्ल	लवण	कटु	तिक्त	कषाय	
शुष्क ...	प्रधानरस							
,, ...	अनुरस							
आर्द्र ...	प्रधानरस							
,, ...	अनुरस							

गंधपरीक्षा

	सुगंध	दुर्गंध	उग्र	मृदु	ग्लानिकर	अवसादक		
शुष्कद्रव्य ...								
आर्द्रद्रव्य ...								
धूपन ...								

स्पर्शपरीक्षा

मूर्तगुण	उष्ण	शीत	कठिन	मृदु	खर	श्लक्ष्ण	रूक्ष	स्निग्ध	पिच्छिल	लघु	गुरु		
द्रव्य शुष्क/आर्द्र													
त्वक्													
पत्र													
फल													
पुष्प													
काण्ड													
मूल													
बीज													
निर्यास													

शब्दपरीक्षा

द्रव्य शुष्क/आर्द्र	द्रव्यगतशब्द	भग्नकालीन-शब्द	ज्वलनकालीन-शब्द	भंगुर–अभंगुर	

द्रव्यके वर्गका सहेतुक निरूपणः—

(पार्थिव, आप्य, तैजस, वायव्य, नाभस इनमे से कोई)

हस्ताक्षर–विभागाध्यक्ष.

वनस्पति का विवरण-क्रम

वनौषधि-वर्णन का विवरण : वनौषधि का विवरण लिखने के लिए निम्न बातो की आवश्यकता रहती है, उनका ध्यान रखकर विवरण देना आवश्यक है।

वनस्पतिक सृष्टि : उस सृष्टि के दो विभाग हैं।

१ सपुष्प सृष्टि[1]

२ अपुष्प सृष्टि[2]

उपविभाग :

इसके चार विभाग हैं :

१ वनस्पति : जिसमे पुष्प नही दिखाई पडते या निगूढ पुष्प होते हैं। उन्हें वनस्पति कहते हैं। यथा . अश्वत्य, वट, पीपल जैसे बडे पेड। व सूक्ष्म वनस्पति यथा : काई, शैवाल आदि।

यह अपुष्प सृष्टि मे आते हैं।

सपुष्प सृष्टि :

२ इसमे तीन विभाग आते हैं यथा :

१ वानस्पत्य : जिनमें पुष्प व फल दोनो दिखाई देते हैं।

२ औषधि : जिनमे पुष्प व फल तो आते है परन्तु वह वर्ष भर के भीतर समाप्त हो जाता है।

३ वीरुध : यह भी सपुष्प सृष्टि मे ही है केवल अन्तर यह है कि यह लता-प्रतान के रूप मे छोटे-बडे आदि भेद से कई प्रकार के होते हैं। इनमे फल व पुष्प दोनो होते हैं।

अतः सर्वप्रथम यह लिखना होता है कि यह किस विभाग के हैं। वेदो और संहिता ग्रन्थो मे वनस्पति, वानस्पत्य, औषधि व वीरुध का विशाल व विपुल विवरण मिलता है। सम्पूर्ण सृष्टि के विभाग-चेतन व अचेतन विभाग से यह चेतन वर्ग के क्षेत्र मे आते हैं। इनमे सब अतश्चेतन होते हैं। विशेष विवरण बृहत्त्रयी निघण्टु मे दिये गये हैं और यहाँ पर विशेष विवरण लिखने मे उनकी

---

1. Phanerogams. 2 Cryptogams

आवश्यकता नही होती। जितना चाहिये उतना दिया गया है। सपुष्प सृष्टि के पुनः दो उप विभाग होते हैं .

१ नग्नवीजी[1] २ आवृतवीजी[2]

नग्नवीजी : जिनके बीज नग्न या खुले रहते हैं। यथा :—देवदारु वर्ग मे।

आवृतवीजी : इस वर्ग के बीज आवृत होते है .

१ द्विदल वर्ग[3] : जिनके बीज मे दो दल होते है। यथा : चना

२ एकदल वर्ग[4] : जिनके बीज मे एक ही दल होता है। यथा : मक्का

अपुष्प सृष्टि : इसमें भी कई विभेद है।

१ हरितक[5] २ श्वेतक[6]

३ पर्णिनी[7] ४ अन्य विभाग :

इनके भेदो के वाद क्या लिखना चाहिए एतदर्थ निम्न बातो की आवश्यकता रहती है। छात्र को इतना जानना चाहिये।

इनमे प्रत्येक मे किसी न किसी रूप मे मूल, पत्र, काण्ड, पुष्प, फल व अन्य अङ्गो का समावेश होता है।

वनस्पतियो के जो चार भेद किये गये हैं उनके पुनः आकार के आधार पर कई भेद होते हैं। आकार के आधार पर वर्ग ·

१ वनस्पति, वानस्पत्य, औषधि व वीरुध के आकार के अनुसार पुन. इस मे भेद किया गया है।

१ महावृक्ष · बहुत बडे वृक्ष जिनकी शाखा-प्रशाखाये अधिक होती है और वहुत ऊँचे होते है। ५० से १०० फीट या अधिक ऊँचाई के वृक्ष इस श्रेणी मे आते हैं।

२ वृक्ष . जो मूल के सहारे पृथ्वी पर खडे होते हैं और शाखा-प्रशाखाये महावृक्ष से कम होती हैं। इनकी ऊँचाई १५ से ५० फीट या इससे कुछ अधिक भी होती है, वृक्ष कहलाते हैं। इनके पर्याय कई है जिनको निघट्ठुकारो ने लिखा है। यथा : वृक्ष, महीरुह, पादप, शाखी, विटपी, तरु, अनोकह, कुट, शाल, पलाशी, द्रु, द्रुम आदि।

३ वृक्षक . छोटे वृक्षो को वृक्षक के नाम से पुकारते हैं। यह १० से १५ फीट तक ऊँचे होते हैं।

---

1. Gymnosperms. 2. Angiosperms. 3. Dicotyledons
4 Monocotyledons. 5. Algae. 6. Fungi. 7 Mosses.

४ क्षुप . जिनकी शाखायें व मूल ह्रस्व होते हैं। जो ५ से १० फीट तक ऊँचे होते हैं। यथा—ह्रस्वशाखाशिफः क्षुपः। अगर।

५ स्थाणु : जो एक स्तंभ की तरह आकार मे होते हैं। शाखायें नहीं होतीं या बहुत कम होती हैं। इनको स्थाणु कहते हैं।

६ गुल्म : जिनमे एक मूल से कई शाखायें निकलती हैं। इन्हें स्तम्बक, गांछ भी कहते हैं।

७ लता : जो मूल मे निकल कर अपने शरीर को संभाल कर भूमि पर जाती हैं, शरीर कृश होता है। इन्हें वल्ली, व्रतती भी कहते हैं।

८ वीरुध : विस्तृत वल्ली को वीरुध कहते हैं। प्रतानिनी इनका नाम है। इनका प्रसार बहुत होता है और शाखा-प्रशाखायें अधिक होती हैं।

९ गुल्मिनी . झाडीदार पौधो को गुल्मिनी व उलप कहते हैं। वृक्ष की तरह लता मे भी आरोहिणी, प्रसारिणी, वामावर्तिनी, दक्षिणावर्तिनी, मूलारोहिणी वडिशारोहिणी, सूत्रारोहिणी इत्यादि कई उपभेद पाये जाते हैं।

पुन : इनके वर्णन मे कई बातो का विचार करना पड़ता है। आंगिक विवरण के आधार पर सामान्य भेद इस प्रकार हैं .

पुष्पिणी : जिनके पुष्पो का प्रयोग अधिक औषधि मे होता है।

फलिनी : जिनके फल का प्रयोग होता है।

मूलिनी : जिनके मूल का प्रयोग होता है मूलिनी कहलाती हैं।

कांडिनी : जिनके कांड का उपयोग होता है।

परन्तु इनके विवरण के आधार पर कई प्रकार के भेद हैं। प्रधान निम्न हैं :

आंगिक रचना के आधार पर वर्ग निर्माण .—

सामान्य रूप से दो भेद हैं :

१ वाह्य[1] रचना

२ [2]आभ्यंतर रचना .

पुन : इसके दो विभाग है :

१ स्थूल रचना[3]

२ सूक्ष्म रचना[4]

1, External morphology. 2. Internal morphology.

3. Histology. 4. Cytology.

स्थूल रचना :

इसमे वनौषधि के बाह्य आकृति को स्पष्ट रूप मे लिखा जाता है। जिसमे उसके आकार-प्रकार, लम्बाई-चौड़ाई, मोटाई व बाह्य आकारसम्बन्धी बातो पर विचार स्पष्ट दिया जाता है। इस विषय मे वनौषधि के कई प्रकार के अंगो का विवरण रखना होता है। जिनका विवरण नीचे दिया जाता है।

सूक्ष्म रचना : इसमे वनौषधि के स्थूल रचना के अतिरिक्त सूक्ष्म कोष-रचना, काष्ठ की रचना या जिस अग की रचना दी गई हो सूक्ष्म विवरण दिया जाता है। यह साहित्य आयुर्वेद के ग्रन्थो मे सामान्य मिलता है। किन्तु आज कल आधुनिक वनस्पति-विज्ञान के वनौषधि-परिचय—फारमेकाग्नोसी (Pharmacognosy) मे विस्तृत विवरण दिया गया है। इसके विवरण मे आवश्यकतानुसार उसका भी साहाय्य लिया गया है।

वनौषधियो के अग के विषय मे पर्याप्त विचारणा मिलती है। सक्षिप्त विवरण मे निम्न रूप मे कहा जा सकता है।

वेदो,[1] संहिताओ,[2] निघटुवो[3] मे इन अगो का उल्लेख है। [4]मनुस्मृति व [5]पुराणो मे भी यह पाया जाता है। यथा :

अंकुर, मूल, कांड, शाखा, पत्र, पुष्प, फल, बीज, त्वक्, सार, निर्यास, नाल, पल्लव, क्षार, क्षीर, भस्म, तैल, कटक, शुङ्ग, कन्द, प्ररोह, तुष, कण, बीजकोषभ्रूण, अकुर आदि कई भेद है जिस मे जो-जो मिलता है वह उसमे लिखा जाता है। इनके अतिरिक्त निम्न अंग भी राजनिघंटु-कार ने बताये हैं। सक्षेप मे इनका विवरण दिया जाता है। जो भी संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है वह यहाँ पर सक्षेप मे दिया गया है और विचार-वर्णन सौकर्य के आधार पर रखा गया है।

१ अंकुर[6] . बीज का वह अंश जो जमीन फोड कर बाहर आता है वह अंकुर या उद्भेद कहलाता है।

२ प्ररोह[7] . अकुर के बाद का वह भाग जो मूल के ऊपर रहता है, जिसमे पत्रादि निकलते है वह प्ररोह है।

---

१ वेद मे अथर्व काण्ड ।४।७ व ८।७।८ व ८।४।८

२. १—चरक : च० सू० अ० १। २—सुश्रुत : क० स्था० स्थावर विष विवरण

३ राजनिघटु व अमरकोष : वनौषधि वर्ग धरण्यादि वर्ग

४ विष्णु पुराण अ० ७ श्लोक ३७-३८ ५. मनुस्मृति: अ० १

६. Radical. ७. Plumule.

३ मूल या जड़ : अंकुर पृथ्वी मे जाने पर जिस रूप मे फैल कर नीचे क्षुप का रूप धारण करता है वह मूल या पाद, अंघ्रि, चरण, नेत्र आदि कहलाता है।

४ जटा : मूल के ही विभागो मे जटा भी है परन्तु यह स्कंध से निकलने वाले अग के लिये भी कहा जाता है। इसके नाम—जटा, शाखा, शिफा, सिरा, अवरोह आदि भी है।

काण्ड : मूल से शाखा पर्यन्त भाग का नाम काण्ड या प्रकाण्ड, दंड आदि है।

शाखा : स्कंध के ऊपर का भाग शाखा कहलाता है। लता के काड को भी शाखा कहते हैं।

शाला : शाखावो के समूह को शाला कहते है।

सार : काण्ड के भीतर के भाग को, जिसमे मज्जा या तैलाश होता है, सार कहते है।

कोटर : काण्ड के भीतर के भाग को निष्कुट या कोटर कहते है।

त्वचा : काड या लता के वाहरी भाग को त्वचा या आवरण कहते हैं।

पल्लव : नये कोमल रक्ताभ पत्र को पल्लव कहते है। किसलय, प्रवाल, पल्लव भी नाम हैं।

पर्ण : हरित पुष्ट पत्र को पर्ण कहते है। दल, वर्ह, पलाश, छदन, छद पर्याय हैं।

पर्णशिरा : पत्र के भीतर एकान्तरित या जिस रूप मे शिरायें उभरी रहती हैं उनको शिरा कहते हैं।

पुष्प : शाखाग्र पर लगे फूल को पुष्प, प्रसून, कुसुम, प्रसव, शुङ्ग-सूनु आदि पर्याय है।

वृंत : पुष्प या पत्र के आदि भाग को वृत कहते हैं।

फल : तरु के फल को फल कहते है सस्य भी इसका पर्याय है।

वध्य : जिन मे फल नही आते उन्हे वध्य तरु कहते हैं।

तुष : फल के ऊपर के धान्य आदि के आवरण को तुष या भूसी कहते है।

इस प्रकार कई अंग का भेद-प्रदर्शन किया गया है। छात्रो के सौकर्य के लिये इनका विवरण क्रियात्मक स्वरूप को लिखने के क्रम के लिये यहाँ पर यह क्रम क्रमश. किया जा रहा है ताकि सव प्रकार के छात्र समझ सकें।

सूक्ष्म विवरण मे यन्त्रो की सहायता लेकर जो कार्य किये जाते हैं उनका भी संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। आयुर्वेद के इस साहित्य को पुन. विस्तार-पूर्वक छात्रोपयोगी रूप मे दिया गया है जिन का नाम आदि रह गया है वह भी विवरण मे दिया गया है।

मूल का निर्माण

किसी प्रकार के वीज की उत्पत्ति के लिये प्रथम उसको बो देना पड़ता है। बो देने के वाद भी उचित सामग्री मिलने पर बीज का अकुरण होता है। जिनमे प्रधान चार वस्तुये होती है।

१ · ऋतु, क्षेत्र, अम्बु व वीज।

महर्षि चरक[1] का कथन है कि वीज को पृथ्वी के भीतर बो देने पर भी जल का सिचन व कालानुसार, वायु व ताप का मिलना आवश्यक होता है। समान रूप मे अंकुरित होने के लिये भिन्न-भिन्न ऋतु, उचित-भूमि, पुष्ट-बीज, व उचित मात्रा मे जल का होना आवश्यक है।

अङ्कुरण या अङ्कुरोद्भेद (*Germination*)

वीज भी कई प्रकार के होते हैं। सामान्य रूप से पेड के वीज को ही वोते हैं। परन्तु कई ऐसे वृक्ष है जिनके अकुरण के निमित्त बीज नही बोना होता। और उनका अकुरण वादल की गरजन, शिशिर-वायु-संपर्क होने पर या स्कध-रोपण पर होता है। भिन्न-भिन्न वीज व रोप्य वस्तु के लिये भिन्न-भिन्न काल व ऋतु होना चाहिये। जैसे वट[2], पीपल, पाखर आदि के लिये स्कंध का रोपण करने पर अंकुरण होता है।

अङ्कुरण :

कन्द आदि मे उसके कन्द, पुत्रिका या अन्य वस्तु के रोपण पर अकुर निकलता है। यथा · शूरण, कूठ व वच आदि।

वृहत् सहिताकार ने लिखा है कि अकुरण के लिये उचित मृदु भूमि होना चाहिये।

यथा : मृद्वी भू· सर्वसस्यानाम्।

---

१ ऋतुक्षेत्राम्बुवीजाना सामग्र्यादंकुरो यथा। चरक वि० स्थान ८

२ वटनिम्बपिप्पलनिम्बादीना जलधरनिनाद-शिशिरवायुसंस्पर्शादङ्कुरोत्पत्ति। षड्दर्शनसमुच्चय।

भूमि अच्छी भी हो और मृदु न बनाई जाय तो भी कार्य नहीं होता। अतः भूमि को मृदु व उपजाऊ बनाने के लिये कड़ी भूमि को कई बार सिंचन पूर्वक जोतते हैं तो वह मृदु हो जाती है और बीज डालने योग्य हो जाती है।

बीज मे उद्भिद के आवश्यक अंश उपस्थित रहते हैं। अतः उनको उपयोगी बनाना पड़ता है। बीज के भीतर उसका भ्रूण भोज्य वस्तु व रक्षक अंश होते हैं। उनको सक्रिय बनाने के लिये भूमि मे बीज डालकर पानी डालते हैं। अथवा इसे देखने के लिये बीज को पानी में डाल दें तो दिखाई पड़ेगा कि पानी मे डालने पर बीज फूल गया है। और बड़ा बन गया है। यथा : चना या एरड के बीज पानी मे डाले तो वे फूल कर बड़े बन जाते हैं। और उनमें निम्न लिखित अंग दिखाई पडेगे। १ बीज के ऊपर का कड़ा छिल्का। चना के आवरण मे एक नोकदार भाग होता है। नोक के पास एक छोटा दंडाकार भाग रहता है। यह नाभिचिह्न या 'हाइलम्[1] कहलाता है। इसके नीचे एक छिद्र होता है यह नाभि-छिद्र या माइक्रोपाइल[2]' कहलाता है। इस छिद्र मे पानी भीतर जाता है और भीतर का तत्त्व फूल जाता है। छिल्का भी मोटा हो जाता है। इसको हटा दे तो नीचे दो दाल दिखाई पड़ते हैं। दोनो दालो के संगम पर एक नोकदार भाग रहता है। यह नोकदार भाग ही अंकुर है। और दाल द्विदल है।

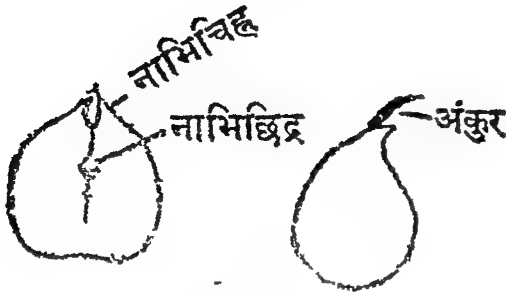
जो भाग नोक की तरफ होता है वह प्रारम्भिक[3] मूल कहलाता है। और जो भाग द्विदल व भ्रूण के या अंकुर के बीच होता है वह प्रारम्भिक[4] प्ररोह का भाग बनता है। शेष भाग बीज के पोषण के लिये रहते हैं। प्रारम्भिक मूल बढकर मूल का रूप धारण करता है और प्ररोह उस के काण्ड का रूप ग्रहण करता है।

इसी प्रकार एरंड के बीज को ले तो दिखाई पडेगा कि बीज के ऊपर एक कडा आवरण है और वह पानी मे फूल कर बीज सहित मोटा हो गया है अधिक फूल जाने पर एरंड का कड़ा छिल्का फट जाता है और भीतर से एक श्वेत वर्ण की वस्तु दिखाई पडती है। यह भ्रूण की भोज्य-सामग्री है। दोनो भागो के बीच मे अंकुर दिखाई पडता है जो नोकदार होता है और नोकदार भाग से दोदल लगे रहते हैं। यह दल हैं और पत्रवत् होते हैं। नोकदार भाग आदि मूल का व अन्य पत्रक का भाग प्ररोह का स्वरूप धारण करते हैं।

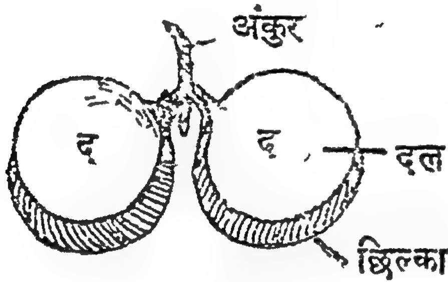
---

1. Hilum.
2. Micropile.
3. Radicle.
4. Plumule.

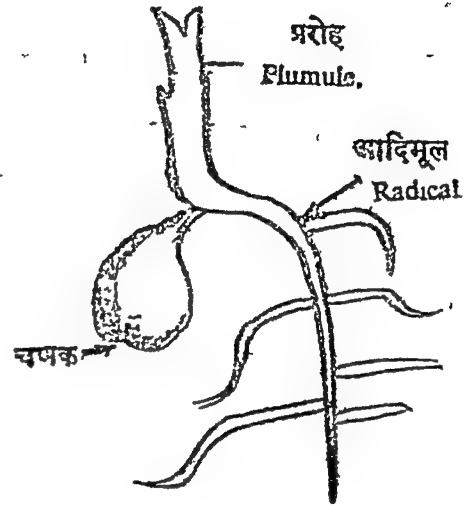
इसी प्रकार एक दल वाले पौधो मे भी अंकुरण होता है। इसका स्वरूप कुछ पृथक् होता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न बीज के अंकुरण का भिन्न-भिन्न क्रम होता है। एकदलीय पौधो मे मक्का आता है। इसके पतले छिल्के के



चित्र १



चित्र २



चित्र ३

नीचे द्विदल की तरह रचना नही होती। इसमे एक बड़ा भाग होता है। यह इसका गर्भभोज्य द्रव्य है और छोटा भाग दूसरा होता है इसमे भ्रूण छिपा रहता है। इसकी परीक्षा के लिये यदि इस पर आयोडिन द्रव की एक बूँद डाले तो, गर्भभोज्य गहरा-नीला और दूसरा भाग हरा दिखाई पडेगा।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न पौधो मे अंकुरण का क्रम भिन्न होता है।

इस प्रकार देख पाते है कि सब प्रकार के बीजो मे, प्ररोह का भाग बढता है जो, प्रारम्भ मे मुडा रहता है। फिर द्विदल वालो मे यह अश ऊँचा उठ जाता है और दालो वाला भाग ऊपर उठकर, पत्र बन जाता है, अकुर का भाग नीचे चला जाता है और मूल का स्वरूप धारण करता है। इस प्रकार एक बीज उद्भिद का स्वरूप धारण करता है और अंकुर मूल का रूप और प्ररोह काण्ड का रूप धारण करता है। यह मूल-निर्माण की कहानी है। यहाँ से मूल की उत्पत्ति होकर कई रूप मे विस्तार होता है। और बीज एक वृक्ष बन जाता है।

मूल व उसके भेदोपभेद

मूल : परिभाषा :

उद्भिज्ज का वह भाग जो कि उसके पोषण का आधार होता है, पृथ्वी के भीतर जाकर उसे स्थिर करता है, मूल कहलाता है। इसका शाब्दिक अर्थ भी यही है कि जो उद्भिज्ज को सहारा देकर भूमि मे स्थापित करे। यथा ' मूलति प्रतितिष्ठति उद्भिज्जं भूमौ इति मूलम्।

अंकुर का भाग ही मूल बनता है। इसमे अकुर के अधोगामी भाग को आदि[1] मूल व ऊर्ध्वगामी भाग को प्ररोह[2] कहते हैं। मूल सदा प्रकाश के विरुद्ध नीचे जाता है और प्ररोह सदा प्रकाश की तरफ जाता है। यह अकुर के प्रारभिक दो भाग हैं।

मूल बन जाने पर इसके चार प्रधान भाग दृष्टिगोचर होते हैं। यथा :

१ ' मूल कोश[3]
२ : वर्धनशील[4] भाग
३ . शोषण[5] शील भाग
४ . शाखायुक्त[6] भाग

मूल कोश : वह मूल का भाग जो कि एक कोश से आवृत रहता है। इसे मूल-कोश या टेपरूट[7] कहते हैं।

२ वर्धनशील भाग : मूल कोश के पीछे का भाग जो नये रूप को देकर बढता है वह वर्धनशील भाग कहलाता है।

३ शोषणशील भाग : वर्धनशील भाग के पश्चात् भाग को शोषणशील कहते हैं क्योकि इनमे रोम होते हैं और यह पृथ्वी से वनौषधि के लिये लवण व जल का शोषण करता है। और पौधे को बढाता है।

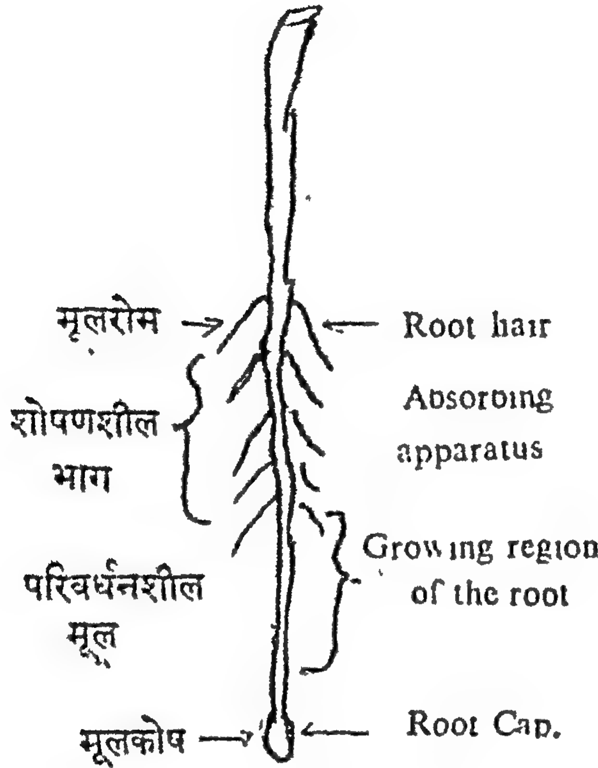
शाखायुक्त भाग : यह शोषणशील भाग के ऊपर और काडाधार के नीचे होता है। इस भाग से ही शाखारूप मे उपमूल निकलते हैं। इसकी कई जातियाँ होती हैं।

१ प्रारम्भिक मूल : द्विदलीय पौधो मे आदि मूल बढ कर जब नीचे जाता है तो उसकी संज्ञा आदि मूल या [8]प्राइमरी रूट होती है।

---

१. Radicle.
२. Plumule
३. Root cap.
४. Growing Rigeon
५ Absorbing Regeon
६. Branching Regeon
७ Tape Root.
८. Primary Root.

२ उपमूल : प्रारम्भिक मूल के पृथ्वी मे जाने के वाद उसके पार्श्व से जो शाखाये निकलती हैं उन्हे उपमूल या सेकेन्डरी[1] रूट कहते है। यह भूमि मे तिरछे फैलते हैं।



चित्र ४

३ प्रधान मूल : प्रारभिक मूल यदि भूमि मे जाकर वढे और मोटी हो जाय और शाखावो से भी मोटी रहे तो यह प्रधान मूल होता है।

४ शाखायुक्त प्रधान मूल : यदि प्रधान मूल प्रारम्भ मे मोटा हो परन्तु लम्वाई मे छोटा हो और पार्श्व से लम्वे-लम्वे उपमूल निकल कर मोटे-मोटे वन जायं तो उसे शाखा-प्रशाखा युक्त प्रधान मूल या फाइ[2]ब्रश टैपरूट कहते है।

५ अवरोह या सहायक मूल : वृक्षो या पौधो के शाखा या काण्ड के पर्व से या स्कध से मूल की तरह लटकने वाला मूल जो लटक कर जमीन मे समा जाय उसे अवरोह या एरियल[3]रूट कहते हैं।

यथा : वट, पीपल आदि के अवरोह।

---

1 Secondary Root. 2. Fibrous Root.

3. Aerial Root.

स्कंधोद्भव अवरोह : यदि यही अवरोह स्कध से निकले तो उसे स्कंधोद्भवमूल कहते हैं। और जब ये स्कंध से निकल कर मूल के चारो तरफ भूमि मे जाकर पौधे को खडा रखने मे सहायक हो तो इन्हे सहायक मूल या, स्टिल्ट[1] रूट कहते है यथा ज्वार व वाजरे का मूल या केवडे का मूल।

६ अवलबक मूल : जो मूल किसी लता या मूलारोहिणी लता के काण्ड पर से छोटे-छोटे मूल के रूप मे निकले और लता को वृक्ष या दीवाल पर चढने में सहायक हो तो इन्हे सहायक मूल या अवलवक मूल या क्लाईम्बिग[3] रूट कहते हैं।

७ स्तभाकार मूल : जो मूल किसी वृक्ष की शाखा से निकल कर भूमि की तरफ जाकर भूमिवद्ध होकर एक स्तंभ या स्कध की तरह मोटी हो जाय और वृक्ष को सहारा पहुँचावे उसे स्तंभाकार मूल या कालमनर[2] रूट, प्राप या पिलर कहते हैं।

आवास भेद से यह तीन प्रकार के होते है।

१ भौमिक मूल : जो मूल भूमि मे रहते हैं भौमिक कहलाते हैं।

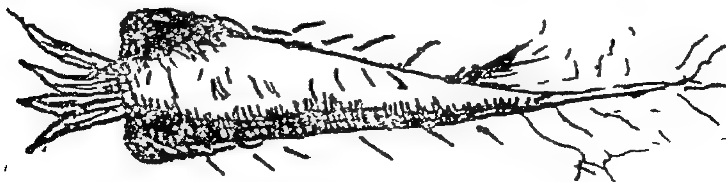
२ आप्य मूल : जिनके मूल जल मे रहते है। आप्य कहलाते है।

३ वायव्य मूल : जो मूल भूमि से वाहर निकले रहते है वायव्य मूल कहलाते हैं।

परिवर्तित मूल के रूपान्तर :

कन्द : मूल का आकार जव मोटा कन्द के रूप मे हो जाता है तो इस प्रकार के मूल को संग्राही या कन्द या स्टोरिग[4] रूट कहते है। इसके कई भेद होते हैं।

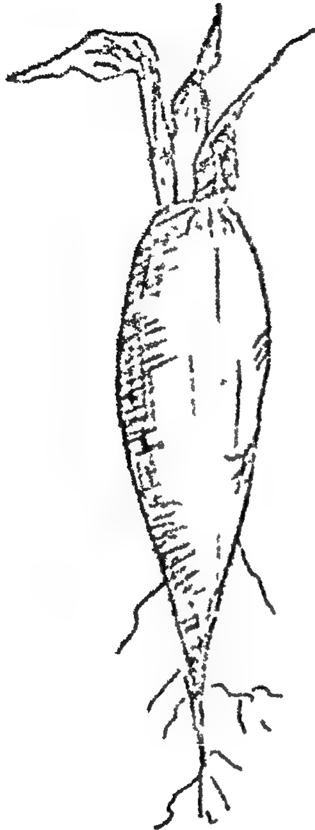
१ शंकाकार : जो मूल ऊपर मोटे और क्रमशः नीचे पतले होते जाते है और आकार शंकु की तरह वनाते है उन्हे शंकाकार या[5] कोनीकल कहते हैं।

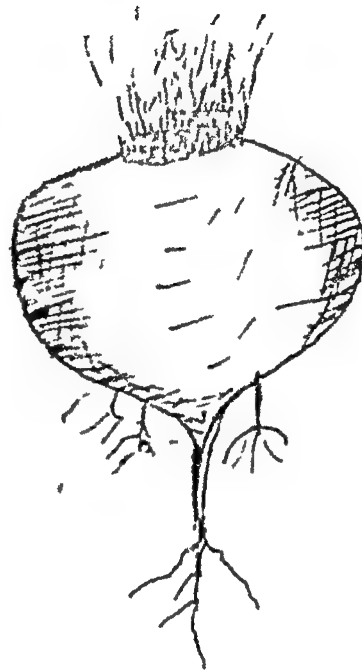


चित्र ५

१ Stilt Root
२. Colomner Root.
३ Climbing Root
४. Storing Root
५ Conical.

२ मूलकाकार : जो मूल प्रारम्भ मे पतले बीच मे मोटे और नीचे क्रमशः पतले होते जाते हैं और मूली का आकार बनाते हैं उन्हे मूलकाकार या 'फ्यूजी फार्म' कहते हैं।





चित्र ६ चित्र ७

३ लट्वाकार : जो कन्द या मूल ऊपर सिरे पर बहुत मोटे और वृत्ताकार होते हैं और नीचे एकायक पतले हो जाते हैं उन्हे लट्वाकार या नैपीफार्म' कहते है।

अनियमित मूलों के विभिन्न रूपान्तर :

अनियमित मूल कई प्रकार के होते है। इनका आकार भिन्न-भिन्न रूप का होता है।

१ कन्दाकार मूल : जिन मूलो मे आदि का मूल पतला और बीच मे मोटा और अन्त मे फिर पतला होता है उन्हे कन्दाकार मूल या ट्यूबरस' रूट कहते हैं। इनके भिन्न-भिन्न आकार है। यथा :

---

१ Fusiform. २ Napeform ३ Tuberous Root.

२ क्रि० औ०

क : सामान्य कन्द : जो उभय पार्श्व मे मोटे व बीच मे पतले होते हैं। यथा : शकरकन्द, शतावरी।

ख : कन्दगुच्छ : जो मूल कई सख्या मे एक ही मूल से निकलते हैं और आकार गुच्छ का बनाते है उन्हे कन्दगुच्छ कहते हैं। यथा शतावरी, मूसली आदि।

ग : करतलाकार कन्द : जिनका आकार करतल के आकार का हो उन्हे करतलाकार कन्द या, पामेटेड[1] ट्यूबरस कहते है। यथा : सालम पजा।

इसी प्रकार अन्य प्रकार के आकार का भी नामाकन किया जाता है। यथा

वत्सनाभ : जिस का आकार बछडे की नाभि की तरह हो उसे वत्सनाभ कहते है।

शूरण कन्द : जो कन्द ऊपर मोटा वृत्ताकार और नीचे वृत्त रूप मे धीरे-धीरे गोलाकार हो जाता हो उसे शूरण कन्द कहते है।

वज्र कन्द : जिस का आकार वज्र की तरह हो उसको वज्र कन्द कहते है।

वाराही कन्द : जिसका आकार वाराह के मुख के सदृश हो उसे वाराही कन्द कहते हैं।

इसी प्रकार विदारी कन्द, श्रीकन्द, पिंडालुक कन्द, आदि को भी समझना चाहिये।

वायवीय मूल का रूपान्तर जो मिलता है

जो मूल जमीन से बाहर रहते है उनको वायवीय मूल कहते है। उनके रूपान्तर विभिन्न प्रकार के होते है। यथा

१ स्तंभाकार भूमि के ऊपर जो मूल स्तभाकार हो उन्हे स्तंभाकार मूल कहते हैं। यथा वट।

२ श्वासग्राही मूल जो मूल भूमि मे या पकयुक्त भूमि मे श्वास ग्रहण करने के लिये ऊपर छिद्रित होकर निकल आते है उन्हे श्वासग्राही या ब्रिदिग[2] रुट कहते हैं।

३ वातलम्वी मूल वे पौधे जो किसी अन्य वृक्ष से चिपके रहते है पर उससे अपना खाद्य न लेकर अपनी मूल से सूक्ष्म मूल या अवलम्बी मूल निकाल करके आहार ग्रहण करते हैं उन्हे वातावलम्बी मूल कहते है। यथा वन्दाक या बंगाली रास्ना मूल।

---

१ Palmated २. Breathing Root.

४ प्रवाल सदृश मूल : जो मूल प्रधान मूल के अतिरिक्त ऊपर से अन्य कई मूल देकर शाखा-प्रशाखा दे देते हैं उन्हें शाखी प्रवालमूल या कोरोलोयड[1] रूट कहते हैं।

शोषक मूल : जो पौधे अपने मूल से दूसरे पौधो को भेद कर उससे आहार ग्रहण करते है वे शोषक [2]मूल होते हैं। जैसे वान्दा की कई जातियाँ।

संतानोत्पादक मूल : कुछ पौधो मे कलम लगाने पर उससे मूल निकल कर दूसरे पर चिपक जाते हैं और दूसरा पौधा बनाते है, वे सतानोत्पादक मूल या रिप्रोडक्टिभ[3] रूट कहलाते है।

मूल का विवरण :

ग्रन्थिवत् मूल :

जो मूल आगे जाकर गाठ की तरह मोटा हो जाय उसे तथा जो कि आगे जाकर ग्रथि की तरह मालाकार रचना बनावे उसे ग्रन्थिवत् मूल कहते हैं।

इस प्रकार सैकडो भेद मूल के पाये जाते है।

मूल के कार्य :

१ स्थैर्यकृत् · मूल पौधो को जमीन मे दृढ स्थापन करता है। प्रधान मूल के रूप मे कही पर प्रधान मूल से विभिन्न रूप का शाखादार मूल निकल कर पेड को स्थिर रखता है। इस प्रकार वह वृक्ष को सरक्षण प्रदान करता है।

२ शोपण कर्म · मूल पृथ्वी से रस का शोपण करके वृक्ष या क्षुप को आहार प्रदान करता है। और वनौपधि के जीवन का रक्षण करता है।

३ रस सवहन · मूल पृथ्वी से विभिन्न प्रकार के लवण व जल का शोषण करने के बाद उसका सवहन करा कर जीवन की रक्षा करता है। मनुष्य मे जिस प्रकार रस सवहन होता है उसी प्रकार से पेडो मे भी रस का सवहन होता है।

४ सग्रह · वृक्ष या पौधो की रक्षा के लिये मूल आहार-सामग्री का सग्रह करके उसके भविष्य के जीवन की सुविधा को प्रदान करता है। औपधियो मे कन्द मूल व अन्य प्रकार के जितने साधन है वह मूल से ही मिलते है। इस निमित्त पौधो की रचना मे विशेष प्रकार के सूक्ष्म रचनाओ का होना यह

---

१. Coroloid Root २. Parasitic Root

३. Reproductive Root

वतलाता है कि इसके जीवन के लिये ये आवश्यक है। अन. मूल की रचना व उनका विवरण आगे दिया जा रहा है।

मूल की प्रारंभिक आन्तरिक रचना

(Primary internal structure of the Root)

मूल की रचना मे जव यह एकदलीय व द्विदलीय के भेद से विचारा जाय तो दोनो मे भेद दिखाई पडता है। काण्ड मे भी इसी प्रकार का भेद मिलता है और इसके आधार पर दोनो की रचना का भेद किया जाता है। इन रचनावो को अध्ययन करने के लिये इनके छेद, अनुलम्ब व अनुप्रस्थ लेने पडते हैं, और उनका अध्ययन करते है। विवरण निम्न मिलता है।

द्विदलीय रचना :

द्विदलीय मूल की रचना मे छेद लेने के वाद हमे विचारणीय विवरण मिलता है वह यो है वीज के भीतर के भागो को जो उसमे रहते हैं विचारें तो कई भाग मूल-निर्माणकर होते हैं। यदि अनुप्रस्थ छेद ले तो रचना मे यह दिखाई पडेगा ·

१ : सब से वाहर की तरफ एक कोष की दीवाल होती है। यह समान रूप से चारो ओर होती है इसे मूल त्वक् या एपीव्लेमा[१] कहते है। इसी मूल त्वक् की कुछ कोषाये, परिवर्द्धित होकर मूल के रोम का स्वरूप धारण करती है।

२ : इसके वाद की दीवाल कई कोषाओ की वनी होती है जो कि मोटी होती है। इसे इसका प्रान्तीय भाग या कोरटेक्स[२] कहते हैं। इसकी कोषायें अनियमितकोषा की होती हैं और पतली दीवाल वनाती हैं।

३ · इसके वाद एक अनिश्चित आकार की कोषाओ की वनी मोटी दीवाल होती है। यह स्तर अन्तस्त्वक् या इडोडरमिस[३] कहलाता है।

४ . इस के वाद एक अपेक्षाकृत छोटी, कोषावो का दूसरा स्तर ऊपर-वाले स्तर मे सटा हुआ होता है। यह एक प्रकार की रचना के चक्रक्रम को वनाता है इन्हे पेरीसाइकिल[४] कहते हैं। इसकी कोषाये पतली भित्तिवाली लग-भग षट्कोण-होती हैं।

५ : इसके वाद एक स्तर मिलता है जिसका कार्य मूल मे रस-सचार

---

१ Epiblema　　२ Cortex

३ Endodermis　　४ Pericycle

करने का होता है। यह रचना मूल व काण्ड मे विशेष प्रकार की होती है। इसी आधार पर इसका विभाजन किया जाता है। यथा :

इसमें क्रमश. निम्न रचना होती है :

१ : इसमे मृदु सूत्र (फ्लोयम[1]) व कठिन सूत्र (जाइलम[2]) की रचना का कोपसमूह पृथक्-पृथक् होता है।

२ वृत्ताकार पेरीसाइकिल की रचना एक निश्चित क्रम मे समूह के रूप मे पाई जाती है और इनकी संख्या भिन्न-भिन्न पौधो मे भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। इसमे चार या पाँच से लेकर कई समूह होते है। किन्तु यह निश्चित रहता है कि मृदु सूत्र की व कठिन सूत्र (फ्लोयम व जाइलम) की समूह संख्या समान होती है और क्रमश. एक समूह जाइलम का तो एक समूह फ्लोयम का होता है। फिर एक जाइलम का और फिर एक फ्लोयम का इस प्रकार क्रम मे होता है। इस प्रकार की रचनाओ का ध्यान रखना होता है।

३ प्राथमिक जाइलम[3] की कोपाये जो कि छोटी व पतली होती है वाहर की तरफ रहती हैं। काण्ड मे यह भीतर की ओर होती है या केन्द्र की ओर होती है। जब यह केन्द्र की दिशा मे अर्थात् भीतर की ओर होती है अतः स्थितीय[4] कहलाती है और जब वाहर की तरफ रहती है बाह्य[5] स्थितीय कहलाती है। दोनो समूह अलग-अलग होते है। इनके बीच मे मृदु मज्जा भाग रहता है। इसको पिथ[6] कहते हैं। किन्तु कभी-कभी देखा जाता है कि जाइलम समूह केन्द्र की तरफ एक मे मिले रहते हैं ऐसी दशा मे पिथ का भाग अलग नही दिखाई पडता।

मूल की अन्तरिक रचना :

काण्ड व मूल की त्वगीय रचना मे कोपाओ मे एक अन्तर उनकी स्थिति के कारण भी होता है। काड त्वक् की कोषाये मोटी और दृढ भित्तियुक्त (क्यूटिन युक्त) होती है। और यह अपने भीतर से पौधो के जल त्याग को रोकती है। मूल त्वक् की कोपाये सामान्य व पतली दीवाल की होती है। ताकि यह सरलता से भूमि से रस आदि ग्रहण कर सके।

एकदलीय मूल की रचना : (Monocot roots & it's structure.)

सामान्य रूप से एकदलीय व द्विदलीय पौधो के मूल मे प्रारम्भ मे कोई

१ Phloem २ Xylem ३ Protoxylem
४. Endarch ५ Exarch ६ Pith

अन्तर नही होता किन्तु कुछ काल के वाद उनमे विभेदक लक्षण दिखाई पडते हैं, यथा

१ : एकदलीय मूलो मे मृदु व कठिन सूत्र की समूह सँख्या प्राय. द्विदलीय की अपेक्षा अधिक होती है। द्विदलीय मे दो-दो या पाँच-पाँच समूह होते है। कभी-कभी अधिक भी रह सकते है। किन्तु एकदलीय मे यह सख्या प्राय १२-१५ या वीस तक हो सकती है। कम-से-कम ७ या ८ तक हो सकते है। जव दो-दो के समूह होते हैं उन्हे द्विस्तंभीय[1] तीन-तीन की संख्या मे होने पर त्रिस्तभीय,[2] चार-चार की संख्या मे चतु.स्तभीय,[3] पाँच समूह मे होने पर पञ्च-स्तभीय[4], और अधिक होने पर वहुस्तंभीय सज्ञा होती है।

द्विदलीय मूलो मे द्वितीया वृद्धि कैम्बियम, कार्क कैम्बियम के निर्माणपूर्वक होती है। एकदलीय मे यह द्वितीया वृद्धि नही होती।

द्विदलीय मूलो की द्वितीया वृद्धि का क्रम :

जव पौधे प्रारम्भ मे उगते है तव उनके वीच मे मृदु धातु के सूत्र भीतर की तरफ रहते है। धीरे-धीरे जैसे-जैसे पौधे वढ़ते है यह आगे को वढता जाता है, पौधे को धारण करने वाले कठिन सूत्रो का जन्म होता जाता है और पौधे पीछे की तरफ मोटे होकर वढने लगते है। अत॰ प्रथम वृद्धि के वाद जव द्वितीय वृद्धि होती है तव मृदु सूत्रो के सपर्क मे रहने वाली कोषाये विभजन-शील होकर कैम्बियम का रूप धारण करती है। इस प्रकार जितने समूह मृदु कोषावो के होते है उतनी ही पट्टिया इन कोषावो की वन जाती है। इस प्रकार जितने समूह इन मृदु सूत्र वाले कोषास्तरो का होता है उतने ही, पर्त काष्ठ की रचना के वाद वनते जाते है।

यह विभजनशील कोषावो की पट्टियाँ पेरीसाइकिल के वृत्त तक वढती है। और उनकी कुछ कोषाये विभजनशील वन जाती है। इसके वाद इन विभजनशील कोषाओ का समूह इस प्रकार आपस मे मिल जाता है कि एक पूरा ऊँचा-नीचा वृत्त सा वन जाता है। जिस मे फ्लोयम के समूह वाहर की ओर और कठिन सूत्र समूह भीतर की ओर हो जाते है। अव इसके वाद के निर्माण मे भीतर कठिन सूत्रमय व वाहर मृदु सूत्रमय रचना वनती है।

शीघ्र ही इन विभजनशील कोषाओ का वृत्त जो कि ऊँचा नीचा था वह

---

१. Diarch २ Triarch.

३. Tetrarch ४ Pentarch.

एक वृत्ताकार आकार धारण करता है और उसके बाद समूचे पेरीसाइकिल का वृत्त भी स्वयं विभजनशील हो जाता है। बीच-बीच मे इन विभजनशील कोषावो का साधारण पतली कोषावो का निर्माण भी होता है और इस कारण मध्यवर्ति स्थान मे किरणो की तरह नई रचना वन जाती है।

काण्ड की तरह वार्षिक वृत्तो का निर्माण भी यहाँ पर होता रहता है। किन्तु यह रचना इतनी स्पष्ट नही होती। काण्ड के समान कार्क कैंबियम की उत्पत्ति हो कर त्वचा आदि का निर्माण, पुराने मोटे मूलो मे परिणत हो जाता है।

काण्ड या स्टेम (STEM)

परिभाषा : मूल के ऊपर से अन्तिम शाखा निकलने तक के भाग को काण्ड कहते है।

इसके दो-भेद होते है यथा १ : प्रकाड या स्कध
२ सामान्य स्कंध या काण्ड

प्रकाण्ड या स्कंध : मूल से प्रथम शाखा निकलने तक के भाग को स्कध कहते है।

सामान्य काण्ड : स्कध से ऊपर के उस भाग तक को जहाँ तक शाखाये निकलती है वह सामान्य काण्ड कहलाता है।

यह काण्ड कई प्रकार के होते है तथा बड़े वृक्ष और छोटे क्षुप तक मे पाये जाते हैं। इनमे शाखापर्व और अक्षि होते है। इनके भेद; यथा :

१ : सीधे मजवूत व दीर्घ काण्ड को स्कध या काडेक्स[1] कहते है यथा : ताल स्कध।

२ : जो स्कध ग्रन्थियुक्त व भीतर से खोखले होते है वह भी स्कध कहलाते है। यथा : वश स्कंध।

३ . छोटे पौधे या लताओ मे काण्ड प्रारम्भ मे उठ कर, पुन. प्रसर जाते है और उनके पर्वों से नये पल्लव व शाखाये निकलती है उन्हें भूप्रकाण्ड वा स्थगित प्रकाण्ड अडर ग्राउड स्टेम[2] कहते है।

४ आकार : काण्ड आकार मे कई प्रकार के होते है। यथा :

१ : वृत्ताकार[3] २ : अर्द्धवृत्ताकार[4]
३ : त्रिकोण ४ चतुष्कोण

---

१. Caudex
२ Under ground stem.
३. Cercular
४. Samı cercular

५ · चपटा ६ : नलिकाकार–शाखा–रहित इत्यादि ।

इसके पृष्ठ : मसृण[१] रोमश[२] खर या कर्कश तथा कंटकी होते है। ये कंटक कही कड़े कही मृदु होते है।

काण्ड भेद : १ वायवीय[३] जिनका स्थान वायु मे होता है।
२ भौमिक[४] जो भूमिपर पसरते है। वायवीय के कई कई भेद होते है। यथा :

१ : स्वावलम्वी[५] ये दृढ होने से स्वत. खड़े होते हैं।

२ : परावलम्वी[६] या मृदु काण्ड : पतले, दुर्बल व लम्वे होते है तथा भूमि पर प्रसरणशील होते हैं। इनकी वल्ली, लता, प्रसर इत्यादि संज्ञा होती है।

भौमिक काण्ड : जो काण्ड वायु मे वढने के बदले भूमि मे बढते है, अधोगामी होते है उन्हे भौमिक काण्ड कहते है। यह स्थूल, मासल, रसदार व खाद्य पदार्थो से युक्त होते है। इन्हे रूपान्तरित काण्ड भी कहते है।

शाखा : शाखाये काण्ड से निकलती है। इनके कई भेद होते है।

१ : पार्श्विक : जो शाखा पार्श्व से निकलती हैं उन्हे पार्श्विक कहते है। इनके परिमित व अपरिमित भेद दो प्रकार के होते है -

अपरिमित[७] :

जिनमे वहुसख्यक शाखाये काण्ड के अन्त तक निकलती हैं। यथा . देवदार।

परिमित[८] :

जव काण्ड थोड़ी दूर बढ कर रुक जाता है और शाखाये ही वढ़ कर शाखा-प्रशाखा देती है तो उन्हे परिमित कहते है। यथा . करौंदा

काण्ड के वायवीय रूपान्तर : (Aerial modification of stem)

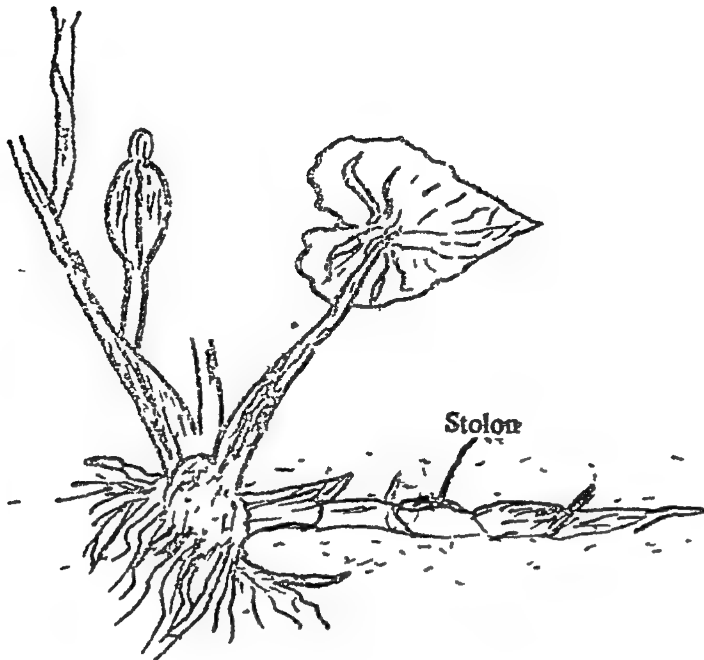
१ दीर्घ मूलिनी : (Runner) जो शाखा, जमीन मे जड़ देती हुई फैलती है यथा . ब्राह्मी

२ ह्रस्व मूलिनी (Stolan) यह पूर्व की भाँति ही होती है पर काण्ड छोटा होता है और उस पर पत्तियो का गुच्छा होता है। यथा · कुंभी

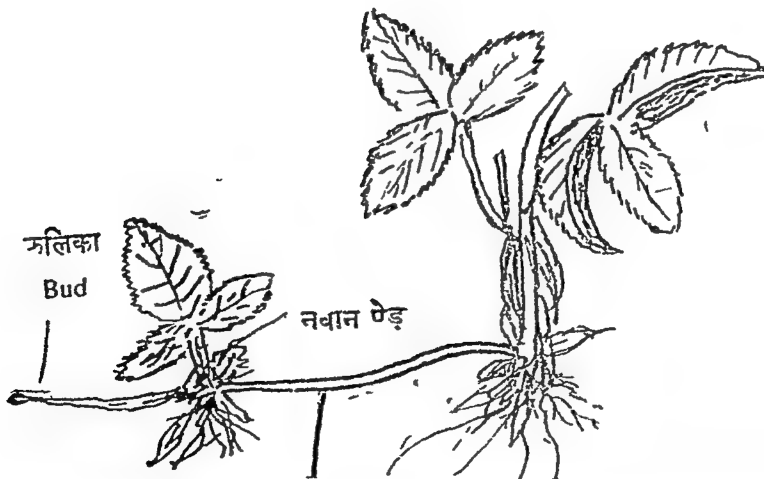
---

१. Glabrous
२. Hairy
३. Aerial
४ Sub terranion
५. Erect stem
६. Week stem
७ Racemose or Monopodial or Indefinite
८ Cymose or Sympodial or Definite

३ नत मूलिनी : (Offset) पतली व लम्बी शाखा जो ऊपर उठती है वढकर फैल जाती है और फिर भूमि स्पर्श कर नई जडे देती है और वहा नया पौधा वन जाता है यथा : पिपरमेट।



चित्र ८



चित्र ९

४ : पत्राभास : काड : जो देखने मे हरे चिपटे या पत्राकार शाखाओ के रूप मे होती हैं इन पर पत्र वहुत सूक्ष्म छोटे पतले लगे रहते हैं कभी इन पत्रो का अभाव होता है। यह भूमि मे पाये जाते है। ये काड पत्र का भी काम करते हैं यथा : नागफणी व शतावरी।

५ : कंटकी काड : काड कभी-कभी कंटको के रूप मे रूपान्तरित हो जाता है ये तीक्ष्णाग्र होते है।

१ . कंटक के भेद : १ शाखोद्भव : २ ' पत्रोद्भव ३ : उभयोद्भव।

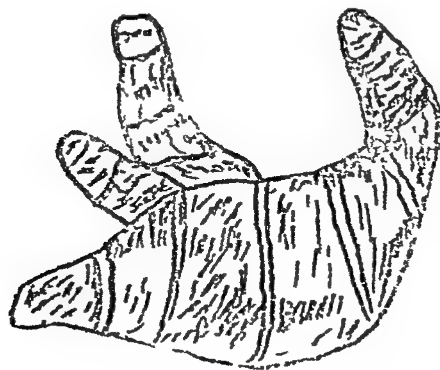
शाखोद्भव : यह कठिन तीक्ष्णाग्र शाखा के पत्र कोण से निकलते है इनकी रचना काड की तरह होती है। और कभी-कभी इन पर पत्र व पुष्प भी निकलते है। इन्हे शाखोद्भव कटक या थार्न कहते है। यह अंतर्जात होते है।

पत्रोद्भव : यह पत्र या उसके किसी भाग के रूपान्तरित होते है। तीक्ष्णाग्र व वहिर्जात होते हैं इनका संबंध काड से पृथक् पत्र से होता है यह पत्र के पृष्ठ या किनारे पर दोनो तरफ होते है। यथा : ग्वारपाठा, नागफणी। इन्हे पत्रोद्भव या स्पाइन्स कहते है।

उभयोद्भव : यह कठिन तीक्ष्णाग्र व पत्रोद्भव काटो से छोटे होते है इन्हे उभयोद्भव या प्रिकल्स (Prickles) कहते है। यह हटाने पर सरलता से अलग हो जाते है इन्हे वहिरुद्भव या आउट ग्रोथ (Out grouth) कहते है।

तंतुमत् कांड : (Stem Tendrils) ये पतले और तार की तरह होते हैं। इनमे पत्तिया नही होती। यह किसी वृक्षादि के सहारे से चिपक कर पौधे को ऊपर उठाते है। यथा . कुष्माड।

भौमिक कांड के रूपांतर : पूर्व मे इनका वर्णन मूल के अध्याय मे किया जा चुका है। यह सामान्य रूप से काड या कंद कहलाते है। यह प्रधान चार भेद का होता है। यथा :



चित्र १०

१ ' अनियमिताकारकाड कंद राइजोम (Rhizome)

२ : वृत्ताकार कंद या ट्यूबर (Tuber)

३ : वज्र कंद या कोरम (Coram)

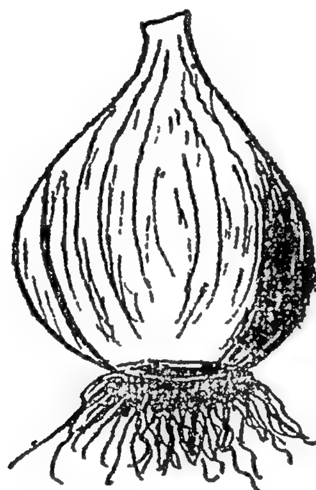
४ . वल्की कंद या बल्ब (Bulb)

अनियमिताकार : यह पुष्ट, मोटा, मासल, वृत्ताकार या गोल नलिकाकार स्थूल होता है।

वृत्ताकार कद : भौमिक काड का रूपान्तर मोटा फूला हुआ गोल अनियताकार खाद्य द्रव्यो से पूर्ण होता है। यथा आलू, कसेरु।

वज्र कंद : यह आकार मे बडा, मोटा, फूला हुआ, गोल या अनियताकार होता है। यथा ' सूरण, मानकद।

वल्कीकंद : यह अपने बल्क पत्रो से खाद्य सचय करता है वास्तविक काड छोटा होता है। यह मोठे मासल वल्क पत्रो से पूर्णत. ढका रहता है यथा . प्याज, रसोन, सुरजान यह कंद पत्रमय होते है



चित्र ११

कांड की आन्तरिक रचना

प्रायशः काड, मूल का अग्रगामी भाग होता है परन्तु इसमे कुछ रचनाओ के अतिरिक्त बाकी रचनाये भिन्न-भिन्न होती है। अत. इनकी रचना को सरलता से पृथक् किया जाता है। वनस्पतिशास्त्रियो ने इसका अध्ययन इतना गभीर किया है कि इनका पृथकरण सरलता से हो जाता है। फिर भी कभी-कभी यह विचार ऐसा आ पडता है कि मूल व काड की रचना को पृथक् करना कठिन हो जाता है। इसमे कारण कई है। कई प्रकार के काड भूगामी होते है। और उनका प्रत्यक्ष रूप मूल की तरह ही होता है। कुछ मूले पृथ्वी के नीचे न चल

कर बाहर हवा मे चलती है। और उनको बाहर देख कर कोई मूल नही मानते। जो भी हो इन स्थितियो से रचना मे कुछ अतर अवश्य आ जाता है। अतः आवश्यक हो जाता है कि मूल व काड की रचना का अध्ययन किया जाय। इस निमित्त काड व मूल की साधारण रचना, आतरिक रचना, उनके कोषाओ की रचना, त्वक् भाग, काष्ठ भाग व सार भाग की रचनाओं का अध्ययन किया जाय।

मूल व काड की आतरिक रचनाये जो प्रारंभ मे होती है बाद मे बहुत बदल जाती हैं। इस प्रकार के परिवर्तन के कारण ही वनौषधि अपने शरीर मे कई प्रकार के औषधि द्रव्य को अपने भीतर उत्पन्न करती है। अत इनका अध्ययन और भी आवश्यक हो जाता है। सामान्य रूप से साधारण पुष्प वाले उद्भिद् दो प्रकार के होते है।

१ द्विदलीय (Dicotyledons) व

२ : एकदलीय (Monocotyledons)

दोनो ही प्रकार के उद्भिदो के काड औषधार्थ प्रयुक्त होते हैं। इनकी रचना मे प्रारम्भ से अंत तक बहुत कुछ अंतर आ जाता है। अतः इनकी रचना को पृथक्-पृथक् ही अध्ययन करना आवश्यक है।

द्विदलीय कांड की रचना

प्रारम्भिक स्वरूप . (Primary Strueture)

काड की आतरिक रचना को अध्ययन करने के लिये इसका अध्ययन दो प्रकार से करना चाहिये। इसमे प्रथम छेद लेना पड़ता है। यह दो प्रकार से लेना चाहिये।

१ अनुप्रस्थ च्छेद (Transverse Section)

२ : अनुलम्ब च्छेद (Longitudinal Section)

इस प्रकार के छेद लेने के लिये कई यंत्र आते है परन्तु इनका · छेदन हाथ से भी सावधानीपूर्वक किया जा सकता है। एक सेल की मोटाई मे इसका कर्त्तन कर के पुन. अणुवीक्षण यंत्र से देखना चाहिये। इनको काटना, रंजित करके दर्शनीय बनाना आदि की पृथक् विधि है जो कि किसी वनस्पतिशास्त्र की पुस्तक से सहायता लेकर जानना आवश्यक है। एक द्विदलजातीय पौधे के छेद लेने पर निम्न बाते दिखाई देती हैं। रचना मे निम्न बाते होगी।

१ : सब से ऊपर एक निश्चित आकार की कोषाओ की भित्ति चारो ओर

दिखाई पड़ती है। यह त्वचा की होती है। इसे वाह्य त्वगीयभाग या एपीडर-मिस (Epidermis) कहते हैं।

इसके बाद बहुत सी कोषाओ की स्तरे दिखाई पड़ती है। इसके बाद विशिष्ट रचनाये भी दिखाई पडती है। यथा : १ : विशेष प्रकार के कोषाओ का समूह जो गोलाई मे स्थित दिखाई देते है।

गोलाई मे स्थित समूह जो कि दिखाई देते है। यह रसवाही नलिकाओ के समूह है। इनके द्वारा रस का सवहन होता है। इन्हे रसवाहिनी समूह या वेसकुलर बंडल कहते है। शेष भाग एक नियमित रचनाओ से बना होता है। इन रचनाओ को कई भागो मे विभक्त कर सकते है जिनमे तीन विभाग प्रधान होते हैं।

१ : परिसरीय भाग या कोरटेक्स : (Cortex)

ऊपर से रसवाहिनी तक का भाग परिसरीय कहलाता है।

२ : केन्द्रीय भाग . रसवाहिनी से लेकर अंदर केन्द्र तक का भाग मज्ज भाग या मेडुला (Medulla) या केन्द्रीय भाग या पिथ (Pith) कहलाता है।

३ : रश्मि दंड या मेडुलरी रेज . (Medullary Rays)

रसवाहिनी के बीच के हिस्सो से होते हुये अंदर से बाहर को फैल कर जानेवाली रश्मियो के आकार की रचना पाई जाती है इन्हे रश्मिदंड (Medullary Rays) कहते है। इन तीन विशिष्ट भागो का अध्ययन निकट से करे तो और भी विशिष्ट रचना दिखाई देगी। यथा :

१ : परिसरीय या कोरटेक्स का भाग : काड के सबसे बाहर का भाग एक कोषा की दीवाल से निर्मित होता है। इस भाग को बाह्य त्वक् या एपीडर-मिस (Epidermis) कहते हैं। शेष कोरटेक्स का भाग हाइपोडरमिस या अत. त्वक् कहते है।

२ : बाहरी त्वक् के ठीक नीचे दो या तीन कोषाओ की मोटाई की एक दूसरी तह होती है। इसे—कैलेन काईमा कहते है। इस भाग की कोषाये मोटी भित्ति की होती है। और यह मोटाई काष्ठोज या सेल्यूलोज के जमा होने से बनी होती है। इस स्तर मे विशेष रूप से काष्ठोज का संग्रह कोणो पर होता है। जहा इनकी मोटाई बढ जाती है। इन स्थानो मे सेलो मे हरित कण या क्लोरोप्लास्ट (Chloroplasts) होते है। यह रचना मृदु काडो मे ही पाई जाती है। काड के मोटे होने पर यह मृत होकर सूख जाते है।

३ इसके वाद पतली भित्ति वाली कोषाओ की कई कोषाओ की मोटी स्तर दृष्टिगोचर होती है। इस भाग मे प्राय निर्यास संग्रह करने वाली नलिकाये भी वन जाती है।

४ : इसके पश्चात् एक कोषाओ की स्तर वाली एक आतरिक त्वचा मिलती है। इसे अत त्वक् या इडो डरमिस कहते है। इस स्तर की कोषाओ मे नन्हें-नन्हे कण सूक्ष्मदर्शक यत्र से देखने पर दृष्टिगोचर होते है। आयोडिन के द्वारा रजित करने पर ये पहचाने जा सकते है। इस स्तर के ये कण स्टार्च के वने होते है। इसे पिष्टसग्राहक स्तर भी कह सकते है।

५ : इसके वाद अदर की ओर एक स्तर अन्य प्रकार के कोषाओ की मिलती है। यह जानना आवश्यक है कि इस प्रकार के स्तर मे भिन्न-भिन्न वृक्षो के काडो मे भिन्न-भिन्न प्रकार की रचना पाई जा सकती है। किसी-किसी मे यह एक गोले के रूप मे दिखाई देते हैं। किसी-किसी मे यह रसवाहिनी समूह के सदृश साथ-साथ केवल समूहो के चारो ओर होती है और किसी-किसी मे यह होती ही नही। इस स्तर को दृढ स्तर या हार्ड वास्ट (Hard bast) या कुछ लोग पेरीसाइकिल (Pericycle) भी कहते है। इसकी कोषाये कठिन व लिग्निन-युक्त होती है। आयोडिन से रंगने पर इसका रंग भूरा सा हो जाता है। इस प्रकार का स्तर वृत्ताकार रूप मे कुछ पौधो मे केवल एक कोषा की मोटाई का होता है। परन्तु अधिकाश मे यह कई कोषाओ के द्वारा वना होता है। और जायमान या जाईलम् के कोषाओ की रचना की तरह दिखाई पडता है।

६ : इसके वाद रसवाहिनी समूह के चक्र आते है। इस रचनाग के द्वारा रससवहन का कार्य होता है।

द्विदलीय पौधो मे रसवाहिनी समूह की रचना मे तीन प्रकार के कोष स्पष्ट दिखाई पडते हैं। यथा :

१ . सव से ऊपर वाहर की ओर मृदु कोषाओ का वना भाग या फ्लोयम (Phloem) का भाग होता है। अर्थात् मृदु कोषा की नलिकाये और केन्द्र की ओर कठिन कोषा की नलिकाये होती है। जिन्हे जाइलम का स्तर कहते है। इनको प्रारभिक फ्लोयम का और प्रारभिक ज़ाइलम का समूह कहा जा सकता है। इन दोनो के वीच विभजनशील कोषाओ की एक स्तर होती है इसे विभाजक स्तर कहते है। इसका नाम कैम्वियम या (केन्द्रियम्) भाग भी कहते हैं। इन स्थानो की विशेष रचना देखिये।

मृदु कोषीय स्तर या फ्लोयम (Phloem)

यह कोषा समूह रस वाहिनी के समूह के ऊपर स्थित होते हैं। इनको मृदु भाग या सोपट वास्ट कहते हैं। क्योकि यह वहुत ही मृदु व पतली भित्ति वाले होते हैं। इस स्थान की कोषाये लम्वे आकार की होती हैं। और आपस मे मिलकर छलनीयुक्त नलिकाओ का निर्माण करते हैं। यह नलिकाये द्रव पदार्थ को ऊपर से नीचे ले जाती हैं। इस प्रकार पत्तियो मे बनने वाला खाद्य पदार्थ इन्ही नलिकाओ के द्वारा नीचे को आकर सारे वृक्ष मे फैलता है। इसमे तीन प्रकार की कोषायें दृष्टिगोचर होती है।

१ : जालीदार रचना वाली कोषाये · (Sieve cells)

२ : साथी कोषायें या कम्पेनियन सेल्स (Companion cells)

३ : साधारण पतली दीवार वाली कोषाये। (Phloem Paremchyma)

इनकी विशेष रचनाये पृथक् से जानना चाहिये।

विभाजक स्तर : या कैम्वियम का स्तर : (Cambiam)

रसवाहिनी समूह की मध्य भाग मे इन विभजनशील कोषावो की स्तर होती है। यह कोषाये द्विदलीय पौधो मे नये कोषाओ का निर्माण करके काड की मोटाई को वढाती है। कैम्वियम की कोषाये यहा पर दो प्रकार की नई कोपाओ का निर्माण करती है। ऊपर की ओर मृदु कोषाओ का व नीचे जाइलम की कोपावो का। यह कैम्वियम कोपाये पतली दीवार की ओर चौखुटी सी होती है। और प्राय· गोलाई की दिशा मे लम्बी होती है। और इनमे कोष विभाजन की क्रिया होती रहती है।

जाइलम् या केन्द्रीय स्तर :

इस स्तर की दीवाल मोटी होती है और लिग्निनयुक्त कोषाओ से वनी होती है। इसकी नलिकाये स्पष्ट दिखलाई देती है। केंन्द्र की ओर की नलिकाये जो इन कोषाओ के लम्बाई मे मिलने से वन जाती है कुछ छोटी और ऊपर की ओर कुछ मोटी होती हैं। इनकी दीवारे कड़ी और मजबूत होती है। तथा इन नलिकाओ मे रस सचार नीचे से ऊपर को होता है इन कोषाओ का आकार गड्ढेदार सर्पिल या जालीदार होता है।

इनको विशेष रचना कोषाओ की रचना नामक शीर्षक मे देखिये।

रसवाहिनी नलिका समूह :

यह समूह शाखा-प्रशाखायुक्त होकर काड की शाखा और पत्तियो आदि मे फैले होते है। जहा इनमे शाखा निकलती है वहा यह तिरछे होकर और कोर-

टेक्स के भाग को चीरते हुये शाखा या पत्र मे प्रवेश कर जाते है। किसी-किसी द्विदलीय तने मे यह कुछ समूह ऐसे मिलते है जो केवल काड मे ही सीमित रहते है। अन्य भागो मे जानेवाले शाखायुक्त भाग पृथक् होते हैं।

इसके वाद का केन्द्रीय भाग पतली दीवाल वाले विशेष कोषाओ का वना होता है जिन्हे पैरेंकाइमा कहते है।

मज्जीय रश्मि :

इन रसनलिका समूहो के मध्य मे साधारण पैरेंकाइमा के कोषाओ के होने के कारण रश्मि के स्वरूप की रचना मध्य भाग से ऊपर की ओर जाती हुई दिखाई पडती है।

शुग या शीर्ष कली का रचना

शीर्ष कली के स्थान पर काड आगे को बढता रहता है यहा पर की प्रायः सब कोषाये विभजनशील होती है। और नये अङ्ग-प्रत्यङ्ग का निर्माण करती हैं। इस भाग का अनुप्रस्थ छेद लेकर हम देखें तो इसमे तीन भाग दिखाई देते हैं। यथा :

१ ' बाह्य भाग या डरमेटोजेन (Dermatogen)

२ : मध्य भाग या पेरीब्लेम (Periblem)

३ : केन्द्रीय भाग या प्लेरोम (Plerome)

यही तीनो भाग काड के उन सब भागो का निर्माण करते है जो हम ऊपर देख चुके है। इनका निर्माण क्रम इस प्रकार होता है। यथा :

१ : बाह्य भाग : इसके द्वारा बाहर की त्वचा तथा अन्य रोम आदि।

२ : मध्य भाग के द्वारा : परिधीय या कोरटेक्स का भाग बनता है जिसमे उपत्वचा व अतस्त्वचा बनती है।

३ . केन्द्रीय भाग . इसके द्वारा रसवाहिनी समूह तथा मज्जीय भाग या पिथ की रचना सम्मिलित होती है।

इस प्रकार की रचना काड मे उन पौधो मे दिखाई देती है जो कि थोडे समय तक जीवित रहते है। या जिनका काड प्रारभिक अवस्था मे होता है। साधारण द्विदलीय वडे वृक्ष प्रारंभ मे तो इस अवस्था मे रहते है। किन्तु आयु के साथ-साथ उनका शरीर वृद्धि करता रहता है। और उनका स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। इस प्रकार इन वड़े शरीर वाले वृक्षो मे आहार व औषध सगृहीत होते हैं।

वडे वृक्षो मे यह वृद्धि किस प्रकार होती है, वृक्ष किस प्रकार बढते है इस विषय के एकदलीय व द्विदलीय उद्भिदो मे पर्याप्त अतर रहा करता है। पहले कहा जा चुका है कि इन पौधो मे नई रचना का निर्माण करनेवाली धातु कैम्बियम होती है। इस धातु के द्वारा जो वृद्धि पौधो मे होती है वह द्वितीया वृद्धि कहलाती है। इस वात का ध्यान रखना चाहिये कि द्वितीया वृद्धि से नये कोषाओ का निर्माण तंतु व अंगो के निर्माण से मतलब है जिससे वृक्ष लम्वाई, चौड़ाई व मोटाई मे बढता है।

द्वितीया वृद्धि क्रम (Process of the secondary growth)

द्विदलीय पौधो मे रसवाहिनी समूहो के बीच केन्द्रियम नामक विभजनशील धातुओ कोषाओं की धातु होती है। इस अवस्था मे इनको वर्द्धनशील भाग या फैसीक्यूलर कैम्बियम (Fascicular cambium) कहते है।

वृद्धि का क्रम केन्द्रिय धातु की वृद्धि से ही होता है। समूह के दोनो ओर की कैम्वियम कोषाये मध्यवर्ती रश्मियो की ओर बढती है। और धीरे-धीरे बढ कर एक दूसरे से मिल कर एक वृत्ताकार रचना (Cambium ring) बनाती है। इस प्रकार से मध्यवर्ती रश्मियो का स्थान जहा पहले कैम्बियम धातु नही थी वहा-वहा भी यह हो जाती है। इसको अंत धातु निर्माणकर कैम्वियम (Interfascicular cambium) कहते है। इस प्रकार की रचना हम पुराने वृक्षो मे देख पाते हैं।

इस प्रकार की रचना के वाद अब नई धातुओ का बनना प्रारम्भ हो जाता है। केन्द्र के भीतर की ओर की कोषायें जाइलम धातु का निर्माण करती है। और वाहर परिधि की ओर की कोषाये मृदु धातु फ्लोयम का निर्माण करती हैं। इस प्रकार अंदर की ओर नया जाइलम (Secondary xylem) और भीतर की ओर नया फ्लोयम (Secondary Phloem) वन जाता है। यही क्रम बना रहता है और काड की मोटाई बढती रहती है। यही क्रम लगा रहता है।

यदि किसी काड की कैम्बियम वृत्त की प्रारंभिक स्थिति को ध्यान मे रखते हुये वाद मे इस कैम्बियम वृत्त को देखे तो यह वृत्त बडा और वाहर को हटा हुआ प्रतीत होगा। प्रारंभिक जाइलम के धातुओ से यह दूर हटा हुआ होता है। क्योकि बीच-बीच मे नये जाइलम के तंतु का निर्माण हो चुका होता है और इस प्रकार प्रारंभिक जाइलम तथा प्रारंभिक फ्लोयम एक दूसरे से बहुत पृथक दूर हो जाते है।

जाइलम की कोषायें कड़ी व मजवूत दीवार की होती है। फ्लोयम की

दीवार कोषाभित्ति पतली व मृदु होती है। इसका परिणाम यह होता है कि जाइलम के सूत्र बढ कर अधिक से अधिक स्थान घेर लेते हैं। और फ्लोयम धातु बढते रहने पर भी वाहर व अन्दर के दवाव के कारण पिच सी जाती है और उसका एक वृत्त ही चारो ओर दिखाई पडता है।

इन दो धातुओ के प्रधान रूप से निर्माण करने के साथ ही कैम्बियम की कोषाये मध्यवर्ति रश्मि के स्थान पर कुछ साधारण पतली भित्ति वाले पैरेंकाइमेटस कोषाओ की भी निर्माण करती रहती है। जिससे कि इन मध्यवर्त्ति रश्मिवत् रेखाओ का निर्माण का भाग द्वितीया वृद्धि के वाद भी वना रहता है। इन स्थानो पर बनी रश्मियो को भी अन्य नवनिर्मित धातुओ के समान द्वितीय मज्ज रश्मि रेखा के नाम से पुकारते है। कैम्बियम कोषाओ के विभाजन मे क्रिया-रूप मे एक विशेषता यह होती है कि जाडो क मौसम मे इनकी क्रिया वन्द हो जाती है या बहुत धीमी हो जाती है। किन्तु वसंत के मौसम मे इनकी क्रिया पुनः तीव्रतम हो जाती है। उसका परिणाम यह होता है कि नवोदित जाइलम के भाग मे एक प्रत्यक्ष वृत्त अलग मालूम पडने लगता है। क्योकि विभजन की क्रियाशील्तता के समय अच्छी व बड़ी कोषाओ का निर्माण होता है। और विभजन की निष्क्रियता के समय पर या तो नये कोषा वनते ही नही या छोटे-छोटे वनते है। इस प्रकार एक वर्ष मे इस कड़े काष्ठ भाग मे एक चक्र तैयार हो जाता है। वड़े और पुराने वृक्षो की आयु का पता इन्ही वार्षिक वृत्तो को गिनकर लगाया जाता है। जो काण्ड के काष्ठ भाग पर प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं।

कभी-कभी पुराने वृक्षो के काष्ठ भाग मे दो स्पष्ट क्षेत्र दृष्टिगोचर होते है। काष्ठ के मध्य भाग की जाइलम कोषाये अपने साधारण रूप का त्याग कर अपने मे भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थों यथा टैनिन व क्षारोदो का संकलन कर लेते है। इनका वर्ण गहरा हो जाता है। और इस हिस्से की कोषाये कठिन व ठोस सी हो जाती हैं। इस केन्द्रिय भाग के क्षेत्र को उसका सार भाग या हार्ड वुड या डुरामेन (Heart wood or Duramen) कहते है। वाहर का भाग साधारण रस सचार के काम मे रत रहता है। और उसे मृदु काष्ठ या सैपवुड या अलवरनम (Sapwood or Alburnum) कहते है।

त्वचा के वाह्य व आभ्यन्तर भाग की उत्पत्ति
(Formation of cork & Bark)

इस प्रकार जब भीतर वृद्धि होती है तो वाहर के हिस्सो पर अर्थात् त्वचा के वाह्य व आभ्यन्तर भाग पर पर्याप्त दबाव पडता है। परिणाम यह होता

है कि बाहर की त्वचा फट जाती है। इस कमी की पूर्ति के लिए बाह्य त्वचा पर एक नयी विभजनशील कोषाओ की उत्पत्ति होती है। यह वृत्ताकार रचना होती है। जिसे द्वितीय विभाजक स्तर या सेकेण्डरी कार्क कैम्बियम (Secondary corkcambium) कहते है। यह वृत्त कोरटेक्स के बाहरी हिस्से में उत्पन्न होता है। इन कोषाओ के विभाजन से बाहर त्वचा की ओर नये कोषाओ का निर्माण होता है। यह नयी कोषाये विशिष्ट पदार्थ युक्त होती है। और इनको ही कार्क की सज्ञा दी जाती है। इस नये उत्पन्न तन्तु को पेरी डर्म[1] भी कहा जाता है। क्योकि यह फटी हुई त्वचा की पूर्ति करती है इस तन्तु की बनावट ऐसी होती है कि इसको पार करके जलीय पदार्थ बाहर नही जा पाता। परिणाम स्वरूप जो त्वचा इसके क्षेत्र से बाहर की ओर होती है वह मृत हो जाती है। और वृक्ष की पहली त्वचा छूटकर अलग हो जाती है अथवा फट जाती है व नीरस हो जाती है।

इसी नयी त्वचा के द्वारा अन्दर की ओर भी साधारण पतली दीवार वाले कोषाओ की पैरेंकाइमेटस[2] कोषाओ का निर्माण होता है। इस प्रकार त्वचा के बाह्य भाग मे नयी वृद्धि होती है। इस प्रकार नये उत्पन्न होने वाले भाग को नवबाह्य त्वगीय भाग या सेकेंडरी[3] कोरटेक्स कहते है। इसका दूसरा नाम फेलो डर्म[4] भी है। वृक्षो के प्रारम्भिक वर्षों मे ऐसा होता है कि यह फेलोडर्म का भाग न बने या अल्प मात्रा मे बने।

त्वक् की निर्मिति

त्वक् बाह्य त्वचा का वह भाग है जो कि कार्क कैम्बियम के बाहर स्थित हो व मृतप्राय हो। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि पहली त्वचा कौन सी होती है। किसी-किसी वृक्ष मे पहली त्वचा ही जीवनपर्यन्त उसके ऊपर चिपकी रहती है। कुछ वृक्षो मे द्वितीयक कार्क भी मृत हो जाता है। और त्वक् के रूप मे चिपका रहता है किन्तु अधिकाश वृक्षो मे प्रथम कार्क कैम्बियम ही मृत हो जाता है। और इसके स्थान मे अर्थात् कोरटेक्स के गहरे स्थान पर नयी त्वचा की उत्पत्ति होती है जब यह दूसरा विभजनशील भाग[5] कार्क कैम्बियम बन जाता है तो उसके द्वारा नये कार्क तन्तु का निर्माण हो जाता है और परिणाम यह होता है

---

1. Periderm
2. Parechymatous cells
3. Secondary cortex
4. Phelloderm
5. Secondary corkcambium

कि उस नये कार्क तन्तु के बाहर की ओर [illegible] कम हो जाता है और बाहर का [illegible] भाग [illegible] हो जाता है। यह दूसरी बार [illegible] नया भाग [illegible] उत्पन्न होता है अत पुराने वृक्षो मे कठोर [illegible] नया कार्क तन्तु और उसके [illegible] कुछ पोधो मे यह त्वक् पूर्ण [illegible] या रिंग बार्क[1] कहते है। [illegible] लिये सूक्ष्म छिद्र होते है। जब वृक्ष पुराना [illegible] कार्क भाग मे कही-कही कोषाये ढीली हो जाती है और [illegible] मे सहायक होती है। यह स्थान पुराने वृक्षो मे [illegible] नाम लेटीसेल[2] होता है और यह श्वास-प्रश्वास का कार्य [illegible]।

एकदलीय काण्ड की आन्तरिक रचना

(Internal structure of monocot stems)

द्विदलीय वाले काण्डो की रचना मे एकदलीय काण्ड की रचना भिन्न-भिन्न होती है सबसे प्रधान भेद जो दिखाई देता है इस प्रकार के काण्डो मे रसवाहिनी समूह के तन्तु कारटेक्स के अन्दर अनियमित रूप मे फैले रहते हैं। और अन्दर मे केन्द्र तक फैले रहते हैं। अतः पिथ का भाग स्पष्ट नही होता। दूसरा भेद यह है कि इसमे कैम्बियम धातु नही होती अतः इस प्रकार के तनो मे द्वितीय वृद्धि नही होती। और उनके काण्डो की मोटाई अधिक नही होती। इसमे रसवाहिनी समूह का केन्द्रिय भाग जो नोकदार होता है। सदा केन्द्र की तरफ होता है। और मृदु तन्तु फ्लोयम के कोषा जाईलम के कोषा के बीच मे ऊपर की ओर रहते हैं। अत इनकी नियमित वृद्धि का कोई क्रम नही होता। तीसरा भेद पेरी साइकिल का चक्र विशेषतया पूर्ण व स्पष्ट होता है। इस चक्र की कोषायें लिग्निन युक्त स्क्लैनेकाइमा की बनी होती है। और काण्ड को विशेष मजबूत बनाती हैं। इसे कोई-कोई धारक तन्तु भी कहते हैं। इन तीन प्रधान भेदो के कारण ही एकदलीय व द्विदलीय काण्डो की रचना मे अन्तर किया जाता है।

शखाग्र शुंग की रचना (Stucture of Apical bud)

शीर्ष कली मे प्राय' वृद्धि का क्रम लगभग उसी प्रकार होता है जैसा कि हमने द्विदलीय पौधा मे देखा है। इसी कारण एकदलीय पौधे प्राय. लम्बे और

---

1. Ring bark 2, Lenti cells.

पतले होते है। शीर्ष स्थान पर की रचना द्विदलीय की ही भाँति होती है। और उसी प्रकार धातु का निर्माण करती हैं।

एकदलीय वर्ग मे एक उद्भिद ऐसे भी होते हैं जिनमे कि द्वितीया वृद्धि भी होती है किन्तु यह अपवाद रूप ही मानना चाहिये।

शाखायें

शाखा परिभाषा : काड से निकलने वाली पतली व मोटी डालियो को शाखा कहते है।

पर्व ' काड मे जहाँ से पत्तियाँ या शाखायें निकलती है उनके दो उद्गम के स्थान को पर्व या परुस कहते हैं। इंगलिश मे इण्टर नोडस् (Inter nodes) कहलाते हैं।

ग्रंथि : काड से पत्र या शाखा के उद्‌गम के स्थान को जो चारो तरफ उभरा हुआ हो और कठिन हो उसे ग्रथि या नोड्स (Nodes) कहते हैं। यथा : इक्षु वंश, नरसल इत्यादि। मोटे वृक्षो मे यह ग्रंथि त्वचावृत होने से दिखाई नही पड़ती।

पत्रकोण : काड व पत्र से बने कोण को पत्रकोण या एक्जिल्स (Axils) कहते हैं।

अक्षि[1] : पत्रकोण के बीच बीच के भाग को जो काड पर होते है उन्हे अक्षि, आँख, पर्ण-कलिका या बड (Bud) कहते है। यह पर्व व ग्रथियों पर के दबे हुये अश होते हैं। जहाँ से नये अकुर निकलते हैं। यह काण्ड, शिरा, पत्रकोण, मूल व पत्रादि से नये पौधे उत्पन्न करने वाले अंकुर होते है। इसमे पर्वग्रथि व पत्र एकत्र हो कर रहते हैं। इनके प्रधान भेद निम्न होते हैं। यथा .

शुंग या प्रान्तांकुर (Terminal buds) : काण्ड या शाखा के अग्र भाग पर जो अक्षियाँ होती है उन्हे शुङ्ग या टरमिनल बड कहते है। यथा : वट, पीपल, प्लक्ष आदि।

पत्रकोणोद्भव . जो पत्रकोण से निकलती है उन्हे पत्रकोणोद्भव कहते है। या आक्जिलरी बड (Oxillary bud)।

---

१ अक्षीणि . पर्वसंधिषु प्ररोहजनन समर्थाः अंकुराः। सु० सू० अ० ४५।१५६।

अनियमिताक्षि : जिनके निकलने का स्थान निश्चित नही होता। यह कई प्रकार की होती है। अनियमिताक्षि को एडवेटिशश वड् (Adventitous buds) कहते है।

१ स्कन्धोद्भव . जो स्कन्ध के ऊपर होता है। यथा : वट व पीपल।

२ काण्डोद्भव : काण्ड से कटे हुये भाग के समीप रोपण के वाद जो उत्पन्न होती है। यथा : शोभाजन, प्लक्ष, पीपल आदि।

३ : मूलोद्भव : किसी उद्भिद के मूल से जो अक्षियाँ उत्पन्न होती हैं। यथा : कपित्थ।

४ पत्रोद्भव : पत्र के किनारे या पत्र के दन्तुर भागो के वीच जो अक्षि होती हैं। यथा : पत्थरचूर।

५ अतिरिक्ताक्षि : कुछ पेड़ो के पत्रकोणादि के अतिरिक्त अंश मे जो अक्षि होती है इन्हे अतिरिक्ताक्षि (Accessory buds) कहते है।

६ मासल अक्षि : पुत्रिकाये जो पत्र कोण से निकलती हैं किन्तु जनक पौधे से पृथक् होकर नया पौधा बनाती है यथा : रसोन, सुरंजान, शूरण। इन्हे मासल अक्षि (Bulbil) कहते है।

यह अक्षि दो प्रकार की होती है १ : आच्छादित अक्षि (Scaly Buds)
२ : नग्न अक्षि (Naked bud)

आच्छादित अक्षि : यह पत्र द्वारा या पत्रावशेष शल्क (Scales) द्वारा आवृत रहती हैं।

नग्नाक्षि : यह आवृत नही होती और स्पष्ट दिखाई पडती हैं।

शाखा-क्रम या ब्राञ्चिङ्ग (Branching)

परिभाषा : काण्ड के ऊपर के शाखा-क्रम की उत्पत्ति-क्रम को शाखा-क्रम कहते हैं।

इसके मुख्य दो प्रकार है।
१ : परिपार्श्विक या लैटेरल (Lateral)
२ : उभय पार्श्विक (Dicholomose)

परिपार्श्विक या पार्श्विक : मुख्य काण्ड से जव शाखाये व प्रशाखायें

एक पार्श्व से निकलती हैं तो उन्हें पार्श्विक कहते है। इसके भी दो भेद होते हैं। यथा :

१ : अपरिमित या रेसिमोस (Racemose)
२ : परिमित : या साईमोस (Cymose)

अपरिमित : इस प्रकार की शाखायें काण्ड के चारो ओर निकलती हैं। नीचे की शाखायें मोटी और ऊपर की छोटी होती हैं। और अन्त तक निकलती हैं। इन क्रमोको एकपादी पादप कहते हैं। या मोनोपोडियल (Monopodial)। क्योकि काण्ड का रूप इनमे प्रारम्भ से अंत तक होता है। यथा · देवदारु, चीड, अशोक इत्यादि।

परिमित शाखाक्रम : इनमे मुख्य काण्ड का विकाश तो ठीक होता है किन्तु अंत तक न हो कर कुछ दूर के वाद जाकर विभक्त हो जाता है। और प्रधान शाखाओ का रूप धारण करता है। और उससे शाखाये निकल कर बहुत सी शाखाये देकर घनघोर छाया का रूप वना देते है। इसके प्रधान भेद निम्न है : यथा :

१ : एकशाखोद्भेद या यूनीपेरस (Uniperous) : जिन काण्डो मे एक ही शाखा मोटी व प्रधान होती है। और दूसरी छोटी व पहले की अपेक्षा पतली होती है। इसके भी दो भेद होते हैं : यथा :

१ : एकभुजी (Helicoid)
२ : वृश्चिकपुच्छी (Scorpioids)

२ द्विशाखोद्भेद : या वाई पेरस : जिसमे काण्ड से दो शाखाये दो दिशा मे दो दिशाओ से समान रूप से निकलती है। इन्हे द्विशाखोद्भेद (Biperous) कहते है।

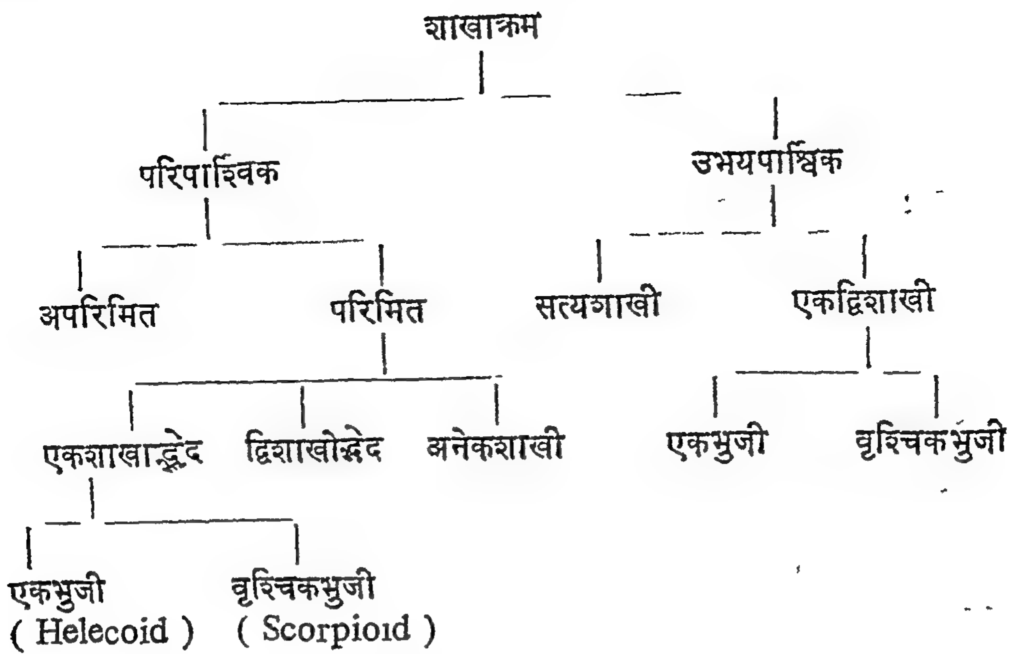
३ अनेकशाखोद्भेद . या मल्टी पेरस ब्रान्चिग (Multiperous branching) :

जिनमे काण्ड के अग्र भाग मे कई शाखाये निकल कर विभक्त होती हैं।

उभयपार्श्विक या डाई कोटोमस ब्रान्चिग (Di cholomous branchings)

जिनकी अन्तिम काण्ड की विभक्ति दो भागो मे होती है और उसमे से प्रत्येक के पुन· दो भाग हो जाते है। उन्हे उभयपार्श्विक या द्विपार्श्विक शाखोद्भेद कहते हैं।

संक्षेप मे शाखाक्रम निम्न होते हैं।



पत्र या लीव्स (Leaves)

पर्याय : पत्र व पर्ण

परिभाषा : जो स्वयं हरा भरा होकर उद्भिद का पालन करता है उसे पत्र कहते हैं। जो पैदा होकर पतित होता है या गिर जाता है उसे भी पत्र कहते हैं। जो पेड या पौधा का पालन करता है उसे भी पत्र कहते हैं।

ऊपर की तीन प्रकार की व्युत्पत्ति पत्र की क्रियाओ पर प्रकाश डालती है। यह सर्वविदित बात है कि पत्र प्रकाश की सहायता से वृक्ष के लिए खाद्य की तैयारी करता है। श्वास-प्रश्वास के रूप मे विशुद्ध वायु लेना और अविशुद्ध वायु का त्याग करना यह पत्र का कार्य है इसके द्वारा यह पत्र मे जीवनी शक्ति का सञ्चार करता है। यह मूल द्वारा शोषित अधिक जल को पत्रो की क्रिया से निकाल कर उसकी रक्षा करता है और उसकी रक्षा करता है व हरा-भरा रखता है। अत: इस रूप में पत्र का अर्थ ठीक ही ज्ञात होता है।

आधुनिक मत से पत्र के कई भेद है। यथा :

१ : बीजपत्र (Seed leaves)

२ : वास्तविकपत्र (Foliage)

३ : वल्कपत्र (Scale leaves)

४ : उपपत्र (Stipules)

५ : पुष्पच्छद (Bracts)

६ : सबीजकपत्र (Sporophylls)

बीज पत्र : रोपण करने पर बीजो मे सर्वप्रथम पत्र के रूप मे कही एक, कही दो जो पत्र निकलते है उन्हे बीजपत्र कहते हैं।

वास्तविक पत्र : उद्भिजो मे जो बीज पत्र के बाद हरित वर्ण के पत्र निकलते है उन्हे पर्ण-पत्र लीव्स या फोलिएज कहते हैं।

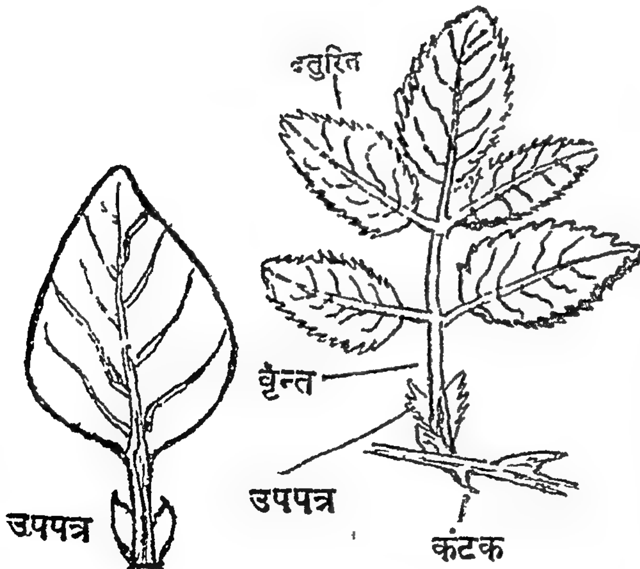
वल्कपत्र या स्केल लीव्स : (Scale leaves)

जब पत्र के ऊपर क्रमश. पत्र होते हैं और गिरने पर भी अवशिष्ट भाग रह जाते है उन्हें वल्क पत्र कहते है। यह पौत्तिक काण्ड-अथवा अक्षि पर पाये जाते हैं। इनमे वृन्त नही होते या वृन्त आवृत पत्र के रूप मे होता है।

उपपत्र : या स्टिप्यूल्स (Stipules)

जब पर्ण वृन्त के मूल से दोनो ओर छोटे-छोटे पत्र निकलते हैं और उनकी आकृति शरपुख की तरह होती है तो उन्हे उपपत्र या स्टीप्यूल कहते हैं। यह

१२ पत्रधार





चित्र १२ चित्र १३ चित्र १४

प्राय. कली को ढक कर इसकी रक्षा करते हैं। ये पत्र किसी मे स्पष्ट किसी में अस्पष्ट होते हैं और कई प्रकार के होते है। जैसे ऊपर चित्र मे निर्दिष्ट है।

पुष्पच्छद : या ब्रैक्ट्स। (Bracts)

पुष्पवृन्त के तल भाग से या पुष्प की पंखड़ियो के नीचे प्रायः हरे रंग के पत्र होते हैं। ये कलिकावस्था मे पुष्प को आच्छादित रखते हैं। इन्हे पुष्पच्छद कहते है।

सबीजक पत्र : या स्पोरोफिल्स : (Sporophylls)

इन पत्तियो मे अलैङ्गिक सन्तानोत्पत्ति के निमित्त बीजक होते है। जैसे हसराज आदि।

पत्र :

पत्र के प्रविभाग : पत्र के प्रायः तीन प्रधान भेद होते हैं

१ : पर्णतल २ : पर्णवृन्त ३ : पर्णफलक

पत्रप्रविभाग



चित्र १५

पर्णतल : (Base of leaves)

पत्र का वह भाग जो काण्ड, शाखा या ग्रन्थि इत्यादि के साथ लिपटा रहता है उसे पर्णतल कहते हैं कुछ पत्र ऐसे होते हैं जिनमे वृन्त नही होता। वे पत्र के मूल भाग से काण्ड पर सटे रहते है। उन्हे काण्डासक्त पत्र या सीथ कहते

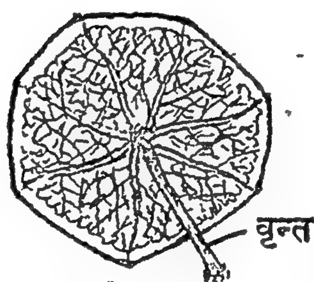
हैं। इनका पर्णतल काण्ड पर फैला होता हैं। यथा : पलाण्डु, इक्षु यह पूरे काण्ड को एक या अधिक बार आवरित किये रहते हैं। इसे परिवेष्टक या परफोलिएट (perfoliat) या सीथ या लीफ वाक्स कहते है।

पर्णवृन्त या पिटियोल या लीफ स्टाक : (Petiole or leaf stalk)

पर्णतल के ऊपर या फलक के नीचे के भाग को पर्णवृन्त, डण्ठल या भेटी या पिटिओल कहते हैं। जिन पत्रों मे वृन्त रहता है वह सवृन्त या पिटियोलेट तथा जिनमें वृन्त नही होता उन्हे अवृन्त या सेसाइल (Sessile) कहते हैं।

पर्णवृन्त प्राय: फलक मूल भाग से लगे रहते है। किन्तु कुछ वृन्त पत्र के मध्य मे उसके पृष्ठ भाग से लगे रहते हैं। उन्हे पत्र मध्य लग्न या पेल्टेट

मध्यलग्नवृन्तव जालिनी क्रम



चित्र १६—पद्मिनी पत्राकार (Peltate)

(Peltate) कहते हैं। यथा एरण्ड या कमल के पर्णवृन्त प्राय: गोल, नीचे से संकीर्ण और ऊपर चौड़े होते है। जल मे रहने वालो मे यह वृन्त फूले हुये रहते हैं। इनके भीतर छिद्र होते है। जो वायुपूर्ण होते है। जिनके सहारे पौधे तैरते रहते हैं। यथा : जलकुम्भी। इनको स्फीत पर्णवृन्त या स्वोलेन (Swollen) कहते हैं।

पर्णफलक : वृन्त के आगे पत्र के चौड़े भाग को फलक लैमिना (Lamina) या लीफ ब्लेड कहते है। फलक के मध्य मे जो-जो रेखा या शिरा होती है उससे इसके दो भाग हो जाते हैं। यह दोनो पार्श्व कहलाते है। पत्राकार की लम्बाई-चौडाई पूरे पत्र की लम्बाई-चौडाई कहलाती है। यह पत्रफलक पौधो के प्रधान अंग हैं। यह पौधो के लिये खाद्य तैयार करता है। तथा श्वसन व जलत्याग का काम करता है।

पत्रपृष्ठ . पत्र मे दो पृष्ठ होते है। जो ऊपर की तरफ होता है उसे ऊर्ध्व-

पृष्ठ या अपर सरफेस (Upper surface) तथा नीचे के भाग को अधर पृष्ठ या पत्रोदर या लोअर सरफेस (Lower surface) कहते हैं।

पत्रपृष्ठ जब चमकदार हो या चिकना हो तो इसे भासुर मसृण या ग्लैबरस (Glabrous) कहते हैं। रोयेंदार हो तो लोमस या प्यूबेसेन्ट (Pubescent) और कडे रोम से व्याप्त हो तो कर्कश, खर या हिसपिड (Hispid) कहते है। काँटेदार हो तो कंटकी या स्पाइनस (Spinus) कहते हैं।

फलकमूल : जहाँ फलकमूल से जुड़ा रहता है और जहाँ से किनारे प्रारम्भ होते है उस स्थान को पत्रमूल या फलकमूल या लेमिना वेस (Lamina base) कहते हैं।

पत्राग्र : पत्र के अन्त मे जहाँ पर दोनो पार्श्व मिलते हैं तथा मध्य शिरा समाप्त होती है उस भाग को पत्राग्र या एपेक्श (Apex) आफ दी लीफ कहते है। यदि यह नोकीला हो तो तीक्ष्णाग्र या एक्यूट (Acute) और यदि लम्बा हो और क्रमश पतला होता गया हो तो लम्बाग्र या एक्यूमिनेट (Acuminate) और नोकदार न हो तो कुण्ठिताग्र या औब्ट्यूज (Obtuse) कहते हैं।

पत्राग्र :

यदि पत्राग्र मध्य शिरा पर भीतर की ओर दबा हो तो उसे नताग्र या इमार्जिनेट[1] कहते है। यदि यह देखने मे कटा हुआ ज्ञात हो तो उसे छिन्नाग्र या[2] ट्रुकेट कहते हैं।

पत्रधार : पत्र के उभय पार्श्व मे जो दो किनारे होते है उन्हे धारा, धार या मार्जिन कहते है। यह कई प्रकार का होता है। यथा :

१ अखण्ड धारा वाले : यदि पत्रधार कही कटा न हो, लगातार आदि से अन्त तक चला जाता हो तो उसे अखण्ड या इण्टायर[3] कहते हैं।

२ तरङ्गायित या लहरदार : जब पत्रधार अखण्ड हो परन्तु लहर की तरह ऊपर-नीचे होता हुआ दिखाई देता हो तो उसे लहरदार कहते हैं।

३ दन्तुर जब धारा आरी की तरह अनीदार हो और छोटे-छोटे दाँत जैसे दिखाई पडते हो तो उन्हे दन्तुर या सेरेट[4] कहते हैं।

४ कुण्ठित दन्तुर : जब धार के दाँत तीक्ष्ण न हो करके कुण्ठित होते है तो उन्हे कुण्ठित दन्तुर या क्रेनेट[5] कहते हैं।

५ पत्रशिरा . पत्र के पोषणार्थ जो शिराये रसवाहिनीका की नलिकाकार

---

१. Emarginate　२. Trucate　३ Entire

४. Serrate.　५ Crenate

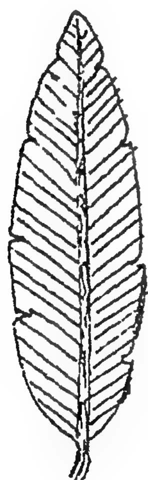
फैली हुई होती है इन्हे पत्रशिरा कहते है। यह शिरायें पत्र के आकार को स्थिर रखती हैं। और कई प्रकार से इनकी रचना होती है। यथा :

१ मध्य शिरा या माढि ' पत्र के बीच से होकर अन्त तक जो शिरा जाती है इसे मध्य शिरा कहते हैं। इस पर शिराओ का जाल विभिन्न क्रम मे बना होता है। इसको शिरा-रचना कहते हैं।

१ जालिनी : जिसमे मध्य शिरा से छोटी-छोटी शिराये निकल करके शाखा-प्रशाखा देकर जो जाल सी बना देती हैं। उस रचना को जालिनी रचना कहते है। इसके दो प्रधान भेद है। (चित्र १६ देखिये)

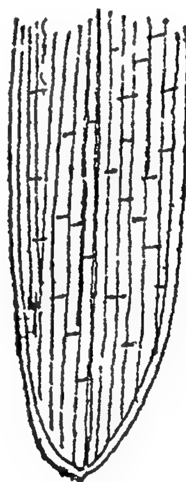
यथा १ : पक्षाकार   २ : करतलाकार

पक्षाकार : इस रचना मे मुख्य शिरा एक ही होती है। उससे शाखायें व प्रशाखायें मिल कर पक्ष की तरह फैल जाती है उन्हे पत्राकार या यूनी का स्टेट कहते है।



पक्षाकार (Unicōstate; parellel)

चित्र १७



समानान्तर शिराविन्यास

चित्र १८

करतलाकार : इस रचना मे पत्रमूल से कई बडी बड़ी शिराये निकलती हैं। और ऊपर की ओर फैल जाती है। इसके भी दो प्रधान क्रम है। प्रथम मे वृन्ताग्र से कई बडी वडी शिराये निकल कर ऊपर को जाती है और घूम कर आपस मे मिल जाती है। यथा : वदरीपत्र। द्वितीया मे वृताग्र से कई वडी-बड़ी शिराये निकलती है और ऊपर इस प्रकार फैलती है कि ऊपर की ओर प्रायः एक दूसरे से पृथक् रहती है यथा—एरंडपत्र शिरायें।

समानान्तर शिरा रचना : इस क्रम मे मुख्य शिराये व और उनसे

निकलने वाली शिरायें भी समानान्तर फैलती है। (यथाचित्र १८) उसके भी दो भेद हैं। यथा :

२ एकपार्श्विक : जब मध्य शिरा मे दोनो ओर कई बड़ी-बड़ी शिरायें निकल कर एक दूसरे मे समानान्तर फैल कर किनारो की तरफ जाती हैं तो उन्हे एक-पार्श्विक कहते हैं।

यथा . केला के पत्र :

बहुपार्श्विक ' उस रचना मे पत्रमूल मे कई बड़ी-बड़ी शिरायें निकल कर पत्र मे एक दूसरे के समानान्तर निकलती हैं। उसके दो भेद हैं। यथा .

१ : जिसमे एक तरह की लम्बाई की कई शिरायें पत्राग्र पर मिलती हैं। यथा : बास का पत्र।

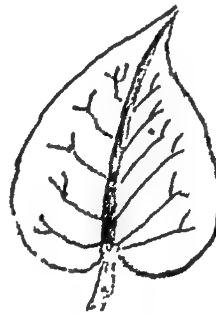
२ : जिसमे पत्रमूल से शिरायें निकल कर पत्रधार की ओर बढती हैं और क्रमशः एक दूसरे से दूर हो जाती हैं। यथा : ताल व खजूर के पत्र की शिरायें।

पत्राकृति : पत्रो की आकृति कई प्रकार की होती है इनके आकार के अनुसार संज्ञायें भिन्न भिन्न होती हैं। यथा :

१ सूचिकाकार जो पत्र पतला नोकीला और सुई की आकृति बनाता है सूचिकाकार[1] कहलाता है। यथा : दूर्वा आदि। चित्र–१९



चित्र १९—सूचिकाकार



चित्र २०—हृदयाकार (Cordalc)

२ हृदयाकार ' जो पत्र प्रारम्भ मे गोलाकार होकर आगे चल कर पतले हो जाते हैं और वृत्त रूप मे संकीर्ण हो जाते हैं उन्हे हृदयाकृति या कोरडेट[2] कहते हैं। चित्र २०

१. Acicular.

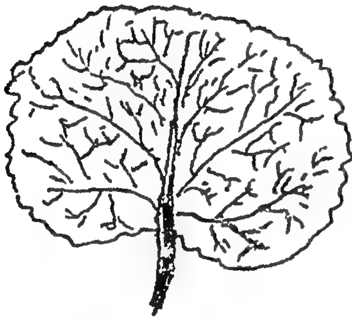
२. Cordate.

३ वृक्काकार : जिसकी आकृति वृक्क की तरह हो उसे वृक्काकार या रेनी[1] फार्म कहते हैं। चित्र—२१

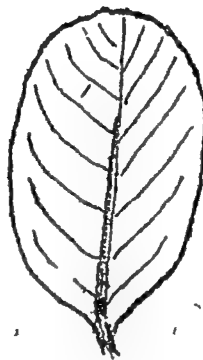
४ अंडाकृति : जो पत्र आकार मे लम्ब-गोल हो उसे अंडाकृति कहते है। यथा जम्बू व गुलाब जामन के पत्र।

५ लंब-गोल : जिसका आकार लम्बाई लिये गोल हो उसे लम्बगोल[2] या आवलाग कहते हैं।

६ वर्तुल : जिसका आकार वृत्ताकृति हो उसे वर्तुल या अर्बीक्यूलर[3] कहते हैं।



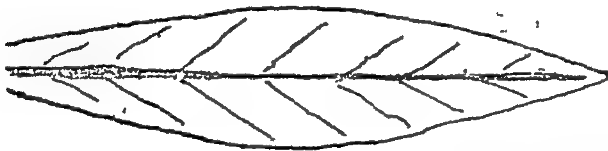
चित्र २१—वृक्काकार



चित्र २२—अण्डाकृति



चित्र २३—रेखाकृति



चित्र २४—भल्लाकृति

७ भल्लाकृति : जिसका आकार भाले की तरह हो उसे भल्लाकृति[4] कहते हैं।

८ रेखाकृति : जिसका आकार रेखावत् बहुत पतला हो। पत्रमूल से अंत तक एक समान हो उसे रेखाकृति[5] कहते है यह पतले लम्बे होते है।

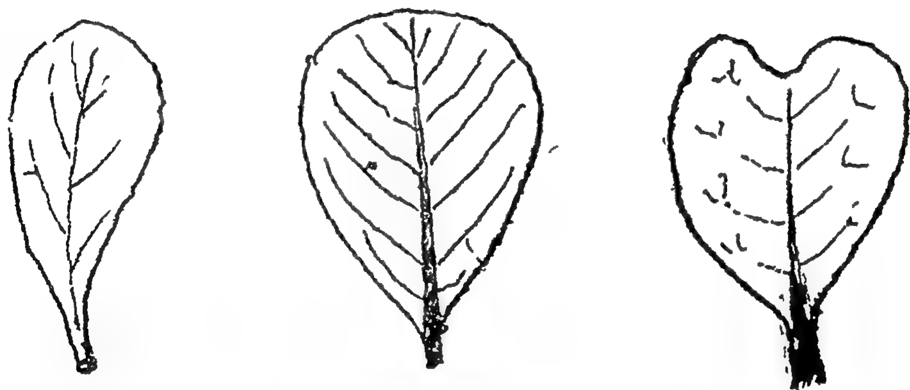
---

१. Reniform. २ *Oblong.* ३. *Orbicular*
४ Lanceolate ५. Spatulate

९ दर्व्याकार : जो पत्रमूल से पतले निकल कर आगे चौडे हो जाते हैं और आकार दर्वी का बनाते है उन्हे दर्व्याकार पत्र कहते हैं। यथा स्नुही व विककत के पत्र। चि० २५

१० लट्वाकार : जिस पत्र का आकार प्रारभ मे गोल, चौडा और आगे पतला हो जाय उसे लट्वाकार या ओवेट[1] कहते है। चि० २६

११ विपरीत लट्वाकार : जिनके पत्र प्रारभ मे संकीर्ण व आगे जाकर चौडे हो जाते है उन्हे विपरीत लट्वाकार[2] कहते हैं। चि० २७



चित्र २५—दर्व्याकृति चित्र २६—लट्वाकार चित्र २७—विपरीत लट्वाकार

१२ विषमाकार : जिन पत्रों का आकार विषम होता है और धारियाँ असमान होती उन्हे विषमाकार या आवलिक कहते हैं।

१३ गोजिह्वाकार : जिस पत्र का आकार गाय की जीभ की तरह हो उसे गोजिह्वाकार या रुन्सिनेट[3] कहते।

१४ हस्तागुलि सदृश : जिसके पत्रवृन्त निकल कर चार या पाच कोण मे विभक्त हो कर हस्तागुलि-सदृश आकार बनाते है उन्हे गंधर्वहस्त या हस्तागुलि या डिजिटेट[4] कहते हैं। यथा . सेमल।

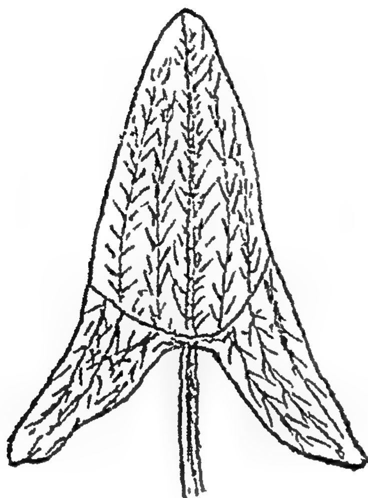
१५ पक्षिपदानुकारिपत्र : जिस पत्र का आकार पक्षी के पद की तरह अर्थात् एक पत्र मे तीन भाग होकर पार्श्व के पत्र आरम्भ मे मिले हुये और छोटे हो उसे पेडेट[5] या पक्षिपदानुकारि कहते है।

१६ त्रिपर्णी : जिसमे पत्र तीन हो उन्हे त्रिपर्णी या ट्राइफोलियेट[6] कहते हैं।

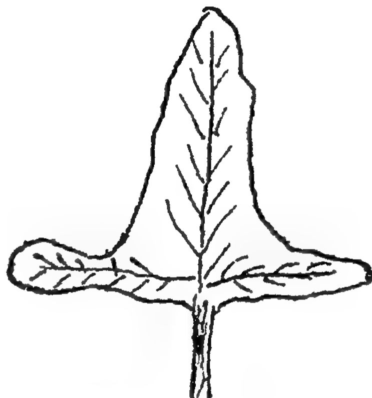
---

१. Ovate. २. Ovovate ३. Runcinate.
४. Digitate ५. Pedate. ६. Trifoliate.

त्रिकोणाकार : जिस पत्र का आकार त्रिकोण के आकार का हो उसे त्रिकोणाकार या सैजिटेट[1] कहते है। यथा—चि० २८-२९.



चित्र २८



चित्र २९

कर्णपाल्याकार : जिस पत्र का आकार कर्णपाली की तरह हो उसे कर्णपाल्याकार या हेस्टेट[2] कहते है।

पर्णभेद : पत्रो के दो भेद होते है जो कि उसकी स्थिति के आधार पर किये गये है। यथा :

१ एकाकी पत्र या सामान्य पत्र[3]

२ सदल या संयुक्त पत्र या कम्पाउण्ड लीफ[4]

सामान्य पत्र : जिस पत्र की मध्य शिरा अन्त तक जाती है और विभक्त नही होती तथा पर्णफलक विभक्त नही होते और अन्त तक समान रूप मे चले जाते है उसे एकाकी पत्र कहते है।

संयुक्त पत्र : जिस पत्र मे पत्रफलक मध्य शिरा तक जाकर कई स्वतन्त्र दलो मे विभक्त हो गया हो उसे संयुक्त पत्र कहते है। सदल पत्र मे जो पत्र सदृश रेखाओ से विभक्त होते है उन्हे दल या लिफलेट[5] कहते है।

एकाकी व सदल पत्र में भेद :

१ एकाकी पर्ण के पर्ण कोण मे अक्षि होती है।	१ सदल पत्र के किसी दल मे अक्षि नही होती।
२ एकाकी पर्ण पुखपत्र युक्त होते है।	२ सदल मे पुंखपत्र नही होता।

---

१. Sagitate २. Hastate ३ Simple leaf.

४. Compound leaf ५. Leaf late

करतला का भेद :

एक दल या यूनी फोलियेट[1] : जब करतलाकार पर्ण मे वृन्त के अग्र भाग से एक दल निकलता हो उसे एक दल कहते है। यथा : निबू व नारंगी।

द्विदल या बाइफोलियेट[2] : जब करतलाकार पत्ते मे वृन्ताग्र से दो दल निकले हो तो द्विदल पर्ण कहते हैं। यथा हिंगुटी।

त्रिदल या ट्राइफोलियेट[3] : जब वृन्ताग्र से तीन पत्र निकले हो तो त्रिदल पर्ण कहते हैं। यथा : बेल, वरुण, चागेरी।

चतुर्दल : जब वृताग्र से चार दल निकले हो तो उन्हे चतुर्दल क्वाड्री फोलियेट कहते है। यथा : चोपतिया।

बहुदलीय : जब वृताग्र से बहुत दल निकले हो तो बहुदलीय या मल्टी फोलियेट[5] कहते हैं। यथा : हुल हुल।

पर्ण क्रम या फाइलोटैक्सिस (Phyllotaxis)

पत्र : सूर्य प्रकाश प्राप्त करने के लिए विभिन्न क्रम मे निकलते हे। इस क्रम को पर्ण विन्यास क्रम कहते हैं। इसके प्रधान तीन भेद है। यथा :

१ : अभिमुख[6] या समानान्तर

२. वर्तुल या वर्टि सिलेट[7]

३ ' पेचदार या घुमावदार या एकान्तरित[8]

अभिमुख : जब काड या शाखा पर प्रत्येक ग्रंथि से आमने सामने दो पत्र निकलते है उन्हे अभिमुख कहते है। चित्र सं० ३७

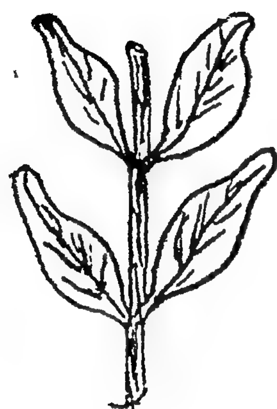
वर्तुलक्रम : जब प्रत्येक ग्रथि से चारो ओर दो से अधिक पत्तिया निकलती है। यथा : कनेर या सप्त पर्ण। चित्र सं० ३८

एकान्तरित : जब प्रत्येक ग्रन्थि से एक पत्र अन्तर देकर निकले और क्रम घुमावदार पेच जैसा हो तो उसे पेचदार क्रम कहते है। यथा : जपा, वट, आम्र पल्लव। यथा चित्र ३९।

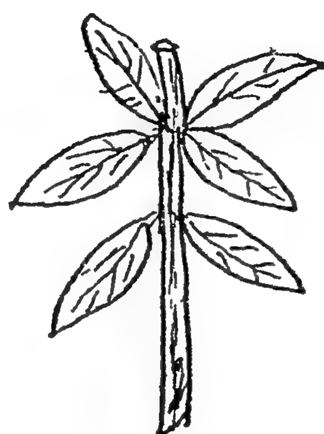
ऊपर के, क्रमनियमित माने जाते है। ऐसे भी बहुत से उद्भिज्ज है जिनके पत्र ऊपर से नीचे तक एक ही क्रम मे नही होते। ऐसे पत्र के क्रम को

१ Unifoliate २ Bifoliate. ३. Trifoliate.
४ Quadri Foliate ५ Multyfoliate. ६. Opposite
७. Verticillate. ८ Alternate & spiral

अनियमित क्रम कहते हैं। इस प्रकार के पत्र जलीय प्रात मे या वहते हुए जल मे पाये जाते हैं। स्थान व स्थिति के अनुसार इनके कई भेद होते है।



चित्र ३७—अभिमुख



चित्र ३८—घेरदार



चित्र ३९—एकान्तरित

पुष्प का विवरण

परिभाषा : पुष्प उद्भिज्जो का वह अश है जोकि शाखाग्र पर विकसित होता है। अतः यह अंश वास्तव मे पौधे का सबसे वडा आवश्यक अश है।

पुष्प की अवस्थाये : पुष्प की तीन प्रधान अवस्थायें होती है, यथा :

१ कलिका या कोरक . पुष्प की प्रथम अवस्था को जिसमे वह अविकसित रहता है।

२ कुड्मल या मुकुल : विकाशोन्मुख कलिका को कहते है।

३ फुल्ल या खिला हुआ भाग : यह वह अवस्था है जव कि पुष्प विकसित होकर फूल जाता है।

पुष्प रचना अथवा पुष्पोद्भव : पुष्प विन्यास या इन्फलोरसेंस (Inflorscence)

जव वनस्पति विकसित हो जाता है तव उसके शाखाग्र से अथवा अग्र भाग या शाखावो के अतिम भाग से छोटी शाखाये निकल कर उससे फूल निकलता है। यह दो प्रधान रूप मे निकलते है। यो तो उसके विभिन्न क्रम हैं, परन्तु दो प्रकार के रूप दिखलाई पडते हैं। यथा :

१ शाखाग्र गत[1] : जो कि शाखावो के अग्र भाग से निकला करता है।

२ कक्षा गत[2] : जो कि पत्र के कोण से निकलता है।

पुष्प विन्यास के दो रूप है जो कि देखने मे आते है। यथा :

१ अपरिमित : या अकुंठिताग्र : जब पुष्प अपने निकलने के क्रम मे आगे जाकर कुठित नही होता तव इसे अकुठिताग्र या रेसिमोस[3] कहते है।

२ परिमित या कुठिताग्र : जब पुष्प अपने दंड से निकल कर आगे जाता है और पुष्प दड आगे जाकर मुड जाता है या झुक जाता है तो इसको कुंठिताग्र[4] कहते हैं।

इनके अतिरिक्त एक क्रम और होता है। इसको विशेष क्रम कह सकते है। इसमे निकलने का क्रम विशेप क्रम का होता है।

१ इसके क्रम को पुनः दो भागो मे बाँटा जा सकता है। यथा

अधरोत्तर क्रम में : जब कि पुष्प, प्रथम सबसे ऊपर फूलता है और शेष पुष्प क्रमश. उसके नीचे के भाग मे शाखा प्रशाखा देकर फूलते हैं। यह क्रम अधरोत्तर[5] क्रम कहलाता है।

केन्द्रिय क्रम[6] : जब कि पुष्प नीचे से शाखावो पर खिलना प्रारभ करता है और क्रमश. वह ऊपरी शाखावो पर फूलता जाता है। और अतिम पुष्प अत मे ऊपर जाकर फूलता है। इसके भी तीन प्रमुख रूप दिखाई पडते है। यथा .

१ जब कि पुष्प की डडी लवी होती है।

२ जब कि पुष्प की डंडी छोटी होती है।

३ जब कि पुष्प की डडी न बनकर वह चपटे या नतोदर के रूप मे स्वरूप वनाता है। इनके क्रमो को निम्न रूप मे विभागशः कह सकते है।

अपरिमत के कई भेद है, विशेप कर आठ भेद प्रमुख है। यथा, यह दो प्रमुख रूप मे दिखाई पडते है :

१ एकाकी जब पुष्प शाखाग्र से अकेले या एकाकी निकले, यह एकाकी या सोलिटरी[7] होता है।

२ समूह या कुसुम व्यूह . जब कि पुष्प एक स्थान से कई एक साथ निकलते है।

---

१ Terminal. २ Axillary ३ Racimose.
४ Cymose. ५ Acropetal sucsession.
६ Centripetal ७ Solitary

परिमित के प्रधान आठ भेद हैं यथा :

१ कलंगी के रूप मे[1] : जिसमे मुख्य पुष्प दंड पर लम्बा होता है और पुष्प उस पर किनारो से पुष्प लगते है। नीचे के पुष्प वड़े-वड़े होते है और लम्बे वृत पर लगते है, ऊपर क्रमश. छोटे पुष्प लगते है। यथा : मूली, गाजर, राई, गुलमोहर आदि। पुष्प दंड के वड़े वृंत वाले भाग को पुष्प दंडक (पेडाकिल[2]) और छोटे पुष्पदंड को (पेडीकेल[3]) कहते हैं। यह संज्ञाये आधुनिक है। जिसमे पुष्प दंड छोटे और बहुत से पुष्पो से युक्त होते है और मोटे हो जाते हैं उन्हे पुष्पाधार या रेसेप्टेकल[4] कहते है। चि० ४०–४१



चित्र ४०—जपा पुष्प



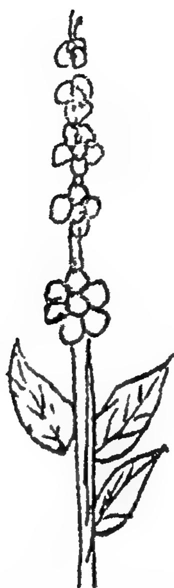
चित्र ४१—संवृंत काडज पुष्प

२ मंजरी[5] : पुष्प दड पर जव पुष्पकलगी की तरह ही लगे होते है परन्तु उनमे पुष्प दड से शाखा निकल कर पुष्प नही लगे होते। पुष्प दण्ड पर ही लगे होते है। यथा : अडूसा का पुष्प। इसमे एक पुष्प दंड पर अनेक अवृत पुष्प लगे होते है। चि० ४२

३ विदडिक[6] या लघुपुष्प मजरी : अल्प सख्यक फूलो से या एक फूल वाली मंजरियो से पुष्प-दंड जव नन्ही-नन्ही दडिकाओ से भरा रहता है और उनसे पुष्प पत्र निकलकर मंजरी का स्वरूप वनाते है और उनका रूप कलगी की तरह वन जाता है तव उसको लघु मजरी कहते है।

---

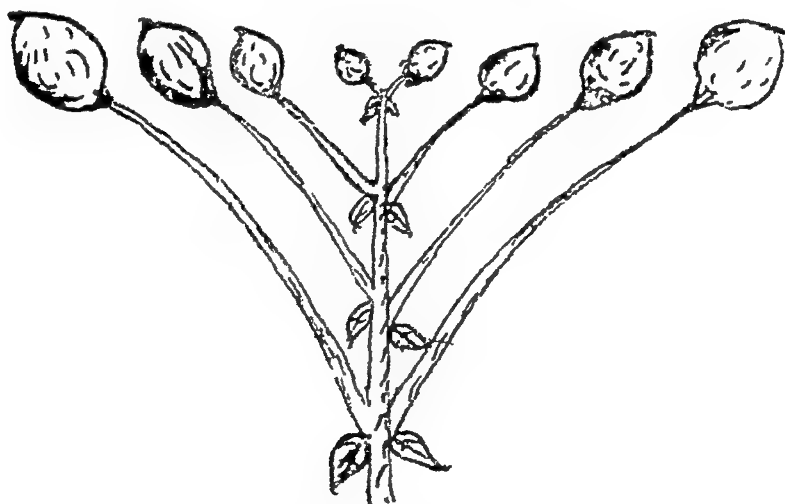
१. Raceme. २ Pedancle. ३ Pedecel
४ Receptacle ५. Spike ६ Spikelets.



चित्र ४२—मजरी

४ जटा[1] मंजरी : जब लम्बी लटकती हुई वारी वाली मंजरी जो केवल एक जातीय या लिंग के पुष्प धारण करती हैं उनको जटा मजरी कहते हैं।

५ ताल मंजरी[2] : यह भी एक प्रकार की मजरी ही है जब कि पुष्प धारण करने वाली मजरी मोटी हो और बडी और मासल हो और ताल जटा की तरह मजरी वनाती हो। यथा . ओक या भूर्ज पत्र आदि।



चित्र ४३—गुच्छ सवृत (Dorpmle)

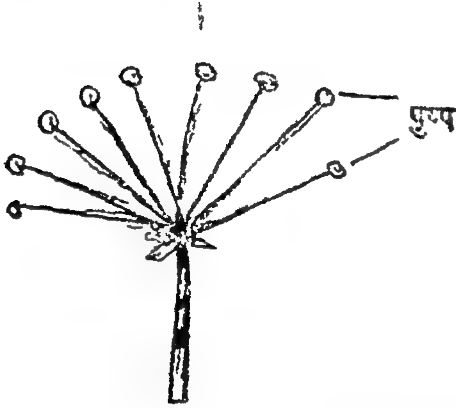
६ गुच्छ[3] : जिस पुष्पो का आकार गुच्छ की तरह होता है उन्हे गुच्छाकार कहते हैं। चि० ४३

---

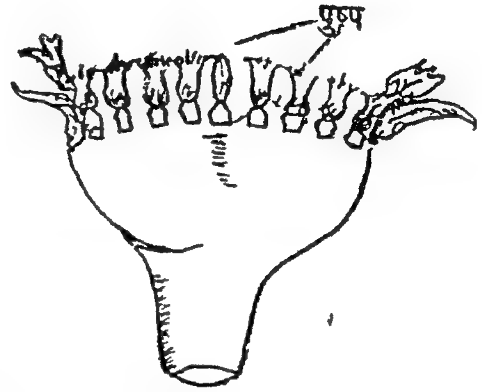
१ Calkm. २ Spadıx ३. Corymbe.

७ स्तवक[1] : जब वृंताग्र पर अनेक अवृंत पुष्प एक समूह में वृत्ताकार निकलते हैं तो उसको और चौडा स्वरूप बनाते है तो उन्हे स्तवक या अम्बेल कहते हैं। चि० ४४

८ पुष्प गुच्छ या कैपिचुलम[2] : जब पुष्प एक ही आधार पर कई छोटे-छोटे पुष्पो के समूह को जन्म देते हैं और उनका आकार एक ही स्थान पर गुच्छाकार बन जाता है तब उसको गुच्छ कहते हैं। जैसे : सूर्यमुखी का फूल। चि० ४५



चित्र ४४—स्तवक



चित्र ४५—पुष्पगुच्छ (Capitulum)

परिमित पुष्प या कुंठिताग्र पुष्प व्यूह : परिभाषा मे पहले बतला चुके हैं कि इसमे पुष्प व्यूह मे निकल कर अत मे मंजरी नम्र या मुड़ जाती है। इसमे



चित्र ४६—एकपार्श्विक (Uniparous)

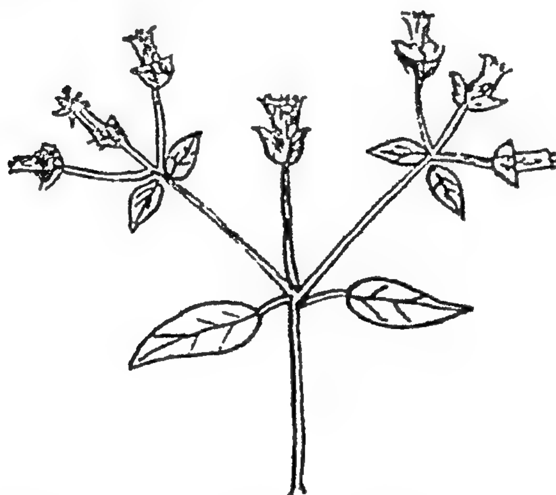
१. Umbel २. Capitulum.

माथे से पुष्प वैठने लगते है और क्रमश' नीचे तक आ जाते है। इसके भेद तीन होते है। यथा :

१ एक पार्श्विक[1] २ द्विपार्श्विक[2] ३ : वहुपार्श्विक[3]

एक पार्श्विक : जब पुष्प पुष्पदड पर एक तरफ से आकर कुंठित हो जाता है, उसमे से शाखा पर पुष्प एक पार्श्व से निकलता है। चि० ४६

द्विपार्श्विक : जब पुष्प मुख्य पुष्प दंड पर मे निकल कर कुठित हो जाता है और उस पर की शाखा पर दोनो पार्श्व से पुष्प निकलते हैं। इसे द्विभुजीय या वाईपेरस कहते है। चि० ४७



चित्र ४७—द्विपार्श्विक उभयत. पत्राक्षि से निकलने वाले पुष्प (Biparous)

बहुपार्श्विक : जब पुष्प प्रधान दंड पर लगता है और कुठित होता है और शाखा पर विभिन्न स्थान पर से पुष्प निकलते है। यथा : आक का पुष्प।

विशेष प्रकार का पुष्प विन्यास : जब पुष्प किसी क्रम का अनुसरण न कर विशेष प्रकार से व्यूह रचना करता है।

१ चषकाकार[4] . जब पुष्प अपने वाह्य कोष पर अपना स्वरूप एक चषक या प्यालानुमा बनाता है। जब नर व स्त्री पुष्प भिन्न-भिन्न दड पर बनाकर स्वरूप एक चषक की तरह बना देते है। स्त्री पुष्प वड़े-वडे और पुकेशर छोटे छोटे उर पर बन जाते है।

२ गुम्फित[5] : इसमे पुष्प अपना आकार एक गुच्छ मे गुफित कर बनाते है। यथा. तुलसी वर्ग के पुष्प। द्रोण पुष्प, कुवा या अन्य पुष्प। जब पत्र पुष्प के

---

१. Uniparous. २ Biparous ३ Multiparous.
४ Cyathium ५ Verticillaster

साथ-साथ आमने-सामने होते है और उनका आकार गुच्छ का रूप धारण करता है।

३ निगूढ पुष्प[१] : जिसमे पुष्प का आकार बाहर नही दिखाई पडता। यह पुष्पाधार पर इस प्रकार लगे होते है कि उनका मुख भीतर बन्द होता है बाहर से फल की तरह दिखाई पड़ता है। भीतर से यह खोखले होते है। भीतर तली मे स्त्री पुष्प और ऊपर नर पुष्प होते है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार से पुष्प अपना आकार बना करके पुष्प दड पर स्थित होते है। यथा—उदुम्बर-वट।

पुष्प परिचय

उद्भिज्जो मे एक बहुत बडी श्रेणी पुष्पो की है। पुष्पो का परिचय विशेष रूप मे होने पर ही मनुष्य उसके विवरण को स्पष्ट लिख सकता है। अतः पुष्प की परिभाषा को यहाँ दिया जा रहा है।

पुष्प : पुष्प उद्भिज्ज का वह विशिष्ट अग है जिसका वे अपनी सन्तानोत्पत्ति के लिये शाखा व पत्तियो को परिवर्तित रूप मे लाकर के एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते है। आज विज्ञान के युग मे यह सिद्ध किया जा चुका है कि पुष्प शाखा व पत्तियो का परिवर्तित रूप है।

पुष्प की प्रधान जातियाँ : पुष्प की प्रधानतया दो जातियाँ होती है। यथा :

१ : आवृत पुष्पधारी (Angeosperms)

२ : नग्न पुष्पधारी (Gymnosperms)

आवृत पुष्पधारी : वह कहलाते है जिनमे स्त्रीलिंग व पुंलिग अग ढके हुये या आवृत होते हैं।

नग्न पुष्पधारी : वे है जिनके स्त्रीलिंग व पुंलिग अग खुले हुये या बिना ढके रहते है।

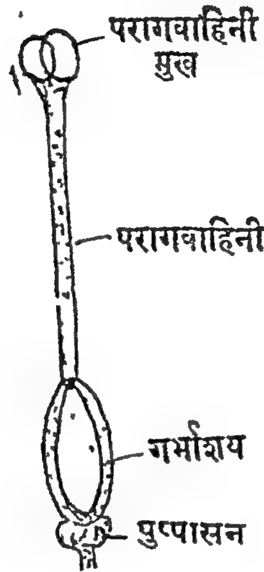
पुष्प के प्रधान अंग

एक पुष्प मे साधारणतया निम्नलिखित अवयव पाये जाते है। यथा

		चिन्ह
१	वृत या पुष्प वृंत (Pedicle)	
२	पुष्प वाह्य कोष या पुट चक्र (Calyx)	(K)
३	आभ्यंतर दल चक्र (Corolla)	(C)

१. निगूढ Aypanthodium

४ : पुलिग या पु केशर या पुंलिग चक्र (Androecium) (A)
५ . स्त्रीलिग या स्त्री केशर या स्त्रीलिग चक्र (Gynoecium) (G)



चित्र ४८—स्त्री केशर (Pistil)

इनमे से प्रथम तीन पुष्प के अनावश्यक अग हैं और शेष दो आवश्यक अंग है ।

वृत : पुष्प की स्थिति प्राय एक वृत पर होती है। यदि पुष्प अग एक वृत पर हो तो उसे सवृत या पेडीसिलेट (Pedecellate) कहते है। जब पुष्प पर वृत न हो तो उसकी सज्ञा अवृत या सेसाइल (Sessile) कहते है ।

पुष्प दड : जिस पुष्प वृंत पर अनेक दूसरे वृत शाखा के रूप मे निकले और प्रत्येक शाखा वृंत पर से अनेक शाखा वृत पर एक-एक पुष्प निकले और कुसुमोच्चय बनावे तो उसे पुष्प स्तभ या पुष्प दड या राचिज (Rachis) कहते है ।

वृंतक : पुष्प समूह मे प्रत्येक पुष्प से नीचे जो शाखा होती है उसे वृंतक या पेडाकिल (Pedancle) कहते हैं क्योकि वृत को पेडीकिल कहते है ।

पुष्प ध्वज : जो शाखा, वृत रहित जो लम्बा, पुष्प वृतमूल से निकलता है उसके अग्र भाग पर पुष्प निकले तो पुष्प ध्वज या स्केप कहते है। यथा : घृतकुमारी का ।

पुष्पासन : पुष्प वृत के आगे के भाग को जहाँ से पुष्प का उद्गम होता है उसे पुष्पासन या (Thalamus) थैलमस कहते है ।

पुष्पच्छद : पुष्प के नीचे पुष्प को आच्छादन करने वाले जो उपपत्राकार अंग पुष्प को ढककर रखता है उसे पुष्पच्छद या ब्रैक्ट[1] कहते है।

अत यदि पुष्पच्छद के साथ मे पुष्प हो तो उसे सपुष्पच्छद या ब्रैक्टियेट[2] कहते है। यदि पुष्पच्छद न हो तो उसे नि पुष्पच्छद पुष्प या एब्रैक्टियेट कहते है। पुष्पच्छद एक साधारण पत्र के समान या उससे मिलते-जुलते रूप मे हो सकता है। यह प्रायः छोटे-छोटे पतले और एक छोटे पत्र के समान मालूम पडते है। कुछ पौधो मे यह केवल सूक्ष्म दानो के ही रूप मे होते है। यह वर्ण मे प्राय हरे रंग के होते है परन्तु कभी-कभी रंगीन दलपत्र की तरह भी मिलते हैं। तब इनकी सज्ञा दलपत्रीय पुष्पच्छद या पेटालोयड[3] ब्रेक्ट होती है। कभी-कभी पुष्पवृंत मे भी इस प्रकार की रचना मिलती है। इनको लघु पुष्पच्छद या ब्रेक्टियोल्स[4] कहते है।

पूर्ण पुष्प : जिसमे पुष्प मे वाह्यकोष, आभ्यंतरकोष, पुकेशर व स्त्री केशर मिलते है उन्हे पूर्णपुष्प कहते है। किन्तु यदि इनमे से कोई भी अग नही मिलते तो उन्हे अपूर्णपुष्प कहते है। जिस पुष्प मे पुं केशर व स्त्री केशर के दोनो अग होते है उनको उभय लिंगी या हरमाफ्रोडाइट[5] कहते है। जिन पुष्पो मे इनमे से कोई एक अंग मिलते है उन्हे एक लिंगी या यूनी[6] सेक्सुअल कहते है। जिसमे पुं केशर हो तो उसे नरपुष्प व जिसमे स्त्री केशर के भाग हो उन्हे स्त्री पुष्प कहते है।

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि एक ही पेड मे कभी-कभी नर व मादा दोनो प्रकार के पुष्प लगते है और पृथक्-पृथक् लगते है तो उनको उभय लिंगीय या मोनोसियस[7] प्लाट कहते है और जिनमे नरपुष्प वाले व मादापुष्पवाले वृक्ष अलग-अलग होते हैं उन्हे एक लिगी या डायोसियसप्लाट[8] कहते है।

आकार के अनुसार पुष्प की संज्ञा : पुष्प के वृत्ताकार रचना के अनुसार अर्थात् किसी भी व्यास पर दो समान भागो मे विभाज्य रचना के आधार पर उसे वृत्ताकार एक्टिनोमारफिक[9] कहते है। और यदि पुष्प एक ही रेखा से दो बराबर भागो मे विभाज्य हो जैसे मटर का पुष्प तो उसे जायगो-

१ Bract. २ Bractiate ३ Petaloed Bract
४ Bractiole ५ Hermaphrodile. ६ Unisexuale
७ Monocius plant. ८ Diocious plant
९ Actinomorphic.

मारफिक[1] कहते हैं। यदि पुष्प के सब अग एक समान बराबर आकार के हो तो पुष्प को नियमित आकार का पुष्प कहते हैं।

यदि सब अग समान न हो तो उसे अनियमिताकार कहते हैं।

इस प्रकार यदि पुष्प आकार ऐसा हो या ऐसा न हो तो विशेषता होने पर उसका भी विवरण लिखना चाहिये। यदि वर्गानुकूल सब लक्षण पुष्प मे न हो तो उसका भी उल्लेख होना चाहिये।

पुष्पच्छद वलय

यदि वृताग्र मे कलिका के नीचे चन्द्राकार या विभिन्न आकार के पुष्पच्छद लगे होते है तो उनको पुष्पच्छद वलय या एपीकेलिक्स[2] कहते हैं।

यह हरे या लाल रग का होता है। किसी-किसी मे यह भिन्न रंग का भी होता है। यह पुष्प कलिका की रक्षा करता है।

पुष्प वाह्यकोप : पुटचक्र[3]।

पुष्प वाह्यकोप : यह पुष्प का वह भाग है जो कि वृंत के पास पुष्प को आच्छादित किये रहता है। यह कई प्रकार का होता है। वर्ण इनका हरा होता है। कभी-कभी यह लाल रग का या विभिन्न वर्ण का होता है।

पुष्प वाह्यकोप : इसमे दो प्रधान भेद होते हैं। इसमे जो पत्र होते है उन्हे दल[4]पत्र कहते है। यह पत्र सयुक्त या विभक्त भी पाये जाते हैं।

संयुक्त पत्र : जब दलपत्र पृथक्-पृथक् न होकर सब मिले हुये हो तो उन्हे सयुक्त पत्रीय या गेमोसिपेलस[5] कहते हैं।

विभक्त पत्र : जब दलपत्र पृथक्-पृथक् हो व बहुत हो तो उन्हे विभक्त-पत्रीय या पोली सिपेलस[6] कहते हैं। इनका वर्ण हरा होता है।

आभ्यतर दलसम पत्र : जब दलपत्र रगीन होते हैं तो उन्हे आभ्यंतर दलसमपत्र या पेटालोयड कहते है।

विवरण लिखते समय इनका दल सम है या विषम है या कैसा है यह लिखना पडता है। आकार व प्रकार के अनुसार इनकी सज्ञा भिन्न-भिन्न होती है।

पुच्छाकारकोप[7] : जिनमे एक ओर एक पतली सी नलिका पुच्छाकार निकली हो उसे पुच्छाकार वाह्यकोष कहते है।

---

१ Zygo morphic. २. Epicalyx. ३ Calyx
४ Sepals ५. Gamosepalous.
६ Poly sepalous. ७. Spūrred

नलिकाकार[1] : जब सब पत्र मिलकर एक नलिका का आकार बनाते हैं तो नलिकाकार कहते है।

पंजाकार[2] : जब यह पत्र मिलकर पंजे की सी सूरत बनाते है तब पंजाकार कहते है।

घटाकार[3] : जब इनका आकार घट की तरह होता है।

सुराहीदार[4] : जब यह मिलकर एक लम्बे घट के आकार के हो जाते है तो सुराहीदार कहलाते है।

फणाकार[5] : जिनका आकार सर्प के फण की तरह हो वह फणाकार होता है।

घटिकाकार[6] : जिसका आकार घटिका की तरह होता है उन्हे घटिकाकार या कम्पानुलेट कहते है।

गलंतिकाकार[7] : जिनका आकार प्रारभ मे पतला व आगे जाकर चौडा हो जाता है वह गलतिकाकार या फनेल शेप कहलाता है।

स्थायित्व व पतनशील के क्रम से इसके भेद भी होते है।

पतनशील : जो वाह्यकोष पुष्प विकाश के साथ गिर जाते है उन्हे पतनशील या केडुकस[8] कहते है।

पश्चातपाती : बहुत से पुष्पो के वाह्यकोष पुष्प के साथ सूखकर गिरते है। उन्हे पश्चातपाती या डेसीडुअस[9] कहते है।

स्थायी वाह्यकोष : बहुत से पुष्पो मे वाह्यकोष फल को भी आच्छादित करता है। उसे स्थायीं या परसिस्टेट[10] कहते है।

पुष्पाभ्यंतर कोप दलचक्र या कोरोला (Corolla)

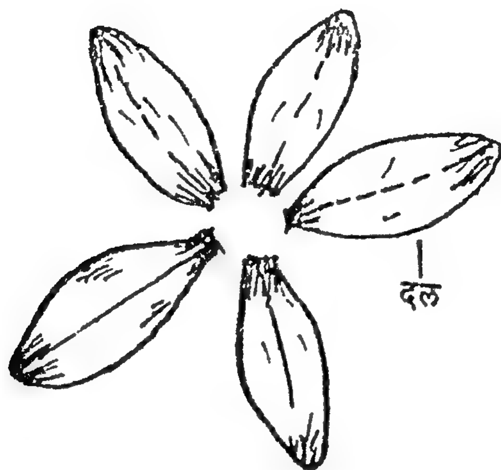
आभ्यन्तर दलचक्र : इसमे भी कई दल मिले होते है। जो मिला रहता है वह सयुक्त[11] दल वाला, जो पृथक हो वह पृथक दल[12] चक्र वाला कहलाता है।

नियमित : जिसमे दल एक समान हो तो उसे नियमित[13] व जो बड़े-छोटे

---

१. Tubular. २ Labiate ३ Obose
४ Urceolate. ५ Hooded. ६ Campanulate
७ Funnelshaped ८. Caducous. ९ Deciduous.
१० Persistant. ११ Polypetalous.
१२. Gamo pelalous. १३. Regular.

या विषम रूप के हो उन्हे अनियमित[१] दल वाले कहते हैं। या विषम दल या जायगो मारफिक[२] कहते है। रचना के आधार पर इनकी संज्ञा भिन्न-भिन्न होती है। यथा :



चित्र ४९

नलिकाकार[३] : जहा दलचक्र सयुक्त होकर नलिका का स्वरूप धारण करता है।

कुप्याकार[४] : जहाँ यह मिलकर नीचे से ऊपर को कूपी का आकार बनाता है।

चक्राकार[५] : जब नीचे के भाग मे थोडा सा मिलकर चारो ओर गोलाई मे फैल जाता है और आकार चक्र जैसा बनाता है।

कोटर पुष्पी[६] : जहाँ यह मिले हुए होते हैं और एक समान व्यास की नलिका बनाते हैं अथवा प्रारम्भ मे गोलाकार आकृति बनाकर फिर पतला आकार नलिकावत बनाते है तो इन्हे कोटर पुष्पी या अन्त. कोटरपुष्पी कहते हैं।

घटिकाकार[७] : जहा यह मिलकर एक भोपे की सी सूरत बना लेते हैं।

द्विओष्ठी[८] : जहाँ इसका आकार कुत्ते के खुले मुख की तरह हो।

श्वानमुखी[९] : जहाँ पर मिलकर कुत्ते के खुले हुए मुख की तरह आकृति बनाते है। इसी प्रकार जैसा आकार हो उसका नाम भी उसी प्रकार का रख लेना चाहिए।

---

१ Irregular.　२ Zygomarphic.　३ Tubular.
४. Infundibuliform　५ Rotat.　६ Leguate.
७ Companulate.　८ Bilabiate Rengent.
९ Bilabiate personate.

उभय संयुक्त कोष : जब बाह्य व आभ्यंतर दोनो कोष एक ही मे मिले होते हैं तो उन्हे उभय संयुक्त कोष कहते है।

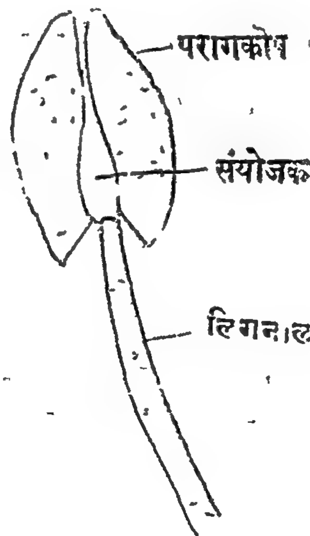
चक्रों के क्रमानुसार इनका नाम भी कई प्रकार का होता है। आभ्यन्तर कोष मे जो वृत्ताकार चक्र होते है उन्हे दल चक्र कहते है। यदि एक ही चक्र वाला हो तो एक दल चक्र और जब दो चक्र वाला हो तो दो दल चक्र, यदि तीन चक्र वाला हो तो तीन चक्र वाला कोष कहते है। इस कोष मे जो रंग विरगे पुष्प दल होते है उन्हे पुष्पदल या पेटल्स कहते है। बाह्य कोष मे के दल का नाम दलपत्र या बाह्य दल होता है। इन्हे सेपल्स कहते है।

किसी किसी पुष्प मे यह दोनो रचनाये पृथक्-पृथक् नही पाई जाती। इनका आकार ऐसा होता है कि दोनो से मिलता हुआ होता है तो इनको पैरियेथ[1] कहते है। यह रचना प्राय एकदलीय उद्भिदो मे पाई जाती है। जैसे प्याज या पलाडु।

यदि यह आपस मे मिले हुए होते है तो इन्हे सयुक्त बाह्याभ्यन्तर दलीय या गैमीफाइलस[2] कहते है। इस प्रकार जो भी रचना मिलती हो पुष्प के वर्णन के साथ ही करना चाहिए।

पुल्लिग चक्र या एन्ड्रोसियम (Androecium)

पुकेशर के प्रधान निम्न भाग होते है। इसके संपूर्ण भाग को उसका पुल्लिंग चक्र कहते है।



चित्र ५० पुंकेशर-परागकोष-पुष्पलिग

१ Parienth. २ Gamophyllus.

१ . इसके मुख्य भाग ये है ·

१ : लिंगनाल[1] २ · परागकोप[2] ३ . संयोजक[3]

पुष्प के प्रजनन अंग मे पुंकेशर व स्त्रीकेसर होते है ।

१ लिंगनाल पुकेशर के सूत्रवत भाग को लिंगनाल कहते है। इसे केशर सूत्र भी कहते हैं।

२ पराग कोष · केशर सूत्र के ऊपर जो वृत्त या त्रिकोणाकार या लम्बगोल भाग होता है वह परागकोष कहलाता है ।

३ संयोजक : इन दोनो को जो भाग मिलाता है वह संयोजक के नाम से कहा जाता है। परागकोष मे साधारणतया दो कोष या एथर लोव होते हैं और प्रत्येक मे दो प्रकोष्ठ होते हैं। इन छोटे कोषो मे पराग कण भरे रहते हैं। यह पराग धूलि छोटे-छोटे पराग एक सेलीय कणो से बनती है जिन्हे पराग[4] कण कहते हैं। कही कही इस प्रकार के पुकेशर भी मिल जाते हैं जिनमे केवल लिंग नाल या उससे भी सूक्ष्म कोई रचना मिलती है। इनमे पराग नही होता अतः इनकी निर्लिंग संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार की रचना को पुकेशरावशेष या स्टेमिनोड्स[5] कहते हैं। कभी कभी पु केशर पुष्पाशन पर जमने के बजाय आभ्यंतर दलो पर ही जमे हुए रहते हैं। इन्हे पुटपत्री[6] केशर कहते है। और पुंकेशरसंयुक्त दलचक्र के ऊपर हो तो इन्हे संयुक्त पत्रीय केशर या एपीफाइलस[7] कहते है। कभी कभी पुं केशर स्त्री केशर से चिपके हुए रहते है इस स्थिति को संयुक्त स्त्री केशरीय या गाइनेन्ड्स[8] कहते हैं।

पुं केशरी के आपस मे मिले हुए होने पर या पृथक होने के आधार पर इन्हे संयुक्त पुल्लिंग चक्र या साधारण वहु केशरीय पोलियेंड्रस[9] कहा जाता है।

सयुक्त पुं केशरी मे कई प्रकार की स्थितियाँ देखी जाती है। यदि पु केशरी के लिंगनाल मिली हुई दशा मे होते है तो इन्हे संयुक्त या एडेलफस[10] कहा जाता है।

यदि सब पुं केशरी के लिंगनाल एक ही मे मिले हुए हो तो इस दशा की मिलित नाल या मोनाडेलफैस[11] कहते हैं। और इस प्रकार संयुक्त

---

१ Filament. २. Anther. ३. Connective.
४. Pollen grain. ५. Stami nodes. ६. Epepetalous.
७ Epephyllus. ८. Gynandrous. ९. Polyandrous.
१०. Adalphus. ११. Monadalphus.

नाल की एक नलिका सी बन जाती है, जो सूत्री केशर को चारो ओर से घेरे रहती है। यदि लिगनाल दो विभागो मे सयुक्त हो तो द्विदलीय या डाइडेलफस[1] कहा जाता है। यदि लिग नाल कई समूहो मे सयुक्त हो तो इस दशा को बहुनाल्नीय[2] कहा जाता है। इसके विपरीत कुछ पुष्पो मे यह भी देखा जाता है कि उनके लिगनाल तो पृथक् रहते हैं परतु परागकोष आपस मे चिपके रहते है, इस दशा को सिनजेनेशस[3] यासिनेथ्रस कहा जाता है।

कुछ पुष्पो मे पुं केशर छोटे-छोटे बडे होते है। यथा : सर्षप वर्ग मे २ छोटे ४ बड़े इस दशा को टेट्राडाइनेमस[4] कहते हैं।

लिगनाल परागकोष पर कई प्रकार से स्थित होते है, यथा : पराग-कोष मे कई छोटे छोटे थैलीनुमा भाग होते है। इनमे पीले रंग का पराग बनता है। इन्हे पराग प्रकोष्ठ कहते हैं। इनके जोडने वाले भाग को सयोजक या कनेक्टिव कहते है। पुष्प के खिलने पर पराग कण फट कर बाहर आ जाते है। इस अवस्था को परागस्फुटन (Dehiscence of Anther) कहते हैं।

बहिःस्फुटन : जब कोष बाहर की तरफ फटते है तो उन्हे बहिःस्फुटन (Extrorse) कहते है।

षंढ पुं केशर : यदि पराग कोष मे पराग कण न हो तो अथवा होने पर भी पराग कण न उत्पन्न होते हो तो उन्हे षंढ पुंकेशर (Staminode) कहते हैं।

संख्या : पुं केशरो की संख्या सब पुष्पो मे समान नही होती। यथा : आर्द्रक मे एक, जई मे दो, गेहूँ मे तीन, आवर्तनी मे चार, धतूर मे पाच, और चावल मे ६, और बहुतो मे अधिक होते हैं।

पु केशर प्रायः पृथक पृथक होते हैं। किन्तु कभी कभी एक मे मिल भी जाते हैं और गुच्छाकार हो जाते है। यदि पुं केशर चार हो या अधिक हो और जोड़ो मे हो और समान न होकर छोटे बडे हो उन्हे विपम युग्म या डाइडिनेमस (Didynamous) कहते हैं। यदि सम हो तो सम कहते है।

---

१. Diadelphous. २ Polyadelphous.

३ Syngenesious or syaranthrous.

४. Tetrodynamous.

२ कक्षीय : इस जाति मे संयुक्त गर्भाशय कई खडो मे विभक्त होता है। और आदि बीज का धारण करनेवाला स्थान कक्ष मे होता है हर एक खंड के कक्ष प्रान्त में होने से यह कक्षीय कहलाता है। यथा : नीबू, नारगी।

३ मुक्त केंद्रीय अत्यत मृदु गर्भाशयो मे खंड, प्रदर्शक भित्ति टूट जाने से वह एक ही दिखाई पडता है। बीज क्रम इसके चारो तरफ लगता है। अतः बीज उस स्थान के चारो तरफ होते है। उन्हे मुक्त केन्द्रीय बीज क्रम कहते हैं। यथा : बज्रदती।

४ पार्श्वीय : इस क्रम वालो मे गर्भाशय एक ही होता है और गर्भाशय की दीवाल पर आया हुआ होता है। यथा राजिका, पपीता, पोस्ता।

५ तलस्थ : इस क्रम मे गर्भाशय एक ही खंड की तरह होता है (यूनी-लोक्यूलर) और पुष्पाधार के ऊपर बीज स्थान होता है। और गर्भाशय के तल मे एक ही बीज धारण किये होता है तो उसे तलस्थ या बेसल (Basal) कहते है। यथा : भृंगराजादि वर्ग में।

६ उथला क्रम : इसमें गर्भाशय कई खडो मे विभक्त होता है और अक्षीय बीज क्रम की तरह खंड भित्तियो के भीतरी भाग मे बीज लगे रहते है तो उन्हे उथला क्रम या सुपरफिगियल (Superficial) कहते है।

आदि बीज या ओव्यूल (Ovule)

बीजनाल : यह एक कोमल सूत्र के द्वारा या दंड के द्वारा आदि बीज बीज स्थान से लगा रहता है। इसे बीजनाल कहते हैं।

२ नाल चिह्न : गर्भाशय शरीर मे जहाँ जहाँ बीजनाल सलग्न होता है उस भाग को नाल चिह्न (Hillum) कहते है।

३ सवरक भाग : आदि बीज का शरीर दो भागो से घिरा रहता है। इस भाग को बीज सलग्न भाग (Nucellus) कहते है। नग्न बीज वाली वनौषधियो में जैसे भृंगराज आदि मे एक ही संवरक भाग होता है। चंदन व बादा जैसे पेडो मे यह आवरण भाग नही होता।

४ बीज छिद्र (Micropyle) : ऊपर कहे हुए आवरण जब एक साथ जुड़कर एक सूक्ष्म छिद्र बनाते है उन्हे बीज छिद्र या माइक्रोपाइल कहते है।

५ आवरणोद्भव स्थान : इन दोनो आवरणो का जहाँ से आरभ होता है उसे उसका उद्भव स्थान (Chalaza) कहते है।

६ गर्भकोष (Embryo sac) : आदि बीज के ठीक ऊपर बीज छिद्र की तरफ एक बडा अंडाकार कोष बन जाता है। इसको गर्भ कोष या गर्भ थैली इम्ब्रियो सैक कहते है। इसके नीचे अंकुर का भाग होता है। आदि बीज या अकुर के रूप बीजो मे कई प्रकार के होते है। विशेष कर ३ या ४ भेद होते है।

१ ऊर्ध्व मुख या अर्था ट्रोपस (Orthotropous) :
इस जाति के बीजो में बीज छिद्र संवरण व उद्भव स्थान एक ही रेखा मे होता है। यथा ' ताबूल वर्ग के व पालकी के शाक मे।

२ अधर मुख या एनाट्रोपस (Anatropous) : इसमें आदि बीज बीज नाल की तरफ होता है। जहाँ से बीज छिद्रनाल के पास ज्ञात होता है। और बीज छिद्र व उद्भव स्थान एक ही रेखा मे होते है। इन्हे अधोमुख या विपरीत मुखाकुर कहते है।

३ प्रसरित मुख (Amphitropous) : जब अकुर बीजनाल के ऊपर दोनो तरफ फैला होता है उस क्रम को प्रसरित क्रम कहते है।

४ : तिर्यक मुख (Compylotropous) : जब आदि बीज तिर्यक होता है तब उसे तिर्यक मुख कहते हैं। यथा : गुलबास।

गर्भाशय में आदि बीज की स्थिति

गर्भाशय मे बीज कई प्रकार से स्थित होते है। यथा :

१ : उत्थित या सीधा जहाँ बीज सीधे हो। (Erect)

२ : अनुलम्बित (Pendulous) जब आदि बीज गर्भाशय के शिखर की तरफ जाकर नीचे पेंडुलम की तरह लम्बायमान हो तो उसे अनुलंबित कहते है।

३ : अवलंबित (Suspended) जब आदि बीज गर्भाशय के पास से निकला हो तो उसे अवलम्बित कहते है।

४ · समानान्तर (Horizental) आदि बीज जब गर्भाशय के अन्दर पार्श्वो से ऊपर सीधा निकला हो तो समानान्तर कहलाता है।

फल तथा बीज का परिचय

अन्य प्राणियो की तरह वृक्ष व पौधे भी सतानोत्पत्ति के द्वारा वंशपरंपरा को कायम रखते है। इस की कई विधिया है। पुष्पधारी वृक्षों में पूर्व मे हमने देखा है कि उन मे संतानोत्पत्तिकर प्रधान अंग स्त्री केशर, पुकेशर,

१ सूखे फल · वे फल है जिनके गर्भाशय की दीवाल अन्तिम स्थिति मे सूख कर कडी हो जाती है।

२ मासल फल : वे फल है जिनके गर्भाशय की दीवाल मासल या गूदेदार या रसदार हो जाती है।

सूखे फल के भेद :

सूखे फलो को तीन भागो मे बाटा जा सकता है। यथा :

१ : शुष्क जो न फटने वाले हों एक बीजीय (Achinal)

२ : शुष्क फटने वाले बहुबीजीय (Capsular)

३ : शुष्क बहुबीजीय जो एक बीजीय भागो मे विभाज्य हो। (Schizo-carpic)

इन तीनो प्रकार के फलो को पुनः प्रधान पॉच भेदो मे विभाजित किया गया है। जो निम्न रूप मे हैं।

शुष्क न फटने वाले एकबीजीय फल : (Achinal fruits)

१ : एकीय या एकीन। (Achine)।

जिन की गर्भाशय भित्ति पतली होती है और जो उच्च स्थानीय गर्भाशय से निर्मित होते है। फलावरण व पुष्पावरण पृथक् होते हैं। यथा :

अपराजितादि वर्ग (पोलिगोने सी वर्ग) के फल। बहुत से सामूहिक फल भी इसी प्रकार के फलो के समूह से बने होते है।

२ : एकबीजीय या सिप्सेला (Cypsela)

इनमे व एकीय फलो मे केवल अन्तर यही होता है कि इनमे गर्भाशय अधः स्थित ओवरी से बना होता है। यथा : शतपत्री वर्ग के फल। यथा : सूरजमुखी बहुत से इस वर्ग के फलो पर रोम भी होता है। इनमे फल कवच व बीज कवच अलग-अलग होते है।

३ : सपक्ष बीज या समारा (Samara) : यह भी एकीय जैसे ही होते है परन्तु फलावरण चपटा होकर फैल जाता है ताकि बीज उडकर इधर या उधर फैल सके।

४ · वर्म फल या नट्स : उसमे फलावरण कड़ा और मजबूत बन जाता है। जैसे देवदारु, शुष्क स्फोटी-बहुबीजीय फल।

५ : संयुक्त भित्तीय—कैरियोप्सिस (Caryopsis)—यह एकीय के समान ही होते है परन्तु इनका फलावरण व बीजावरण आपस मे मिल कर एक हो जाता है। यथा—मक्का—गेहू—जौ। शुष्क फटने वाले बहुबीजीय फल—(Capsular fruits) :—

इन फलो की दीवार परिपक्व होने पर फट जाती है। इस क्रिया से फल निकल कर फैल जा सकता है। इसके पाँच भेद है :

१ · अर्द्ध स्फोटी या फोलिकिल : (Follicle)

यह एककोषीय एक स्त्री केशर से उत्पन्न होने वाला फल है जो कि एक ओर से ही फटते हैं। बहुत से सामूहिक फल इस प्रकार के फलो से ही बनते हैं। यथा : स्वर्ण चपक, बारमासी।

२ शिम्बी जातीय या लेग्यूम (Legume)

एक स्त्रीकेशर के एक गर्भकोष जो उर्ध्वस्थित गर्भाशय से उत्पन्न होता है। यह परिपक्व होने पर दोनो ओर से फटते है। यथा : मटर आदि के फल।

३ : सार्षपी या सिलीकुवा . (Seliqua)

इस सर्षप वर्ग का विशिष्ट फल होता है और इसका निर्माण गर्भाशयी स्त्रीकेशर के द्वारा होता है। बीच मे एक पतली झिल्लीदार दीवार के द्वारा दो भागो मे अलग हो जाता है। परिपक्व होने पर फल के दोनो ओर के हिस्से फट जाते हैं। और बीच की पतली झिल्ली अलग हो जाती है। यह लम्बे गोल आकार की होती है। यथा : सरसो की फली।

४ : चपटी फली : या सिलीकुला : (Silicula)

यह भी बनावट मे सार्षपी की ही तरह होती है किन्तु फल छोटा व चपटा होता है। यथा :

५ : फली या कैंपसूल : (Capsule)

इस वर्ग मे अन्य प्रकार के फटने वाले सब फल आ जाते है। एक कोष्ठीय या बहुकोष्ठीय। एक या अनेक गर्भाशयो से मिल कर बने होते है। यह कभी-कभी, आर्द्र या मासल भी होते है। और इनके फटने की विधि भिन्न-भिन्न होती हे। यथा : भिंडी, अफीम आदि।

शुष्क बहुबीजीय एकबीजीय भागो में विभाज्य
(Schizocarpic fruits)

यह सूखे हुए बहुबीजीय फल होते है। किन्तु परिपक्व होने पर एक बीज वाले हिस्सो मे विभक्त हो जाते है। एकबीजीय यह भाग पूरे फटते नही

और इन एक वीजीय भागो को एक वीजीवेश्म (मेरी कार्प) कहते हैं। इनके भी पाँच भेद होते है। यथा :

१ : अनुप्रस्थ खण्डीय या लोमेटम (Lomentum)

कुछ गिम्वी व सर्षप वर्ग के वीज इस प्रकार के होते हैं। यह कई वीज वाले फूले हुए मालूम पड़ते है। और एक-एक वीजवाला भाग अलग-अलग मालूम पडता है। जैसे मूली की फली। मूगफली।

२ : युगवेश्मीय क्रीमोकार्प (Cremocarp)

यह फल द्विगर्भाशयी व द्विकोष्ठीय स्त्री केशर मे वनता। परिपक्व होने पर लम्वाई मे फट जाता है। और एक-एक वीज वाला भाग अलग हो जाता हे। शतपुष्पादि वर्ग के फल इस प्रकार के होते हैं। यथा : धनिया, सौंफ आदि।

३ : चतुर्वेश्मीय कार्सेरुलस (Carcerulus)

इस जाति मे फल का निर्माण द्विगर्भाशयी स्त्री केशर से जो कि ऊर्ध्व स्थित होता है वनता है। इसमे भी वीच मे पतलीसी दीवार वन जाने से गर्भाशय चतुष्कोष्ठीय प्रतीत होने लगता है। परिपक्व होने पर चार वीज पृथक् हो जाते है। यह तुलसी वर्ग मे विशेष रूप से मिलते हैं।

४ . पुटकीय या रेग्मा (Regma) पुनर्विदारी।

इस फल के एकवीजीय भाग फटने वाले होते है। यह विशेष कर एक फल मे तीन या अधिक प्रकोष्ठ मिल कर वने होते है। और परिपक्व होने पर प्रत्येक प्रकोष्ठ फट जाता है। इन प्रकोष्ठो को पुटकीय पुटक या कोकोई कहते हैं। यथा एरण्ड के वीज।

५ द्विपक्षीय या डवल समारा (Double Samara)—इसमे समारा के समान दो या अधिक फल होते हैं।

साधारण मांसल फल

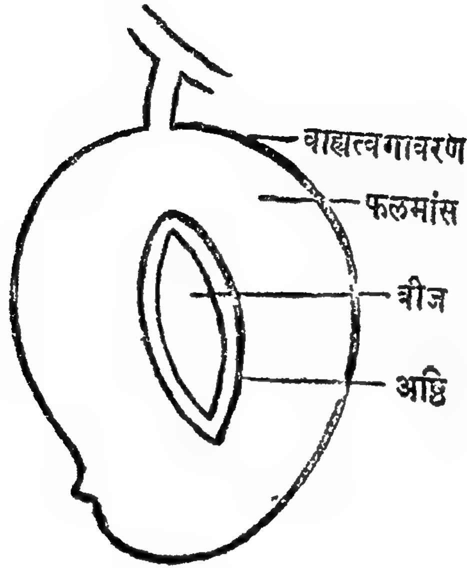
साधारण फल जो गूदेदार होते हैं विशेष कर तीन प्रकार के होते है। यथा

१ : अष्ठील फल या ड्रूप (Drupe)

२ : रसभरी या वेरिज (Berry)

३ : अधिमासल या पोम (Pome)

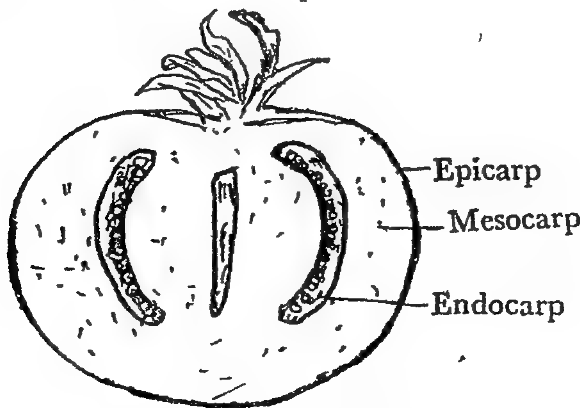
१ अष्ठील फल :



चित्र ५१ अष्ठील फल

इस जाति के फलो को गुठलीदार या अष्ठील फल भी कहा जाता है। क्योकि इनके बीच गुठली होती है जो कडी होती है और बीज को सुरक्षित रखती है। इनका निर्माण उर्ध्वस्थ गर्भाशय से होता है। इसका फलावरण विशेष रूप मे तीन भागो मे विभाजित होता है।

१ : फल त्वचा (Epicarp)
२ : फल मास (Mesocarp)
३ : फल अष्ठि (Endocarp)



चित्र ५२ मासल फल

अंजीर का फल एक ऐसी पुष्पशाखा के द्वारा बनता है जिसका पुष्पाशन का भाग एक प्याला सा बन जाता है और उसके अन्दर छोटे-छोटे पुष्प होते हैं। खाद्य पदार्थ एक पुष्पाशन मे एकत्र होता है। अतः सब को एक फल कहते हैं। किन्तु वास्तव मे पाये जाने वाले एक-एक बीज युक्त एक-एक फल होते हैं। इस प्रकार के फल वनस्पति वर्ग के होते हैं। यह कभीय फल या साइकोनस (Syconus) कहे जाते हैं।

शहतूत या अनन्नास का एक-एक फल स्पाइक जाति की पुष्पशाखा से बना होता है। इस प्रकार के फलो को सोरोसिस या सरसाक्ष फल (Sorosis) कहते हैं इस प्रकार के फलो की एक जाति और भी होती है जिसे स्ट्रोबिलस (Strobilus) या शकुफल कहते हैं। इसकी पुष्पशाखा मे कुछ झिल्लीदार पत्रक की रचना होती है। और इन पत्रको के ऊपरी भाग के मूल पर दो स्त्री पुष्प प्रत्येक मे होते है, जो वास्तव मे एकीन जाति के फल का रूप धारण करते है। इस प्रकार के फल हाप के द्वीपो मे होते हैं।

इन फलो के भेदो के अतिरिक्त अन्य भेद भी हैं जिन को उक्त वर्ग मे रखना सदिग्ध सा ज्ञात होता है। इनमे मिश्रित फल के लक्षण होते हैं।

पन्तुर ये फल सख्या मे नगण्य से हैं और इनका वर्गीकरण होना कठिन है।

बीज परिचय

फल के भीतर बीज लगते है। कही-कही पर फल व बीज एक साथ ही होते हैं। ये बीज स्त्री जातीय पुष्प के रजःकण के अन्तिम विकसित रूप है। गर्भाशय मे रज कण व परागकण के केन्द्रो का संयोग होता है, जिसे गर्भाधान कहा गया है। रजःकण मे प्रारभिक अवस्था मे कई सूत्री केन्द्र होते है, इनमे से दो केन्द्र प्रमुख होते हैं। एक तो मध्य मे पाया जाने वाला स्त्री [1]वानस्पतिक केन्द्र और दूसरा ऊपर की ओर स्थित स्त्री लिग केन्द्र[2]।

परागकण के द्वारा नलिका का निर्माण होता है। और परागकण का भाग दो भागो मे विभक्त होकर इस नलिका मे होते हुए इस रजःकण के पास पहुँचते है। इन दो केन्द्रो मे आनेवाला पुरुष वानस्पतिक[3] केन्द्र होता है। सर्वप्रथम दोनो वानस्पतिक केन्द्र आपस मे मिलते है। फिर दोनो आपस मे संयुक्त हो जाते हैं। अब इस रजःकण का गर्भाशय के साथ विकास होता

---

१ Female Vegelable nucleus. २. F. sez nucleus

३ Female V. nucleus.

है। गर्भाशय तो फल का रूप धारण करता है और रज:कण बीज के रूप मे परिवर्तित होता है। संयुक्त लिंग के केन्द्रो के द्वारा बीज मे पाये जाने वाले भ्रूण का निर्माण होता है। और संयुक्त वानस्पतिक केन्द्रो के द्वारा बीज के अन्य भाग जैमे बीजपत्र, खाद्यकोष आदि का निर्माण होता है। रज-कण की भित्ति विकसित होकर बीज के आवरण के रूप मे परिणत होती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कभी-कभी विकास के क्रम मे रज.कण व गर्भाशय की दीवारे मिल जाती है और एक मिश्रित आवरण रह जाता है। यह रचना फल है किन्तु साधारणतया लोग इन्हे बीज के ही नाम से पुकारते है। यथा : गोधूम व यव आदि।

पुष्पधारी पौधो मे के दो भेद पहले कहे गये हैं। इनमे प्रारंभ से अन्त तक रचना मे अन्तर होता है। इनके भेदो को जानने के लिये निम्न तालिका से काम चला सकते है। यथा :

क्रम	अंग	द्विपत्री पौधे	एक पत्री पौधे
१	मूल	साधारण मूसलाकार जडजिनका निर्माण बीज के आदि मूल द्वारा स्थूल होता है।	मूल फखडेदार होती है और इनका निर्माण आदि मूल से नही होता।
२	काड	मोटा व वायु के साथ बढने-वाला होता है।	काड पतला लम्बा आयु के अनुसार मोटा नही होता।
३	पत्र	पत्र शिरा जालीदार होती है।	पत्रशिरा सदा समानान्तर होती है।
४	पुष्प	पुष्प अग २, ४, ५ या अधिक संख्या मे होते है।	सदा तीन तीन की संख्या मे।
५	बीज	द्विपत्रीय	एक पत्रीय होता है।

द्विपत्रीय पौधो के उदाहरण है : आम्र, जम्बु, चणक, मटर, शिम्बी आदि एकपत्री बीज वाले गोधूम, धान, नारिकेल, प्याज, वग रसोन आदि परीक्षा के अभ्यास के लिये इनके पौधो को लेकर वहुश परीक्षा करना चाहिए।

द्विपत्रीय बीज : इनके अध्ययन के लिये पहले ही अंकुरोद्भेद मे विवरण दे चुके है। यथा . एक सेम या लोविया के बीज ले लीजिये। इसमे निम्न बाते अवलोकन करिये।

१ · वीज के ऊपर का सफेद चिह्न यह नाभि नाल है। इसी स्थान पर वीज फली की दीवाल से लगा रहता है। दोनो का सयोजक एक वृत होता है वह इसका ही चिह्न है पकने पर यहाँ से पृथक हो जाता है। इसके पास ही दबा हुआ एक छिद्र दिखाई देगा यह नाभि छिद्र या माइक्रोपाइल है। इसी छिद्र से अंकुर वाहर आता है। ऊपर का कडा आवरण इसका वाह्यावरण या टेस्टा है। इसके नीचे श्वेत वर्ण का भाग दिखाई पड़ता है। यह दो टुकड़ो मे वना हुआ है। यह प्रत्येकवीजपत्र है। यह दोनो आपस मे एक विंदु पर मिले होते हैं। ध्यान मे देखने पर एक नोकदार भाग दोनो के संगम पर दिखाई देगा। यह अंकुर या भ्रूण है। यही वीज के जमने पर उसके मूल का आकारधारण करताहै। इस अकुर व वीजपत्र के सयोजन के स्थान को मध्य-सयोजक या हाइपो कोटाइल कहते हैं। इसके ऊपर भ्रूण का अवशिष्ट भाग वीज का प्राकुर रहता है। इसे प्राकुर या प्यूमूल कहते है। यह भाग आगे जाकर पोधे का काड का भाग निर्माण करता है। भ्रूण वीज मे जीवित अवस्था मे सदा पड़ा रहता है। किन्तु जव अनुकूल अवस्था पाता है तभी ही यह क्षेत्र-वायु-जल-ताप पाकर वृद्धि करता है।

खाद्य पदार्थ एकत्र करने की विधि :

वीज अपने वीजपत्रो के रचना, आकार व अंकुरण के आधार पर कई विभिन्न सज्ञाये प्राप्त करता है। यथा ·

बीज पत्र : जब बीज पहले बार निकल कर हरे रंग के पत्र का स्वरूप धारण करता है तो इसका नाम वीजपत्र या एपीजियल[१] होता है।

२ : अधःस्थ पत्र : जब वीज पत्र पृथ्वी के अदर ही रहे आते है तो इनकी सज्ञा अध स्थ पत्र या हाइपोजियल[२] होती है। इनमे पर्याप्त भोजन होने के कारण बीज पत्र को पत्र की तरह कार्य करने की आवश्यकता नही होती।

कुछ बीजो मे खाद्य पदार्थ उनके द्विदल मे ही होते है कुछ मे पृथक भी होते हैं। यथा . मटर, सेम व चने मे दल के साथ ही खाद्य पदार्थ रहता है और एरड, तुवरक व जैपाल मे दल पृथक होता है और जिनमे खाद्य पदार्थ अलग रहता है उनको एलव्युमिनस[३] या इडोस्परमिक बीज कहते है। जिनमे खाद्य पदार्थ वीज पत्र मे ही रहता है उनको परिपुष्ट वीज या एक्स अलव्युमिनस[४] वीज कहते है।

१—Epegeal. २—Hypogeal, ३—Albuminous or Endospermic, ४—Exalbuminous

एकपत्रीय बीज : एकपत्रीय बीजो मे मक्का सब से सरल उदाहरण है। इनमे खाद्य पदार्थ सदैव बीज पत्र से पृथक ही एकत्र होता है। इनमे भ्रूण व बीज पत्र की स्थिति सदा विशेष होती है। शेष भाग खाद्य पदार्थ से भरा रहता है। मक्का के एक बीज का अनुलम्ब च्छेद ले तो रचना साफ दिखाई पडती है।



मूल व कंद के विषय की आवश्यक जानकारी

मूल को परीक्षार्थ तैयार करने की विधि ।

औषधि के निमित्त जो कद या मूल मिलते है वे प्राय. शुष्क, कठिन और झुर्रीदार सिकुड़े हुये मिलते है । इनसे ठीक द्रव्य की स्थिति का पता नही चलता अत. उसे परीक्षोपयोगी बनाना पडता है । क्योकि बहुत मे बाजारू द्रव्य रगे हुए या व्यापारिक विधि से तैयार किये जाते हैं क्योंकि वैसा न होने पर व्यापारी वर्ग नही लेता । अस्तु जो भी मूल मिलते है वह इस प्रकार बनाये जाते हैं कि वे स्थायी रक्खे जा सके । और बाजार मे बेचे जा सके । अतः उनको उपयोगी बनाकर परीक्षा की जाती है । इसकी सामान्य विधि यह है जैसा कि नीचे दिया जा रहा है ।

१ : यदि कंद या मूल बाजार मे लिया गया है तो शुष्क व आर्द्र दोनो प्रकार का मिलता है । आर्द्र मे तो कोई बात नही होती, काट कर भीतर के तत्त्व देखे जा सकते है । शुष्क होने पर उसे कम से कम १२ घटे पानी मे रखकर फूल जाने देना चाहिये । ताकि उसके च्छेद लिये जा सके ।

२ मूल यदि कंद है तो वह सरलता से फूल जाता है. यदि कठिन है यथा पुनर्नवा आदि तो उसे २४ घंटे पानी मे डुबा कर रखना चाहिये ताकि वह मृदु हो जाय और कार्य के योग्य हो सके और उसके व्यतस्त व लम्बाई मे च्छेद लेकर भीतर की परीक्षा की जा सके ।

३ . ततु कठिन सूत्र वालो का अलकोहल या अम्ल मिश्रित द्रव मे डाल कर कई दिन भिगोते हैं और तब वह मृदु बनता है नही तो उसे अम्ल द्रव मे रख कर उबाल लेते हैं और तंतु को मृदु बनाते है ।

४ · च्छेद लेने के बाद उसका चित्र जैसा दिखाई देता है वैसा बनाकर उसका चित्रण करते है और क्रियात्मक की पुस्तिका मे इस का सैपल भी रख लेते है । ड्राइग पेपर पर इसका चित्र बनाकर के रखते है ताकि परीक्षक या निरीक्षक देखते समय देखकर उसकी सचाई जान सके ।

५ पहले पहल असली द्रव्य का चित्रण करना चाहिये और फिर उसके खड का ।

६ : रचना मे विशेष कोई वस्तु दिखाई पडे और उसका संबंध औषधि से हो तो उसका विवरण देना आवश्यक होता है ।

७ : कभी-कभी विशेष रचना को चित्रित करने के लिये उसको केशरिया रग या अन्य रंगो मे रगना पडता है। अतः इसका भी ध्यान रखना चाहिये।

८ : उसके आकृति का विवरण व रस, गंध, वर्ण का भी विवरण देना उचित है।

९ : विभिन्न प्रकार की परीक्षा के लिये जहा पर आवश्यकता हो उसे वहाँ पर करके देखना भी चाहिये। जैसे : पिष्ट या स्टार्च की परीक्षा, तैल की परीक्षा, सुगधित तैल या अन्य वस्तु की परीक्षा आदि।

इस प्रकार आदि से अत तक का विवरण अच्छी तरह विवरण पत्र मे आ जाना चाहिये।

हरिद्रा का कंद कुरकुमाह्राइज़ोमा।
(CURCUMA RHIZOMA)

नाम : हरिद्रा निशा, रजनी।

वर्ग : आर्द्रकादि।

गण : चरक . कुष्ठघ्न, लेखनीय, कंडूघ्न, विषघ्न, शिरोविरेचन, तिक्त स्कंध।

सुश्रुत : हरिद्रादि, मुस्तादि, श्लेष्म सशमन।

प्राप्ति : बाजार से हरिद्रा के सूखे हुए कद मिलते है। यह द्रव्य भारत मे, मलाया से खेती करके प्राप्त होता है। इसका नाम कुरकुमा डोमिस्टिका भी है। क्योकि अधिकतर यह घरो मे मसाले के रूप मे काम आती है। भारत मे इसका औषधि के लिये भी प्रयोग होता है।

सग्रह : इसकी पुत्रिकाये शीत ऋतु मे बो दी जाती है। धीरे-धीरे पौधा निकल आता है और कुछ काल के बाद यह बढ कर मूल मे कद की आकृति का परिवर्तित मूल देता है जो कि काड का रूपान्तर होता है। पुष्ट होने पर इसे निकाल लेते है और मूल रहने देते है। इस मूल से पुन. दूसरा कद निकल आता है और पहले वाले से पतला होता है। इसको उबाल कर सुखा देते है। व्यापारी इसमे पुन हल्दी का पीला रग करके बाजार मे रखते हैं।

आकृति : प्राथमिक कद मोटा और स्थूल होता है (यथा—चित्र ५६)। द्वितीय कद पतला और लम्बा नोकीला होता है। (चित्र ५७) जब यह आर्द्र होता है तब ठीक आर्द्रक कद की तरह दिखाई पडता है। इसका वर्ण पीला चमकदार भूरे रग का होता है। कद के ऊपर कई गोल-गोल धारिया चौडाई की दिशा मे होती है। जो पत्र के चिह्न के अवशिष्ट रूप मे होती है। जब पत्रावरण इससे पृथक किया जाता है तब बन जाती हैं। इस पर छोटे-छोटे कद के उभार

दिखाई देते है जो प्रारम्भ मे मोटे आगे जाकर पतले हो जाते हैं। इसके ऊपर की त्वचा को हटाने पर नीचे से कुंकुम की तरह का वर्ण दिखाई पडता है। इन कदो की लम्बाई ४ से ७ सेटीमीटर, मोटाई एक से दो सेटीमीटर होती है।



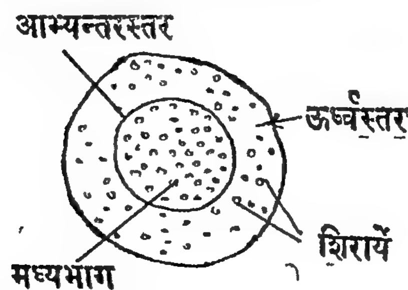
चित्र ५६ प्राथमिक हरिद्रा



चित्र ५७ द्वितीयक कंद

इसमे एक प्रकार की सुगध आती है। जो आम्र गधी होती है और कर्पूर से मिलती-जुलती होती है। सूखने पर यह हरित पीत वर्ण के दिखाई देते है। बाहर की त्वचा सूखने के कारण सिकुड जाती है। स्पर्श मे खुरदरी लगती है। इसका च्छेद लेने पर निम्न रूप दिखाई पडता है।

व्यतस्तछेच्दद्न : वाह्य त्वचा का एक आवरण चारो सरफ रहता है जो आर्द्र मे पतला और बादामी रग का होता है। सूखे हुए मे यह पीत वर्ण का दिखाई देता है। द्वितीय स्तर यह मोटा और पीले केशरी रग का होता है। इसके बाद तृतीय स्तर : भीतर का घन भाग और सौत्रिक रचना से युक्त होता है।



चित्र ५८

परिमाण : एक कंद का परिमाण करीब दो-सौनब्बे ग्रेन होता है। आयाम दो इंच और चौडाई पौन इंच होती है। इसका परिणाह ढाई इंच होता है।

वर्ण विज्ञान : आर्द्रकंद का बादामी वर्ण का। सूखे का पीत वर्ण का। कषे, पीत। भंगे, पीत। चूर्ण, पीत। क्वाथ, पीत। तेल व घृत : पीत हरित वर्ण।

विलेयता . यह वारि, तैल व घृत मे पर्याप्त घुलनशील है।

रस परीक्षा : स्वाद मे तिक्त कटु।

गंध परीक्षा : मृदु व मनोहारि आर्द्र कद मे। शुष्क मे एक विशिष्ट गध।

स्पर्श : शीत, श्लक्ष्ण, कठिन, गुरु।

शब्द परीक्षा : भग्न कालीनचट। ज्वलनकालीन चटचट।

वर्ग : प्रायश. कटु व तिक्त होने से तैजस वर्ग का है।

गंधपलाशी : हेडिचियमस्पीकेटम्।

नाम गधपलाशी, (Hedechıam spıcatum)

वर्ग : आर्द्रकादि : स्किटेमिनेसी(Scetamınaceae)

चरक : श्वासहर, हिक्का निग्रहण।

आकृति विज्ञान : यह गधपलाशी का मूल है जो काड का रुपातरित स्वरूप है। उसका आकार आर्द्रक के कद की तरह होता है। बाजारो मे यह छोटे-छोटे टुकडो के रूप मे मिलता है। सूखा हुआ श्वेत वर्ण का दिखाई पडता है। इसके ऊपर हल्के श्वेत पीत वर्ण का एक आवरण रहता है। नीचे इसके कद का भाग होता है। इसके ऊपर यत्रतत्र उपमूल के चिह्न दिखाई देते है। शुष्क कटे हुए खडो मे ऊपर की त्वचा खुरदरी लाल वर्ण की भूरे वर्णयुक्त होती है। पूरे कद पर दो-तीन गाठे दिखाई पडती है। इस पर गोलाकार चिह्न, पत्र वृत के आवरण के दिखाई देते है। भीतर कद का भाग श्वेत वर्ण का होता है। आर्द्र कद काटने पर भीतर से श्वेत भाग दिखाई देता है।

च्छेदन विवरण : व्यत्यस्त च्छेद लेने पर इसमे दो भाग दिखाई पडते है।

बाह्य भाग : यह धूसर सा भाग है जो चारो ओर किनारो पर व्याप्त है।

मध्य भाग : यह श्वेत तथा अधिक भागो मे व्याप्त है।

परिमाण : आयाम आधा इच, विस्तार डेढ इच, मोटाई चौथाई इच।

वर्ण : प्राकृत वर्ण श्वेत। कपेव भंगेश्वेत, चूर्ण, श्वेत भूरा।

क्वाथ, धूसर।

तैल, धूसर पीताभ।

घृत, पीताभ धूसर। ज्वाला, रक्त पीत।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईषत् विलेय ।

रसविज्ञान : प्रधान रस तिक्त, अनुरस कटु ।

गध विज्ञान : उग्र सुगध ।

स्पर्श विज्ञान : कठिन, खर, रुक्ष, गुरु ।

शब्द परीक्षा : अभंगुर । भग्नकालीन शब्द, चट् ।

वर्गविनिर्णय : प्रायश: तिक्त व कटु होने से यह तैजस वर्ग का है ।

कटुकी परिचय : (Gen-tiana Lutca.)

प्राप्तिस्थान : कटुकी यह कटुकी के क्षुप 'जंगियाना ल्यूटिया' नामक का मूल होता है । यह वहुवर्षीय क्षुप के रूप मे अधिक से अधिक ३ फीट तक ऊँचा होता है । वास्तव मे यह मूल, काण्ड के परिवर्तित रूप होते हैं । सात हजार से अधिक ऊँचाई के हिमालय की चोटियो पर तथा चीन तिब्बत दक्षिणी यूरोप मे तथा एशिया माइनर मे पाया जाता है । हिमालय के आसपास के स्थलो मे तथा देवबद के ऊपर अधिक पाया जाता है । यूरोप मे पायरेलिस, जूटा व ओसजिस मे अधिक मिलता है ।

संग्रह : इसके पौधे जव दो से पाँच वर्ष तक के आयु के होते हैं, तो इनके जडो को खोद कर सग्रह करते है ।

इसके सग्रह करने का समय मई से अक्टूवर तक होता है । वाद मे भी इसका सग्रह किया जाता है किन्तु भूमि के कडी हो जाने से खोदना कठिन होता है । यह दो प्रकार का होता है । श्वेत तथा पीत ।

कटुकी :

भेद : श्वेत वर्ण का मूल उखाडने के वाद सुखा देने पर प्राप्त होता है । दूसरा वाजारो मे लाल या पीले रग का मिलता है । यह कृत्रिम रूप से तैयार किया जाता है यथा :

विधि : पहले कटुकी के मूल और शाखाओ को एकत्र करके एक वहुत वडा ढेर कर लेते है । इसके ऊपर चारो तरफ मिट्टी डाल कर एक परता-सा वना देते है और कुछ समय तक छोड देते है। जब यह अपनी गरमी से पक कर लाल या पीले वर्ण का हो जाता है तब इसकी मिट्टी हटा कर इच्छानुसार छोटे-छोटे टुकडो मे काट लेते है । पहले इसे खुली हवा मे रखते है पश्चात् गृह छाया मे सूखने देते है । इस प्रकार सुखा देने से यह पहले से गहरे रग की हो जाती है । इसकी तिक्तता कुछ कम हो जाती है । और इसमे से एक विशेष प्रकार

की गन्ध आने लगती है। कुछ भारतीय चिकित्सको को छोड़कर यह शुद्ध कटुकी सबको लभ्य नही है। यूरोप मे तो श्वेत कटुकी के नाम से कोई जानता तक नही।

भारतीय कटुकी पिकरोहिजा कुर्रोभी इसी प्रकार से तैयार होती है। किन्तु इसकी शाखाये पतली होती है। वर्ण पीला होता हे।

ऐतिहासिक विवरण : कटुकी का ज्ञान भारतवर्ष को ईस्वीय सन् से २००० वर्ष पूर्व हो चुका था। आयुर्वेद की सर्वप्राचीन पुस्तक चरक मे भेद-नीय, दीपनीय, लेखनीय, स्तन्यशोधन व तिक्त स्कंध मे तथा सुश्रुत ने पटोलादि, पिप्पल्यादि व मुस्तादि गण मे पाठ किया है तथा चिकित्सा मे ६० या ७० स्थानो पर इसका पाठ किया है। इसी प्रकार सुश्रुत, चरक और वाग्भट्ट ने भी चिकित्सा मे वार-बार इसका पाठ किया है। भारतीय निघंटुओ मे भी इसका पाठ बार-बार आया है। कटुकी का ज्ञान सभवतः डिस्कारोइडूस और प्लीनी को भी नही था। यूरोप मे इसका ज्ञान मध्ययुग मे हुआ है। क्योकि इनके लिखे हरवल मे इसका प्रयोग नही मिलता। भारतीयनिघटु धन्वन्तरिनिघटु, राजनिघटु, मदनपालनिघंटु, भावप्रकाश तथा अन्य निघटुओ मे इसका गुण व दोष सब वर्णन किया हुआ पाते है।

परिचय : कटुकी के काड ही मूल रूप मे परिवर्तित हो कर कटुकी कन्द या ह्राइजोम का स्वरूप धारण करते है।

यह पतले, गोल और चार सेंटीमीटर के व्यास के होते हैं। इसके मूल का व्यास एक सेंटीमीटर का होता है। प्रारम्भिक प्रधान मूल से ३ या ४ वायवीय काड निकलते हैं। यही कालान्तर मे मूल का रूपान्तर प्राप्त करते है। ताजी कटुकी का मूल श्वेत, मासल और गन्धहीन होता है। व्यापारिक कटुकी मे इसकी पतली शाखाये होती है जिनको छोटे-छोटे टुकडी मे जो १० से २० सेंटीमीटर लम्बे १ से ३ व्यास के होते है काट करके वनाते है। वाहरी स्तर पीले भूरे वर्ण का होता है। मूल से काण्ड बडे और कुछ स्थूल होते है। इन पर पत्रो के आवरण के अवशिष्ट चिह्न वृत्ताकार बने रहते है। सुखाने पर यह झुर्रीदार हो जाते हैं। पूर्ण रूप से सुखाने पर यह भंगुर तैयार हो जाता है। किन्तु बाद मे वातावरण की आर्द्रता पाकर यह कुछ दृढ-सा हो जाता है। उस समय इसका स्वाद मधुर और सुगध अच्छी आ जाती है। पश्चात् इसका स्वाद तिक्त हो जाता है।

सूक्ष्म परीक्षण : इसके काड की चौडाई मे छेदन करके देखे तो ज्ञात होगा कि नारगी वर्ण का भूरा त्वक् दिखाई पड़ता है। नीचे के भाग मे छिद्र दिखाई पडते है। इसके बाद का भाग निःसार होता है। केवल बीच मे मूल का सारभाग मिलता है। ध्यानपूर्वक देखने पर इसमे ४ से ६ पक्तिया पतले स्तर से कार्क सेल के दिखाई देते है। जिन के बीच-बीच काड का कैम्बीयम मोटा दिखाई पडता है। तैल ग्रन्थिया और सूक्ष्म कैलसियम आक्जलेट के सूच्याकार सेल दिखाई पडते हैं। इसमे कोमल फ्लोयम के भाग भी दिखाई पड़ते हैं।

सगठन : इसमे तिक्त पदार्थ बिटर ग्लुकोसाइड, शर्करा, एक पीला कणदार, अम्लजेंगियनिक एसिड, स्निग्ध-द्रव्य, पेक्टिन, कैलशियम आक्जलेट और कुछ स्टार्च का भाग होता है।

टारनेट के मत से १९०५ ताजी कुटकी मे दानेदार ग्लूकोसाइड जिन्हे जेशियोपेक्रिन, जेशियन, एमारफस ग्लूकोसाइड और जेशियामेरिन मिलता है। ब्रिन्डेल १९२० के अनुसार शुष्क करने और फरमेट करने पर इसमे का जेगियोपेक्रिन अदृश्य हो जाता है। इनका मत है कि सुखाते समय हेक्सात्रियोज, जेशियोनोज और सुक्रोज कम या अदृश्य हो जाते है। इसके सूखने पर शर्करा जातीय द्रव्य रहते है :

अतः जब कटुकी को एकत्र करके आसुत करते है इसमे का शर्करीय भाग अलकोहल व कार्बनडाइक्साइड मे बदल जाता है। सावधानी से तैयार करने पर कटुकी से ४० प्रतिशत जल का घुलनशील तत्त्व मिलते है। किन्तु अधिक फरमेट होने पर ये तत्त्व कम हो जाते है।

अन्य जातियॉ : कटुकी के जाति के और भी कई पौधे पाये जाते है। यथा :

१ : जेशियन परप्यूरिया। जे० पेनोनिका। जे० पैंकटाटा। इनमे भी वही तत्त्व पाये जाते हैं किन्तु कम और देखने मे इनका आकार पतला होता है। भारतीय कटुकी जेनशियाना कुर्रो पिक्रोहिजाकुर्रो की कटुकी के बदले लेते हैं।

मिश्रण : यद्यपि यह सब जातिया पृथक्-पृथक् होती हैं फिर भी असावधानी से इनका मिश्रण हो जाना सम्भव है। इसमे रुमेक्स अल्पाइनस का मिश्रण सम्भव है। क्योकि यह स्वाद लेने मे ऐसा ही तिक्त होता है। कभी-कभी वेराट्रम अल्वम का मूल जो एक खतरनाक द्रव्य है इसका मूल मिला दिया जाता है। इसे सरलता से पहचाना जा सकता है।

कटुकी Gentiana Lutea.

कटुकी : कुटकी या कटूवी ।
गण, चरक : भेदनीय, लेखनीय, स्तन्य शोधन, तिक्तस्कध ।
सुश्रुत : पटोलादि, पिप्पल्यादि, मुस्तकादि ।
प्रा० गण : तिक्ताकुल स्क्रोफुलेरियेसी ।

आकृति विज्ञान : कटुकी का काड परिवर्तित होकर मूल के रूप मे बाजार मे आता है। इसे कटुकी का मूल कहते है। इसका आकार वर्तुल नलिकाकार धूसर वर्ण का होता है। यह कुछ कठिन व भंगुर होता है। इसका काड मूल से निकल कर कुछ दूर भूमि मे समानान्तर चल कर फिर ऊपर को उठता है। इसके काड पर ही पत्र निकलते है जो काड को आवेष्ठित करके रहते हैं। इसके अवशेष काड पर दिखाई पडते है। इस पर कई पत्र चिह्न दिखाई पड़ते है। पत्र कोण से या अक्षि भाग से पुष्पदण्ड निकलता है। काड के साथ इसके अवशेष भी पाये जाते है। ऊपर से स्पर्श मे यह रूक्ष होती है इसका वर्ण पीत, भूरे रग का होता है। किसी-किसी मे यह कृष्णता लिये भी दिखाई पड़ता है। इसमे एक प्रकार की सुगन्ध भी पाई जाती है।



चित्र ५९

व्यतस्त च्छेद : च्छेद देने पर बाहर से भीतर की तरफ निम्न भाग दिखाई पडते है :

१ . बाह्य त्वक् . यह श्याव धूसर वर्ण का १ मिली मी० मोटा होता है।

२ : आभ्यतर त्वक् : गहरे भूरे वर्ण का २ से ४ मि० मी० होता है।

३ : काष्ठ भाग : यह श्वेत वर्ण का होता है इसमे श्याव वर्ण की पॉच रेखाये दिखाई पडती है जो चौडाई मे साइकिल के तीली की तरह होती है।

४ : आभ्यतर भाग . मज्जा का भाग जो बीच मे होता है गहरे भूरे वर्ण का श्यावाभ दिखाई देता है।

अनुलम्ब भाग : इसमे भी वही अश दिखाई पडते है परन्तु उनका रुख भिन्न होता है यथा : बाह्य त्वक् , अभ्यतर त्वक् , काष्ठ भाग, मज्जा भाग ।

द्रव्य परिमाण :

वर्ण परिज्ञान : प्राकृतिक वर्ण : धूसर, श्याव वर्ण। कपे व भंगे :—कृष्ण। चूर्ण, श्यावाभ। क्वाथ व तैल मे रक्त वर्ण। घृत मे पीत। ज्वाला मे रक्त।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईषद्विलेय।

रस परीक्षा : अति तिक्त।

गन्ध : मृदु सुगंध।

स्पर्श परीक्षा : लघु, कठिन, खर, रुक्ष।

शब्द परीक्षा : भग्न काल के कुट शब्द। भगुर।

वर्ग निर्णय : अति तिक्त होने से तैजस द्रव्य है।

कर्चूर वनाम गधपलासी (Curcuma Zedoaria)

नाम : कुरकुमा जेडोरा।

वर्ग : आर्द्रकादि (Scetaminaceae)

भावप्रकाश—कर्पूरादि वर्ग।

आकृति विज्ञान : यह आर्द्रक जातीय कर्चूर भूमिगत कन्द होता है। जो वाजारो मे कटे हुए सूखे टुकडो के रूप मे मिलता है। यह देखने मे गोल व चिपटे होते हैं। इसका ऊपरी भाग कुछ खुरदरा होता है। यह खुरदरापन अनियमित गर्त व धारियो के कारण होता है। कही-कही ऊपरी त्वचा के सिकुड जाने से झुरिया दृष्टिगोचर होती है। कही-कही त्वचा हटी हुई दिखाई पड़ती हे। इसके ऊपरी सतह पर उपमूल के चिह्न भी दिखाई पडते हैं। इसके ऊपर की त्वचा धूसर वर्ण की होती है। कई स्थानो पर त्वचा के हट जाने से नीचे का भाग स्पष्ट दिखाई पडता है।

इसका कटा हुआ भाग समतल है। दोनो पृष्ठ समतल है कही पर एक पृष्ठ उठा हुआ है।

अनुप्रस्थ च्छेद : चौडाई मे काटने पर इसमे ३ भाग दिखाई पडते है।

१ : वाह्य त्वक् वहुत पतला छिल्का की तरह है। इसका वर्ण धूसर है।

२ . आभ्यतर भाग . पतली त्वचा के नीचे अधिक विस्तृत व मासल भाग हे। इसका भी वर्ण धूसर-सा है।

३ मध्य भाग यह वीच का कठिन भाग है। इनका भी वर्ण धूसर-सा ही है। यह अधिक भाग पर व्याप्त है। यह उपर्युक्त भागो से कठिन भाग है। आर्द्र कन्द मे यह भाग कुछ मृदु होता है।

परिमाण :

वर्ण : प्राकृत वर्ण पीताभ धूसर। कपे : श्वेत धूसर। भगे : धूसर पीत। चूर्णे धूसर। क्राथे : पीताभ। तैले . पीताभ। घृते : पीत। ज्वाला : रक्त पीत।

विलेयता : यह वारि, तैल व घृत मे विलेय है।

रस : प्रधान रस तिक्त। अनुरस : कटु।

गन्ध : शुष्क : सुगन्ध, मृदु, हृद्य। आर्द्र सुगन्ध। धूपन : मृदु सुगन्ध।

स्पर्श : कठिन, खर, रूक्ष, गुरू।

शब्द : भग्नकालीन चट।

गण विनिश्चय : प्रायशः तिक्त, कटु रसत्वात आग्नेय वर्ग।

जटामांसी नारडोसटेचीज जटामांसी (Nordostachys|Jatamansı.)

नाम : जटामासी, भूतजटा, भूतकेशी।

वर्ग : तगरादि वर्ग। (Valerıanaceae)

चरक : सज्ञास्थापन।

आकृति विज्ञान : जटामासी का बाजार मे मिलने वाला द्रव्य जटामासी के काड का परिवर्तित मूल है। यह लम्बा शिफाकृति, धूसर वर्ण एवं रोमावृत्त होता है। आभ्यन्तर रचना मे यह सुषिर नलिकाकार प्रतीत होता है। यह वर्ण मे ईषत्पाडु वर्ण का होता है। इस पर थोडी-थोडी दूर पर चक्राकार आवर्त दिखाई पडते है। जो पत्रवृन्तावरण के चिह्नावशेष के प्रतिरूप है। इस प्रकार इसमे छोटे-छोटे पर्व बनते गये है। पत्रवृन्तविशेष लगे रहने से यह स्थूल होता जाता है। जैसे-जैसे यह आगे-आगे बढता जाता है आगे को पतला बनता जाता है। इसके चारो तरफ घने रोमावरण लगे होते है। ये लोम घने मोटे केश के आकार के होते है इस कारण भूतकेशी या जटामासी कहते है। रोम मृदु, रुक्ष व बहु संख्या मे है।

यांत्रिक परीक्षा : काड पर से लोमाकृति रचना को पृथक् करने पर उसका काड मिलता है जो कि क्रमशः प्रारभ से आगे को पतला है। ऊपर काड पर पत्रावशेष के चिह्न है। व्यतस्त च्छेद लेने पर ऊपर पीला आवरण मिलता है उसके बाद कुछ मज्ज भाग होता है। आगे को सुषिरता रहती है। इसका प्राकृत वर्ण पीत धूम्राभ है। भग्न करने पर पीताभ दिखाई पडता है।

परिमाण : भार ७ गुञ्जा, दैर्घ्य ढाई इच, परिणाह एक इंच।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृत वर्ण बाहर से धूसर वर्ण। अन्त धूसर व पिंगल।

कषे : घूसर। भग्ने : अरुणाभ। चूर्ण . श्यामपीत। क्वाथे : ईषत् श्याव रक्ताभ। तैले · श्याववर्ण। घृते : ईषत् श्याव वर्ण। ज्वाला-पीता।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईषत् विलेय।

गन्ध परीक्षा : शुष्क : मृदु गन्ध, सुगन्ध हृद्य। धूपन मे : मृदु सुगन्ध व हृद्य।

रस परीक्षा : तिक्त।

स्पर्श परीक्षा : रुक्ष, लघु, खर।

शब्द परीक्षा : अभगुर। ज्वलनकालीन : अतिमद चरचराहट।

गण विनिश्चय : तिक्त रस प्रधान होने मे यह द्रव्य तैजस वर्ग का है।

हिरण्तुत्थ या सुरंजान।

कोलचिकम् ल्यूटियम् (Colchicum Luteum)

नाम : सुरजान।

वर्ग : सेवती वर्ग। (Libiaceae)

परिचय : यह एक प्रकार का कंद है जो पलाडु की तरह होता है। इसके तीन भेद होते हैं। श्वेत, पीत व कृष्ण।

श्वेत सुरजान स्वाद मे मधुर और शृङ्गाटक की तरह होता है। अत. इसे मधुर सुरजन या सुरजान शीरी कहते हैं। पीत सुरंजान कुछ आकार मे छोटा तिक्त स्वादयुक्त होता है। इसे सुरजाने तल्ख़ कहते है। कृष्ण सुरजान आकार मे पूर्ववत् किन्तु वर्ण मे काला होता है। यह विषाक्त होता है। हकीम लोग मधुर सुरजान को ही भीतर प्रयोग के लिए लेते है। कटु का प्रयोग बाह्य ही होता है। अधिक लोग कटु का ही भीतरी प्रयोग करते हैं क्योकि यह अधिक गुणकारी होता है।

प्रयोगार्ह : प्रयोग मे इसका प्राचीन कद ही लाभप्रद होता है। एक वर्षीय कद अधिक लाभप्रद नही होता।

स्थान : काश्मीर, पजाब, अफानिस्तान, पश्चिमोत्तर प्रदेश व हिमालय के शीत प्रदेश मे भारतीय सुरजान होता है। मीठा सुरजान ईरान से आता है। मध्य व दक्षिणी यूरोप, आयरलैंड, इटली व मिश्र मे इसकी दूसरी जाति पाई जाती है। इसे कोलचिकम आर्मनेल (Colchicum Armnel) कहते है। कोल्चिकम ल्यूटियम भारतीय या देशी सुरंजान है।

क्रियात्मक शिक्षायें : सुरजान का कद कठिन आवरण युक्त होता है। इसे ग्रीष्म ऋतु मे संग्रह किया जाता है। इसके छोटे कद का आकार सिंघाड़े की

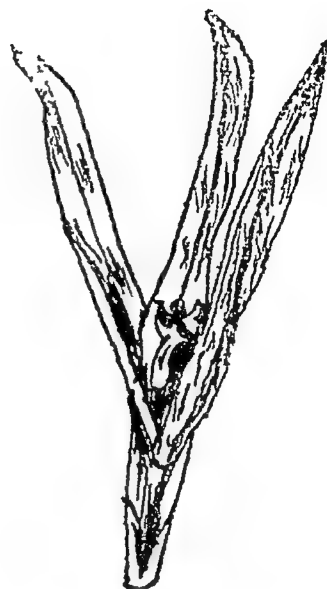
तरह अर्ध वृत्ताकार होता है। बड़ा कंद अर्ध वृत्ताकार होता है। इसके ऊपर भूरे रंग के पतले आवरण आवरित किये रहते है। यह मूल मे मोटा और ऊपर



चित्र ६० कंद



चित्र ६१ पुष्पदंड



चित्र ६२ पत्र व पुष्प

को पतला होता जाता है। अधो भाग मे चौडा और नीचे मूल की सूक्ष्म जडे होती है। पुष्प दड इसके बीच से निकलता है।

क्रियात्मक शिक्षायें।

१ : सुरोजान के एक कंद की आकृति खीच कर उसके ऊपर की पतली स्तरो के आवरण व पुष्प दड का अध्ययन कीजिये।

२ : भूरे रग के वाह्य आवरण को हटाइये और लंवाकृति मे एक च्छेद लीजिए।

३ : नवीन व प्राचीन कंदो को आमने-सामने रख कर तुलना करिए।

४ . चौडाई मे एक च्छेद लेकर इसमे उपत्वक् अन्य त्वगावरण सौत्रिक मडल उभार का प्रदर्शन करिये।

सुरंजान कोल्चिकम (Colchicum)

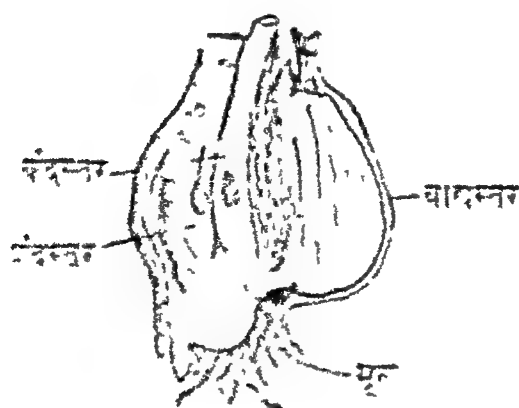
नाम : सुरंजान, हिरण्य तुत्थ।

वर्ग : सेवती वर्ग।

विवरण : बाजारो मे सुरंजान का शुष्क कटा हुआ कद का टुकडा मिलता

[illegible] । [illegible] आकार में वृत्ताकार होता है। इसके स्तर ऊपर की तरफ उन्नतोदर [illegible] वर्ण का आवरणरहित स्निग्ध होता है। बाह्य स्तर पर आवरण का कुछ अंश शेष रहता है। जो भूरे वर्ण होता है। ऊपर से यह रक्त-पीत वर्ण का [illegible] व [illegible] दिखाई पड़ता है। भीतर ईषत् श्वेत पीत वर्ण के अर्ध वृत्ताकार स्तर में [illegible] मिलते हैं। नीचे मूल में जड़ो के निकलने के चिह्न अवशिष्ट [illegible]। जो कुछ दबे हुए [illegible] वर्ण के हैं। सबसे ऊपर का स्तर स्थूल और [illegible] नीचे पतला होता जाता है। यह श्वेतसार युक्त जान पड़ते हैं।

[illegible] तथा व्यत्यस्तच्छेद : लम्बाई में छेद लेने पर इसमें लम्बाई में [illegible] व्यत्यस्तछेद लेने पर चौड़ाई में [illegible] स्तर दिखाई पड़ते हैं।



चित्र ६३ [illegible]

[illegible] : [illegible] उन्मेध . ३ इंच ।
[illegible] : [illegible] : गुलाबी वर्ण । [illegible] आरक्त धूम्र वर्ण ।
[illegible] : पीतवर्ण ।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

शतावरी।

एसपैरेगस रेसिमोसस (Asparagus Raeemosus)

नाम : शतावरी।

वर्ग : रसोन कुल (Liliaceae)

गण : चरक : वय : स्थापन, वल्य, मधुरस्कध।

सुश्रुत : विदारिगंधादि, कंटक पंचमूल, पित्त प्रशमन।

आकृति विज्ञान : प्रस्तुत परीक्ष्य द्रव्य शतावरी कंद है। यह श्वेत घूसर वर्ण का वल्कल युक्त सीधे लम्वे कनिष्ठिका मूल की तरह मोटे कंद होते है। शुष्क हो जाने पर इसमे ऊपर झुरियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। लम्बाई मे इस पर धारियाँ होती है। इनके नीचे सीताये होती है। ऊपरी भाग पर गेहुए वर्ण के आवरण होते है। नीचे श्वेत वर्ण का मासल भाग रहता है। इसके केन्द्र मे एक श्वेत पीताम सूत्र पाया जाता है। आर्द्रावस्था मे त्वचा, मज्जा और सूत्र तीनो अलग-अलग दिखाई पडते है। इसके वाह्य भाग पर सूक्ष्म उपमूलो का चिह्न दिखाई देता है। आर्द्रावस्था मे इसकी त्वचा सरलता से हटाने पर अलग हो जाती है।

यांत्रिक परीक्षा : अनुलम्व च्छेद लेने पर पहले ऊपर की त्वचा वाद मे मज्जा का भाग और भीतर सूत्र का भाग दिखाई पडता है।

परिमाण भार ५० रत्ती। दैर्घ्य। ३ से ६ इंच तक। व्यास : ·५ इंच।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृत वर्ण : वाहर से धूसर भीतर श्वेत। कषे : श्वेत धूसर। भगे : श्वेत धूसर। चूर्ण : रक्ताभ श्वेत। क्वाथ : रक्ताभ पीत। तैल व घृत : रक्ताभ ईषत्पीत। ज्वाला : पीत।

विलेयता : वारि-तैल व घृत मे अविलेय।

गंध : आर्द्र सुगध। धूपन : किंचित दुर्गन्ध।

रस परीक्षा : प्रधान मधुर, अनुरस तिक्त।

स्पर्श परीक्षा, शुष्क, कठिन, रूक्ष, लघु।

आर्द्र : मृदु, रूक्ष, शीत, स्निग्ध, पिच्छिल व गुरु।

शब्द परीक्षा : शुष्क भगुर, आर्द्र अभगुर।

गण विनिश्चय : मधुररसप्रधान होने से यह पार्थिव गण का होता है।

वत्सनाभ

एकोनाइटम् ट्यूबर (Aconitum Tuber)

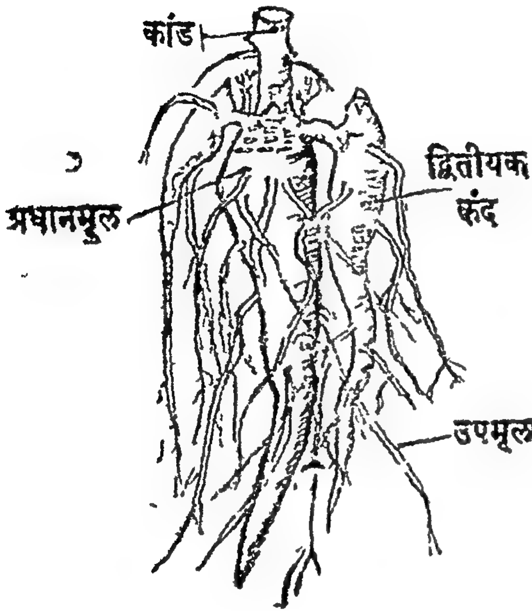
नाम : वत्सनाभ, विष, अमृत।

स्थान : औषधि मे प्रयुक्त होनेवाला वत्सनाभ, वत्सनाभ के सूखे हुये मूल को संग्रह कर बाजार मे विक्रयार्थ भेजते है। इसकी खेती भी की जाती है और यह जंगलों मे भी पाया जाता है। भारतवर्ष, जर्मनी, हंगरी, स्वीट्जरलैंड मे यह जंगलो से इकट्ठा किया जाता है। किन्तु इगलिश वत्सनाभ खेती करके ही अधिक संग्रहीत होता है। भारतवर्ष मे यह कुमायू, अलमोडा व देवबंद की ऊँची शिखरो पर पाया जाता है।

द्रव्य का परिचय : इसकी ६० जातियाँ पाई जाती है। इनमे एकोनाइटम नैपेलस की खेती इङ्गलैंड की वाटिकाओ मे होती है। यह बहुवार्षिक पौधे है। एक जड़ से कई तत्सम कई छोटी-छोटी पुत्रिकाये जिन्हे डाटर रूट कहते है, निकलती है। इन्हे पृथक लगा देने पर पुनः वैसा ही पौधा तैयार हो जाता है। जंगली जातियो मे अधिक वर्ष तक रह जाने मे कंद से छोटे-छोटे कई कद निकलते हैं। पुनः नये पौधे निकल कर बडे कंद देते है। इनके खोदने का समय वसत ऋतु तक ही है। इसके कांड ४० से ४५ से० मीटर ऊंचे होते है। रोपित वत्सनाभ ३ से ४ फीट तक ऊंचा होता है। प्रारम्भ मे ही पौधो से हरी पत्तियाँ निकलती हैं। यह बड़ी, चौड़ी और करतलाकार होती है। प्रत्येक मे कई खण्ड होते है। प्रारम्भ मे ५ से ७ खण्ड और ऊपर जाकर पत्तियाँ ३ या ४ खण्डों मे विभाजित रहती हैं। नीचे के पत्र हरे रहते हैं बाद मे ये पीले रग के हो जाते है। कांड के ऊपर मंजरी लगती है। इसमे पुष्प लाल और बैजनी रंग के (भोलेटाइल) ब्ल्यू रंग के लगते है। यह एक सप्ताह से १५ दिन मे मुर्झा जाते है और उनके स्थान मे शिम्बी लग जाती है।

इतिहास : भारतीय चिकित्सको ने औषधि की तरह उपयोग, ईस्वी सन् से १००० वर्ष पूर्व ही इनका उपयोग किया था। भारतीय चिकित्सक इसे अच्छी तरह जानते थे। इसके देने के बाद विष के आठ वेगो का अध्ययन किया था। आधुनिक चिकित्सक इसे मध्ययुग मे जान पाये और १८ वी शताब्दी मे इसका ज्ञान प्राप्त कर पाये। चिकित्सा मे प्रथमबार १७६२ मे स्टोर्क ने वियना मे प्रथमबार प्रयोग किया था। किन्तु इससे बहुत पूर्व भारतीय जंगली जातियाँ भी इससे पूर्ण परिचित थी वे इसे विष की तरह अपने तीरो मे लगाती और जानवरो का शिकार करती थी।

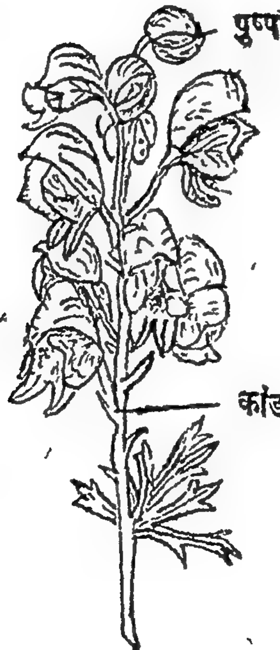
संग्रह : भारतवर्ष मे पर्वतीय जंगलो की शिखरों से वत्सनाभ व शृङ्गीक के पौधे मिलते थे। व्यापारी उन्हे सग्रह करके बाजार मे भेजते थे। भारतीय



चित्र ६४



चित्र ६५



चित्र ६६

भूमि मे जंगल अधिक होने से पर्याप्त मात्रा मे इसकी प्राप्ति होती थी। आज भी यही क्रम है। भारत मे खेती बहुत कम होती है और अधिकाश भाग जगलो से

प्राप्त हो रहा है। इंगलिश व्यापारियो ने इसकी जाति उन्नत करने के लिये अब रोपण करना प्रारम्भ किया है। होम के कथनानुसार १९२२ मे इसकी खेती करने की तरफ ध्यान प्रथमबार गया था। १८९८ मे बृटिश फार्माकोपिया मे आने का इतिहास मिलता है और इसका संग्रह पतझड मे करने का निर्देश हुआ था। बोने के लिए छोटी-छोटी पुत्रिकायें बीज के रूप मे प्रयुक्त होती हैं।

मिश्रण : भारतीय : कई प्रकार के कंद बाजार मे मिलते है। कर्नल चोपडा के अनुसार एकोनाइटम डाइनोरेजम व एको० स्पिकेटम व एको० लैसिनिएटम के कंद वत्सनाभ के कद के साथ मिले हुए बाजार मे मिलते है। इनमे नये मूल लगे होते है जो १५ सेटीमीटर से लम्बे और ४ से० मी० व्यास के होते है। यह गहरे भूरे रग के व झुर्रीदार होते हैं। यह स्पर्श मे कठिन व श्रृङ्गवत् होते है।

यूरोपियन वत्सनाभ : सन् १९२४ के नमूनो मे एकोनाइटम कैमेरम, एकोनाइटम वेरिगेटम, एकोनाइटम पेनिकुलेटम की तीनो जातियो के पुष्प बैंजनी रंग के और जड़े एकोना० नैपेलस से मिलती-जुलती होती है। कैमेरम व वेरिगेटम मे प्रधान कद व निकलने वाले कंद की लम्बाई छोटी होती है और वह प्रधान कंद मे चिडिया के शिर की तरह सटी रहती है।

एकोनाइटम स्टोरकिएनम आल्पस पर्वत मे मिलता है। इसमे ३ या ४ जडें होती है। एको० लाइकोकटोन व एको० एंथस पीत पुष्प के होते है। कद मिलते-जुलते होते है।

जापानी वत्सनाभ ' यूरोपीय बाजार मे जो जापानी वत्सनाभ आता है, वह एको० स्पिकेटम की जाति का होता है। इसकी जड़े छोटी होती है। रग डार्क ग्रे ब्राउनिश होता है। लम्बाई मे झुर्रियाँ होती है। पुराने कद पर झुर्रियाँ अधिक होती है। नया कद लम्बाई मे चिकना होता है। तोडने पर कड़ा, श्वेत वर्ण श्रृङ्गवत कडा होता है।

सोवियेट वत्सनाभ : १९३९ मे सबसे पहले व्यापार मे रूसी वत्सनाभ बाजार मे आया था। इसके कद कोणीय व तीन-चार कद सम्मिलित रूप मे अन्दर के कंद की तरह मिले थे। यह ३ से० मी० लम्बे व डेढ से० मी० चौडे थे। इनमे अल्कलाइड की मात्रा १ ४१ से १·५८ प्रतिशत था। हगेरियन वत्सनाभ के टिंकचर मे अधिक क्रियात्मक शक्ति थी।

प्रयोग : ज्वरघ्न के रूप मे भीतर और वेदनाशामक के रूपमे बाहर वातव्याधि और आमवात मे इस[illegible]ोता है।

आयुर्वेद मे इसका कितना प्रयोग हुआ है, यह पृथक् से अवलोकन करिए। वास्तव मे सहिताकाल से अधिक प्रयोग रसचिकित्सा के समय किया गया है।

वत्सनाभ : एकोनाइटी ट्यूबर (Aconiti tuber)।

नाम : वत्सनाभ, वच्छनाग, विष।

वर्ग : चरक व सुश्रुत . स्थावर विष।

प्राकृ० वर्ग : वत्सनाभादि : रेनन कुलेसी (Ranun culaceae)।

आकृति विज्ञान : यह पर्वतीय देश मे पाया जाने वाला एक क्षुप का कद होता है। जो ऊपर से झुर्रीदार सिकुडन सहित काले वर्ण का होता है। ऊपर से मोटा और नीचे क्रमश: पतला होता जाता है। इसके गात्र पर छोटी-छोटी उपमूलो का अश या चिह्न दिखलाई पडता है। कभी-कभी प्रधान मूल से दूसरी मूले भी लगी हुई मिलती है। बाजार मे मिलने वाला वत्सनाभ सूखे कंद के रूप मे काले रग के मिलते हैं जो कि रंगे हुए होते है। यह दो प्रकार का होता है परन्तु बाजार मे काला ही मिलता है और वैद्यगण भी इसे ही पसन्द करते है। ऊपर का रग भूरा काला होता है, इसके नीचे का भाग श्वेत पीताभ होता है। त्वचा बहुत पतली होती है। नीचे कंद का त्वक भाग कुछ मोटा रहता है। चक्राकार बनावट इसके इस अश को पृथक करती है। नीचे कठिन रचना का पिष्ठमय स्टार्च का भाग होता है। श्वेत वत्सनाभ मे त्वचा श्वेत ईतषपीत होती है और नीचे श्वेत वर्ण का भाग होता है।

छेद : चौडाई मे छेद लेने पर ऊपर पतली त्वचा और नीचे उसका मोटा भाग होता है। इसके पश्चात् कद का मुख्य भाग होता है।

लम्बच्छेद : इसमे भी वही रचना होती है।

विलेयता : यह पानी मे अधिक व तेल, घृत मे अघुलनशील होता है।

वर्ण : ऊपर का प्राकृतिक वर्ण भूरा काला होता है। कषे भगे यह श्वेत पीताभ, चूर्ण धूसर होता है। क्वाथ श्वेताभ। घृत-तेल : पीत। ज्वाला : रक्ताभ।

रस : इसमे व्यक्त रस शीघ्र नही ज्ञात होता। जिह्वा पर रखने पर यह चिमचिमायन करता है और बाद मे शून्यता आ जाती है। अतः इसे कटु व मधुर रस वाला मानते है।

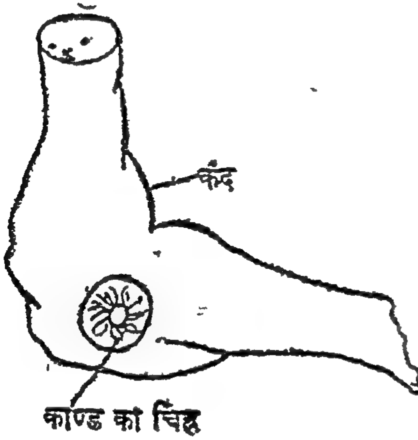
गन्ध : सामान्य मृदु। धूपन में ग्लानिकर गंध।

स्पर्श : कठिन, खर, रूक्ष, गुरु होता है। भग मे मसृण शृङ्गाभ कठिन।

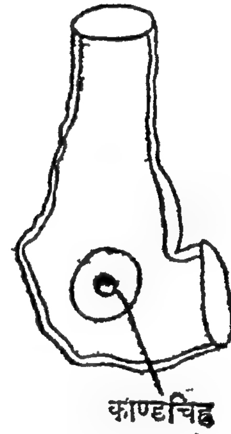
वर्ग : प्रायश कटु व अनुरस मधुर रहने से यह तैजस वर्ग मे आता है।

लांगली : ग्लोरिओसा सुपर्बा (Gloriosa superba)।
प्रा : रसोनकुल (Laliaceae)।
आकृति विज्ञान : गण—उपविष।

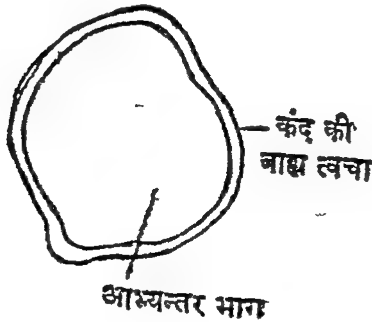
कन्द : यह कन्दजातीय द्रव्य है। शुष्क अथवा आर्द्र दोनो अवस्थाओ में देखने पर यह द्रव्य स्निग्ध और आप्यायनपूर्ण दिखाई देता है। शुष्कावस्था मे यह सिकुड़ जाता है। इस पर विषम सलवटें बनी रहती हैं। स्थानविशेष मे गड़े रहने से वहाँ की मृत्तिका के सघात से नाना प्रकार की आकृति हो जाती है। बाह्य त्वचा अत्यन्त मृदु होने से स्वल्प नखक्षत से दूर हो जाती है। इस मृदाभ



चित्र ६७



चित्र ६८



चित्र ६९

अवदात धूम वर्ण की त्वचा पर कपिश वर्ण की सलवेट पडी रहती है। मध्य भाग धूसर वर्ण वाला श्लक्ष्ण संघातमात्र है। यह सरलता से चूर्णित हो जाता

है। इसका चूर्ण भी मंदुश्लक्ष्ण होता है इसमे लगे हुए अन्य उपमूलो के चिह्न भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। वड़े कन्द के साथ एक छोटा-सा उभार भी लगा रहता है।

छेदन के बाद : वाह्य त्वचा के स्तर की अति सूक्ष्म झिल्ली के बाद मध्य से विन्दुओ के संयुक्त भाग दिखाई देता है प्ररोहाकुर उभार के चारो तरफ विषम जाली-सी बनी त्वचा विपम उच्चावच स्थिति मे निम्न भाग कपिश, ऊर्द्ध भाग धूसर दिखाई देता है। विना काटे हुए भाग मे रेखाये स्पष्ट होती हैं।

वर्ण : प्राकृत धूसर व कपिश होता है।

कपे–धूसर : भंगे धूसर : क्वाथ : धूसर।

चूर्ण : पाण्डु मलिन।

तेल : पीताभ

घृत : धूसर।

विलेयता : जल, तेल व घृत मे ईषत् विलेय।

गन्ध : शुष्क : मन्द गंध।

आर्द्र : अम्ल गन्ध।

रस : कपायाधिक व कटु।

शब्द : भगुर : भग्नकालीन : कटु।

प्रायस : कपाय व कटु होने से वाय्वाग्नेय ज्ञात होता है।

पुष्करमूल (Inula Racemosa)

वर्ग : भृङ्गराजादि (Cempozitae)।

गण—चरक—श्वासहर—हिक्का निग्रहण।

आकृति विज्ञान : यह पुष्करमूल नामक प्रसिद्ध वनौषधि "इनूला रेसिमोसा" नामक पौधे की जड का अंग है। यह पाण्डु एवं कपिश वर्ण की त्वग् युक्त मूल है। यह स्पर्श मे रूक्ष, स्थूल, कठिन तथा सुगधयुक्त मूल है। सूखने के बाद ऊपर त्वचा पर सलवटे पडी हुई दिखाई पडती है। किसी-किसी टुकडे मे यह ऊपर से नीचे उतरती हुई दिखाई पडती है तथा इनकी मध्यवर्ती परिखा भी सिकुडन से वनी हुई साफ दिखाई पडती है। यह अधोगामी तथा क्रमशः ऊपर मोटा नीचे पतला होती गयी है। प्रधान मूल पर अन्य मूल प्ररोहो के चिन्ह भी दिखाई पडते है। कही पर मूल का परिसरीय भाग तनु और अधोभाग स्थूल होता गया है। कही पर ततु भी निकले हुए दिखाई पडते है। आर्द्रावस्था मे यह फूलकर पूर्वापेक्षा स्थूल दिखाई देता है। त्वचा के सलवटो मे अति न्यूनता

दृष्टिगोचर होती है। ऊपर त्वचा का भाग उससे नीचे कठिन काष्ट भाग है। यह सच्छिद्र तथा आभ्यन्तर श्वेत धूम्र वर्ण का मध्यतः धूम्र वर्ण का है। किसी-किसी टुकड़े का मध्यभाग पाण्डु वर्ण का है। इसमे की छिद्र-रचना वर्तुलाकृति होती है। इन छिद्रो मे टेढी-मेढी रेखाओ द्वारा परस्पर संबंध स्पष्ट होता है। मध्य विन्दु से परिधि की तरफ रेखाये प्रसरित है तथा कही-कही पर छिद्र भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होते है। आर्द्रावस्था मे शिराओ के छिद्र दिखाई पडते है।

यांत्रिक रचना : व्यत्यस्त च्छेद लेने पर प्रथम ऊपर की त्वचा का भाग पश्चात् मध्य भाग दिखाई पड़ता है। त्वचा मोटी धूसर वर्ण की, रचना चक्राकार होती है। मध्य भाग से रेडियेशन बाहर की तरफ दिखाई पडता है।

वर्ण : प्राकृत : धूसर : कषे : श्वेत धूम्राभ।

भंगे : धूम्र पाण्डुर।

चूर्ण : मलिन श्वेत।

क्वाथ : रक्तपीत : तैल व घृत : रक्तपीत कृष्णवर्ण।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईषत्।

गंध : शुष्क ऊग्रगध।

रस : प्रायशः तिक्त व कटु कषाय।

स्पर्श : कठिन, रूक्ष, कर्कश, लघु।

शब्द : अभंगुर—भग्नकालीन : कट।

गण विनिश्चय : प्रायश: तिक्त, कटु व ईषत् कषाय होने से यह आग्नेय द्रव्य है।

उशीर परीक्षा (Veteveria Zzianioidis)

प्रा०—वर्ग—यवकुल (Graminae)

परिचय : यह गोधूम वर्ग की वेरिया जायजेनियोडिस नामक उशीर के क्षुप से प्राप्त होने वाली मूलजाति की औषधि है। यह पतली-पतली दीर्घ सूत्रवत् मूल होती है। यह बाहर से पतली त्वचा द्वारा आवरित होती है। यह त्वचा पीले वर्ण की कुछ शिथिलता से भीतरी सीसक पर चढी होती है। वर्ण मे श्याव, पाण्डु व बादामी वर्ण की दिखाई पडती है। ये सूत्र क्षुप के मूल से निकले होते है। प्रधान मूल मोटी गाठदार और कई काण्डावरणो से आवरित होती है। आवरण हटा देने पर यह श्वेत, कठिन, स्थूल दिखाई पडता है। मूल त्वचा के हटाने पर भीतर पतला-सा ईषत् पीत वर्ण का सूत्रवत भाग रहता है इसमे एक

प्रकार की सुगंध पाई जाती है। यह टेढा-मेढा अधोगामी होता है। इस पर यत्र-तत्र सूक्ष्म सूत्र भी लगे पाये जाते हैं।

यांत्रिक परीक्षा : व्यत्यस्त च्छेद लेने पर सबसे ऊपर पीले वर्ण का आवरण दिखाई पडता है। यह बाहर से पीत वर्ण का रूक्ष, भीतर से मसृण, ईषत् श्वेत वर्ण का होता है। ऊपर का भाग तनुकला से आवरित होता है। त्वचा मे सूक्ष्म दानेदार भाग दिखाई देता है। सभवतः यह त्वगीय शिरामुख प्रतीत होते है। इसके नीचे का भाग काष्ठीयसूत्र कृत होता है। इसके भीतर छिद्र होता है।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृत वर्ण पाण्डु, श्याव, ईषत् रक्ताभ बादामी।

कर्पेन : पाण्डु।

भंगेन : ईषत् श्वेत।

चूर्ण : पाण्डु श्याव दाहे : कृष्ण।

क्वाथ : पाण्डु।

तैल : रक्ताभ पाण्डु।

घृत : रक्ताभ पाण्डु। ज्वाला : पीत।

विलेयता : वारि, तैल, घृत मे ईषत् विलेय।

गध : सुगध। पानी मे भिगोने पर विशेष स्पष्ट सुगंधित।

रस : तिक्त।

स्पर्श : रूक्ष, लघु, मृदु, शीत।

शब्द परीक्षा : जलाने पर कदाचित चिट-चिट शब्द।

वर्ग : प्रायश तिक्त होने के कारण तैजस् वर्ग का है।

नोट—उशीर के कई प्रभेद प्राप्त होते है। उशीर मोटे मेल का होता है तथा लामज्जक पतली नल का बहुश सूक्ष्म उपमूलो से आवरित होता है।

२ लामज्जक जल डालने के साथ सुगधी फैलता है किन्तु उशीर अच्छी तरह फूल जाने पर अपनी गध बिखेरता है।

३ : उशीर स्पर्श मे कड़ा, किन्तु लामज्जक स्पर्श-मृदु होता है।

४ : उशीर और लामज्जक भिन्न-भिन्न जाति के पौधे से पाये जाते हैं।

५ : निघन्टुकारो ने अलग-अलग वर्णन किया है।

जलापाहरड़ या जैलप (Ipomoea Radix)

परिचय : जलापा यह एक आइपोमिया परगा नामक लता की कंद से प्राप्त होने वाली औषधीय त्रिवृत वर्ग की औषधि है। यह अमेरिका के मेक्सिको प्रान्त मे पाई जाती है। इसका वर्ग कनभोल्भुलेसी है।

स्थान : यह मेक्सिको और भारतवर्ष दोनो स्थानो मे पाई जाती है।

आकृति विज्ञान : यह पूरे कंद और टुकडो के रूप मे बाजार मे पाई जाती है। पूरे कंद को सामने रख कर के आकृति का प्रदर्शन करे तो ज्ञात होगा कि इसका रग काला भूरा है। ऊपर से झुर्रीदार ऊंचा-नीचा, गोलाकार, बीच मे मोटा दोनो सिरो पर नोकदार हरड की आकृति का एक कंद है। छोटे कद ठीक हरड की आकृति से मिलते-जुलते होते है। बडे कंद का आकार भी बडे हरड़ की आकृति की तरह ही होता है। यह इतना कडा होता है कि इसके च्छेद लेने के लिए ४८ घटे पानी मे भिगोना पडता है। तब इसका सेक्सन लेना सरल होता है।

आकार : यह ३ से १५ सेटीमीटर लम्बा और ३ से आठ से० मी० चौडा होता है। यह नियमित लम्बगोल, पतला दोनो छोर पर नोकदार होता है।



चित्र ७०

सतह : लम्बाई इस पर झुर्रियाँ पडी हुई होती है। चौडाई मे इस पर छोटे-छोटे उभार दिखाई पडते हैं।

वर्ण : गहरा काला भूरा होता है।

च्छेद : चौडाई मे छेद लेने पर इसमे पतला कार्क का भाग, फ्लोयम का छोटे झुण्ड, वृत्ताकार, कैम्बियम सकुचित केन्द्रयुक्त तथा बहुसंख्यक रालजातीय सेल दिखाई पडते हैं।

गंध : मृदु गन्ध से युक्त धूम्रगन्धी होता है।

रस : पहले मधुर पश्चात् तिक्त होता है।

पोपक तत्त्व : शर्करा और स्टार्च का भाग।

विशेषता : असख्य रालजातीय सेल का मिलना और तीसरी कैम्बियम की प्राप्ति।

संगठन : इसमे राल, मैनीटोल, शर्करा, स्टार्च और कैल्सियम आक्सलेट के भाग मिलते है।

अणुवीक्षण रूप : १ : व्यत्यस्त च्छेद भियोये हुये कंद का लीजिए। इन द्रव्यो मे मिश्रित करिए ·

१ : ग्लिसरिन : ग्लिसरिन मे डुबोने पर उसमे आए पीले भूरे सेलो को देखिए। यह क्लोरल हाइड्रेट मे घुल जाते है।

२ : लैक्टो फेनोल : साफ करने के लिए इसके द्रव मे भिगोइए।

३ : फ्लोरोग्लुसिन व लवणाम्ल · उसके सूत्रो को रगने के लिए।

४ : टिंकचर आफ अलकाना : राल को लाल रंगने के लिए।

परीक्षा : अणुवीक्षण यंत्र मे देखिए :

देखकर उसका एक चित्र बनाइए। आकार साथ के दिए चित्र की तरह होगा।

जैलप या जलापी कंद

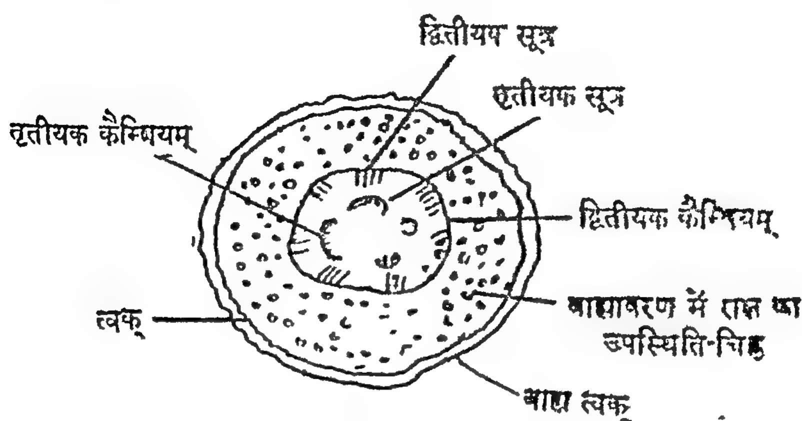
नाम : जलापा, जैलप, जुलाफा हरड। (Ipomaea Purga)

वर्ग : त्रिवृत वर्ग। (Convolvulaceaece)

आकृति विज्ञान : यह एक लता जिसका नाम आइपोमिया परगा है, उसका कद है। यह इस देश मे नही होता। अमेरिका के मेक्सिको प्रान्त मे पाया जाता है। भारतवर्ष के भी पहाडी अन्य प्रातो मे मिलता है। यह बाजार मे पूरे कंद या टुकड़ो मे कटा हुआ मिलता है। यह तीन से १५ से० मी० लम्बा और ३ से ८ से० मी० चौडा और मोटा होता है। आकार मे अनियमित यव के आकार का हरड़ की तरह बीच मे मोटा और किनारो पर पतला नोकदार हो जाता है। इसमे लम्बाई पर झुरिया पडी रहती है। इसका वर्ण गहरा काला व भूरा होता है। यह स्पर्श मे कठिन और खुरदरा होता है। चौड़ाई मे इस पर उभार दिखाई पड़ते है।

छेदन पर : च्छेद लेने पर बाह्य त्वक् पतली मिलती है इसके बाद कठिन जालीदार कार्क का भाग मिलता है। नीचे वृत्ताकार रचना मिलती है जो कि कैम्बियम का भाग होता है। बीच-बीच मे झुन्ड मे वृत्त समूह दिखाई पडता है

और राल का अंश मिलता है वृत्ताकार रचना के बाद कंद का भाग रहता है। लब च्छेद मे भी यही दिखाई पडता है।



चित्र ७१

वर्ण : ऊपर से गहरा भूरा काला। भंगे : भूरा के भूरा। क्वाथ : भूरा लाल। तैल . पीत। घृत मे पीत। चूर्ण : भूरा काला।

विलेयता : वारि व तैल मे किंचित।

रस : कषाय कटु। पहले मधुर फिर तिक्त कटु।

गंध : मृदु गध, धूम्रगंधी।

स्पर्श : स्पर्श मे कठिन, खर, रूक्ष, गुरू।

गण : प्रायश. कटु तिक्त व अनुरस मे कषाय होने से तैजस है।

भद्रमुस्ता का विवरण (Cyperus Rotundes)।

नाम : नागरमुस्ता, भद्रमुस्ता।

गण : चरक : तृप्तिघ्न, तृष्णानिग्रह, लेखनीयगण, कण्डूघ्नगण, स्तन्य शोधनगण।

सुश्रुत : मुस्तादि गण, बचादि गण।

प्राकृ० गण : मुस्तादि साईपेरेसी। (Cyperaceae)

आकृति विज्ञान : यह एक प्रकार का जल मे होने वाला एक क्षुप-जातीय बनौषधि है, जिसकी मूल औषधि मे प्रयुक्त होती है। इसका काड परिवर्तित होकर मूल का रूप धारण करता है। यह लम्बा, नलिकाकार, वर्तुल और लोमश होता है। इसका वर्ण कृष्ण होता है। यह दूर तक मिट्टी के नीचे समानान्तर रूप मे फैला हुआ होता है। यह आकार मे मोटा, ग्रथिल और पर्वो से युक्त होता है। जिनकी संख्या अधिक होती है। कुछ पर्वो के बाद पर्व

पर एक-एक अक्षि निकलती है। वहा से एक काड निकल कर ऊपर की तरफ बढ़ जाता है।

पुनः वह अंश समानान्तर बढता जाता है और इसी प्रकार मूल देता जाता है। काड भी ऊपर निकलते जाते हैं। प्रत्येक पर्व पर चारो तरफ पत्र का आवरण रहता है। यह गलता जाता है और लोमवत आवरण छोड़ता जाता है। प्रधान मूल से अनेको मूले निकलती हैं। उनका अवशिष्ट भाग प्रधान मूल पर दिखाई पड़ता है।

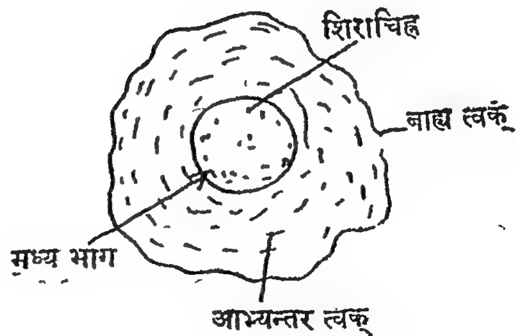
शुष्कावस्था मे यह रूक्ष वृत्ताकार चिन्हो से युक्त स्पर्श कठिन होता जाता है। जहा से अक्षि निकलती है वहा पर ग्रंथिल उत्सेधयुक्त ऊचा उठा हुआ होता है। पत्रावशिष्ट भाग सरलता से नाखून से हटाया जा सकता है।



चित्र ७२



चित्र ७३



चित्र ७४

व्यत्यस्त च्छेद : व्यत्यस्त च्छेद लेने पर इसमे तीन भाग दिखाई देते है।

१ : बाह्य त्वक् : यह कृष्णवर्ण की पतली व रोमश होती है।

२ · आभ्यतर त्वक् : यह भूरे वर्ण की लगभग दो मिलीमीटर मोटी पिष्ट-मय सौत्रिक रचना होती है।

३ · मध्य का काष्ठीय भाग : यह बीच मे होता हे। इसमे स्रोतसो के मुख दिखाई पडते है। सूत्र श्वेत वर्ण के व काष्ठीय भाग धूसर वर्ण का होता है।

अनुलम्ब काट : इसमे भी यही तीन रचनाये होती है। यथा :

१ · कृष्ण वर्ण की रोमश रचना।

२ · आभ्यतर त्वक् : कपिल वर्ण की होती है।

३ : काष्ठ भाग · बीच का धूसर भाग जो सौत्रिव रचना वाला होता है। इसमे सूत्र दिखाई पडते हैं।

परिमाण : द्रव्य का परिमाणभार मे २२ ग्रेन, आयाम १ ६ इंच, मोटाई ४ इच, परिणाह १ इच होता है।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृत वर्ण कृष्ण। कषे भगे : कपिल वर्ण। चूर्ण : धूसर। क्वाथ : तैल रक्त पीत : घृत–पीत। ज्वाला : रक्त।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे अल्प विलेय है।

रस परीक्षा : प्रायश· कषाय अनुरस तिक्त।

गंध परीक्षा : मृदु सुगध। कर्पूर गंधी। स्पर्श : कठिन, खर, रुक्ष, लघु।

शब्द परीक्षा : अभगुर। वर्ग . प्रायशः कषाय होने से वायवीय है।

अतिविषा (Aconitum Heterophyllum)

नाम : अतीस।

गण : चरक : अर्शोघ्न। लेखनीय।

सुश्रुत : पिप्पल्यादि, वचादि, मुस्तादि।

नैस० वर्ग : वत्सनाभादि वर्ग। (Ranun culacece)

आकृति विज्ञान · अतिविषा की मूल ही औषधि के रूप मे ली जाती है। इसकी आकृति शकु के आकार की ऊपर मोटी और नीचे क्रमशः पतली होती जाती है। कोई वृत्ताकार होती है और कोई कुछ चपटी होती है। इसकी लम्बाई करीव एक इच होती है। वर्ण इसका धूसर वर्ण का होता है। इस पर उप-मूल के चिह्न भी पाये जाते है।

स्थिति : यह शुष्कावस्था मे पाई जाने वाली दवा है। त्वक् पतली कुछ अरुणाभ होती है। इसके हटाने पर नीचे श्वेत भाग पिष्ठमय मिलता है।

इसका क्रम अधोगामी होता है।

छेदन : व्यत्यस्त छेद लेने पर बाहर पतली त्वचा का भाग दिखाई देता है। भीतर का भाग श्वेत वर्ण का होता है। किसी मे भीतरी भाग श्यावाभ भी है। इसमे चार छिद्र दिखाई देते हैं, जो शिराओ के है। काली वर्ण वाली मे कही-कही ५ व ७ तक छिद्र दिखाई पडते है।

अनुलंब छेद : प्रायश वही भाग दिखाई पडते है परन्तु जहा शिराये थी वहाँ पर नलिकाकार रचना पाई जाती है।

वर्ण परिज्ञान : शुष्क ऊपर से धूसर अरुणाभ भीतर, श्वेत। कपे श्वेत, श्याव।

भंगे : श्वेत, श्याव। चूर्ण : श्वेत। क्वाथ : मडवत। तैल : पीत। घृत : श्वेत।

ज्वाला : रक्त।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में . कुछ विलेय है।

रस परीक्षा : तिक्त।

गंध परीक्षा : मृदु सुगन्ध।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रुक्ष, गुरु।

शब्द परीक्षा : भग्नकालीन : कट। भंगुर।

वर्ग : तिक्त प्रधान रस होने से तैजस वर्ग का है।

रास्ना मूल। (Pluchia Lanceolata)

नाम : रास्ना।

गण : चरक : वातहर।

सुश्रुत :

नैस० वर्ग : सहदेव्यादि वर्ग कम्पोजिटी। (Compositeae)

आकृति विज्ञान : रास्ना एक प्रकार का सदिग्ध द्रव्य है। पर जिसे रास्ना कह कर यहा पर प्रयोग किया है वह पत्र रास्ना है। इसे इगलिश मे प्लूचिया लैंसोलाटा कहते है। इसके मूल का प्रयोग औषधियो मे होता है। वर्ण इसका कृष्ण होता हे यह मूल गुच्छ मे एक ही स्थान से निकली रहती है। इसका आकार वर्तुल नलिकाकार होता है। मूल के ऊपर एक मिली मीटर मोटी त्वचा रहती है। इस पर अनुलम्ब रूप मे कई अनियमित रेखाये पडी रहती हैं। सभवतः यह मूल के शुष्क हो जाने पर बनी हुई है। मूल मे उपमूल

के चिह्न भी दिखाई पडते हैं। कृष्णवर्ण की त्वचा के हटाने पर प्रथम धूसर वर्ण की आभ्यंतर त्वचा दिखाई देती हे। उसके नीचे श्वेत वर्ण का काष्ठ का भाग दिखाई देता है। इस मूल का वृद्धिगत क्रम अधोगामी है। मूल से काड पर भी अनुलब रेखाये दिखाई पडती है। जो समानान्तर होती हैं। इस पर ग्रंथिया भी दिखाई पडती हैं। इसका वर्ण पीत होता है। मूल सरलता से टूट जाता है। मूल काडापेक्षा भंगुर है।

व्यवच्छेद : व्यत्यस्त छेद लेने पर वाहर से भीतर की ओर निम्न रचना दिखाई देती है।

१ : बाह्य त्वक् कृष्ण वर्ण की पतली होती हे।

२ : आभ्यंतर त्वक् धूसर वर्ण की तथा लगभग २ मिली मी० मोटी होती है। इसमे पिष्ठमय पदार्थ अधिक होता है।

३ : काष्ठ भाग : सौत्रिक रचना का बना हुआ सच्छिद्रयुक्त होता है। वर्ण ईषत् पीत होता है।

वर्ण परिज्ञान : रास्ना मूल वर्ण कृष्ण वर्ण का होता हे। कपे : श्याव धूसर। भंगे : धूसर। चूर्ण : धूसर। क्वाथ : रक्ताभ। तैल : रक्त पीत। घृत : रक्ताभ पीत। ज्वाला : रक्त वर्ण।

विलेयता : यह जल, घृत व तैल मे अल्प विलेय है।

रस परीक्षा : स्वाद मे कटु व तिक्त है।

गंध : इसमे उग्र गंध पाई जाती है जो कि सुगध होती है। धूपन पर उग्र गध। पश्चात् पीत वर्ण का धूम्र निकलता है।

स्पर्श परीक्षा : मूल मे कठिन, खर, रुक्ष व लघु गुण है।

शब्द परीक्षा : भग्न करने पर कट, भंगुर।

वर्ग : स्वाद मे प्रायशः कटु तिक्त होने से यह तैजस वर्ग का है।

सर्पगन्धा रावोल्फिया सरपेंटाइना (Rauwalfia sarpentina)

वर्ग : एपोसाइनेसी

चरक :

सुश्रुत : एकसरवर्ग

निघंटु :

आकृत विज्ञान : सर्पगन्धा मूल छोटे-छोटे टुकडो के रूप मे मिलता है। यह प्राय: ४ से ५ इच के लम्बे टुकडो के नलिकाकार क्वचित वक्र क्वचित सीधे-

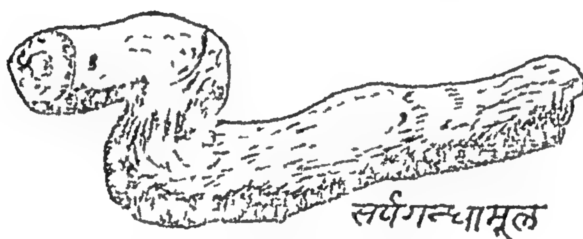
मोटे मूल के खण्डो के रूप मे मिलते है। ऊपर मोटे क्रमश पतले आकार मे कही-कही पर उपमूल से युक्त होते हैं। वाह्य त्वचा मे लम्बाई मे कही खात व उभार युक्त होते हैं। कही पर धारिया भी ऊपर से नीचे उभरी हुई दिखाई पड़ती हैं। बाहर का वर्ण बादामी पीत वर्ण दिखाई पड़ता है। वाह्य त्वचा स्फुटित शल्की किन्तु स्पर्श मे मृदु होती है। मूल की त्वचा स्थूल व मासल तथा खरोचने पर सरलता से हट जाती है। भीतर का काष्ठ पीत वर्ण का कठिन होता है, बीच का सार भाग मृदु होता है।

मूल के दो भाग हो सकते हैं।

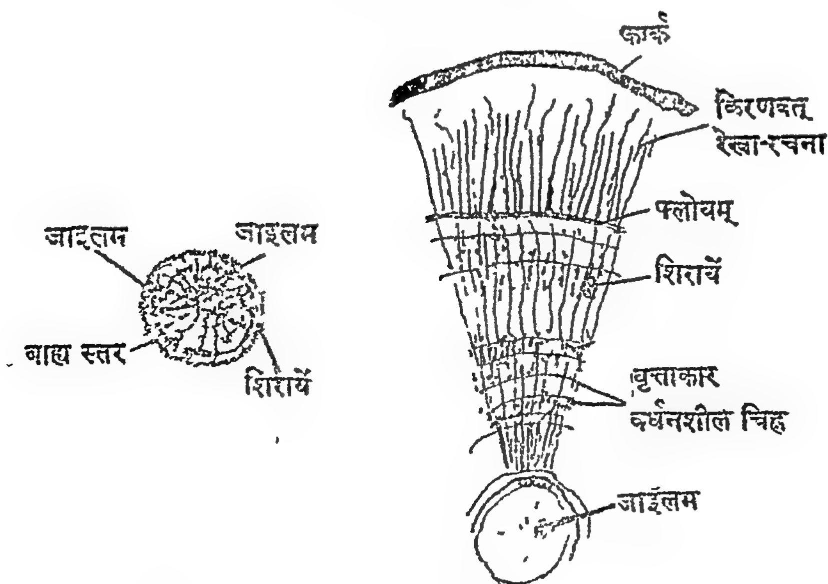
१ : त्वगीय भाग। २ : काष्ठीय भाग।

त्वक् : इसके भी दो भाग होते हैं।

१ : अधित्वक भाग। २ . अतस्त्वक् भाग।



चित्र ७५ सर्पगन्धामूल



चित्र ७६ चित्र ७७

अधित्वक् मृदु और सरलता से पृथक हो जाती है। अतस्त्वक अपेक्षाकृत कठिन होती है। यह आभ्यन्तर काष्ठ से पृथक हो जाती है। अर्द्रावस्था मे सरलता से पृथक हो जाती है।

काष्ठांश : यह अपेक्षाकृत कठिन होती है। इसमे मुद्रिकाकार स्तर होते है। बीच-बीच मे काष्ठ का मज्ज भाग होता है। रचना संगठन मे यह इस प्रकार होते हैं कि काष्ठ के सेल मिल कर एक विकीर्ण रेखा केन्द्र से प्रान्त की तरफ बनती हुई दिखाई देती है। इसका बाह्य भाग कठिन ईषत् श्वेत पीत वर्ण का तथा मज्ज भाग, बीच का गाढे पीत वर्ण का दिखाई पड़ता है।

अनुलम्बच्छेद : प्रथम तनु त्वचा पश्चात् स्थूल त्वचा। बाद मे काष्ठ का भाग रेडिएशन व बीच मे सारभाग।

व्यस्तच्छेद : त्वचा, बाद मे काष्ठ भाग पश्चात् सारभाग।

वर्ण : कषे पीत। भगे : पीत। चूर्ण : पीत। तैल : पीत। घृत : पीत रक्ताभ। ज्वाला : रक्त पीत।

विलेयता : वारि, तैल, घृत, मे ईषत्,।

रस : अति तिक्त।

गन्ध : उग्र गन्ध।

स्पर्श : ऊपर से मृदु, श्लक्ष्ण, लघु।

शब्द : अभगुर। भग्नकालीन : चट।

वर्ग : प्रायशः तिक्त त्वात तैजस् वर्ग।

त्रिवृत या निशोथ (Operculina Turpethum)
(N O.—Convolvulaceae)

नाम : त्रिवृत।

वर्ग : चरक : भेदनीय।

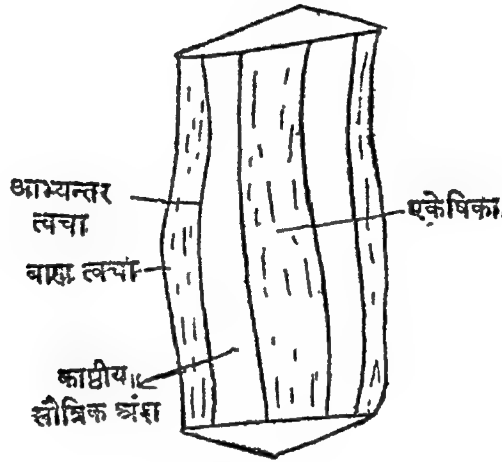
सुश्रुत : अधोभागहर, श्यामादि।

आकृति विज्ञान : त्रिवृत आयुर्वेद की औषधियो मे सबसे प्रसिद्ध औषधि है। इसका मूल औषधार्थ प्रयोग होता है। हरित मूल बाहर से गहरे भूरे वर्ण की श्याव वर्ण वाली होती है। शुष्क हो जाने पर इसका वर्ण श्यावाभ हो जाता है। श्याम वर्ण की निशोथ का मूल श्याव वर्ण का व श्वेत वर्ण की निशोथ का वर्ण अरुणाभ होता है।

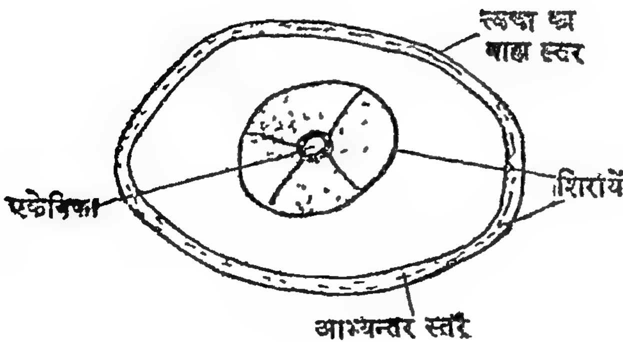
इसका आकार अगुष्ठाभ मोटा होता है। यह कुछ ऐंठी हुई होती है। स्पर्श

मे यह कठिन होती है। शुष्क हो जाने पर यह स्पर्श मे रुक्ष और कठिन होती है। आर्द्र दशा मे इसमे दुग्ध निकलता है। जो गाढा चिपचिपा होता है। सूखने पर यह राल की तरह जम कर बन जाता है। शुष्क मूल कठिन और रुक्ष होती हे गात्र पर इसके उपमूल के चिह्न पाये जाते है। त्वचा पतली और आर्द्रावस्था मे सरलता से पृथक हो जाती है। नीचे का भाग त्वचा का मोटा होता हे। इसके बीच मे सींक की तरह कडी ईषिका का भाग रहता है जो कि सूत्रमय व कठिन होता है। अत. इसका नाम एकेषिका भी होता है। इसके बीच मे शिराओ के छिद्र होते है जिनमे दुग्ध एकत्र होता है।

व्यत्यस्तच्छेद : यदि मूल का चौड़ाई मे च्छेद लें तो निम्न बाते दिखाई पडती है। यथा :



चित्र ७८



चित्र ७९

१ · वाह्य त्वचा : वाह्य त्वचा पतली व सरलता से पृथक हो जाती है। इसका ऊपरी वर्ण श्याव वर्ण का होता है।

२ : आभ्यन्तर त्वचा यह मोटी व सिरा बहुल होती है। यह भाग मासल व मोटा होता है। क्षीर आर्द्रावस्था मे इसमे अधिक होता है।

३ : काष्ठमय भाग : यह भाग अधिक सौत्रिक व कठिन सूत्रों से बना होता है। इसमे भी सिरा जाल होते है। पुराने मूलो मे यह सिरा जाल भिन्न-भिन्न झुडो मे पाया जाता है। यह तीन भाग वृत्त रूप मे पाये जाने से इसे त्रिवृत कहते हैं।

लम्ब च्छेद : इसमे भी वही भाग मिलते है। परन्तु कुछ आकार मे भेद होता है।

यथा : त्वचा का वाह्य भाग आभ्यन्तर भाग काष्ठमय भाग। सिराओं का भाग नलिकाकृति होता है।

वर्ण परिज्ञान : काड का भी व्यस्त तथा अनुलम्ब छेद चित्र निम्नाङ्कित रूप का होता है।

प्राकृतिक वर्ण ' श्याव बाहर से। कटे व भग्ने पीत वर्ण। चूर्ण धूसर वर्ण का। क्वाथ पीत वर्ण का। तैल पीत रक्ताभ। घृत श्वेतपीत।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : जल, तैल व घृत मे इषत् विलेय है।

रस : तिक्त व कटु।

गन्ध : मृदु ग्लानिकर।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रुक्ष, लघु।

शब्द परीक्षा : भग्न मे कट।

वर्ग : स्वाद मे तिक्त कटु होने से तैजस वर्ग का है।

पुनर्नवा मूल (Boerhavia Deffusa)

No.—पुनर्नवा कुल—(Nyctegenaceae)

नाम : पुनर्नवा, वर्षाभू।

वर्ग चरक : वय स्थापन, कासहर, स्वेदोपग, अनुवासनोपग।

सुश्रुत : विदारी गंधादि।

प्राकृत वर्ग : पुनर्नवा कुल 'निकटेजिनेसी'।

आकृति विज्ञान : इसके मूल की आकृति नलिकाकार, गोल, लम्बी, विषम व क्वचित वक्र भी होती है। इस पर उपमूल के चिह्न भी दिखाई देते है। इसके ऊपर की त्वचा गहरे मटियाले वर्ण की होती है। इस पर हल्की पतली

रेखाये दिखाई पडती हैं। धारी की तरह ऊपर से नीचे को यह होती है। यह ऊपर मोटी व नीचे पतली होती है। बाजार मे इसकी जडे २ से चार इंच तक लम्बी पाई जाती है। ऊपर का भाग पतला व नीचे का श्वेत व मासल होता है। आर्द्र त्वचा का वर्ण भूरा होता है। स्पर्श मे रूक्ष व खुरदरा होता है।

च्छेद : चौडाई मे च्छेद लेने पर इसमे निम्न भाग दिखाई पडते हैं। यथा :

१ . बाह्य स्तर : पतला होता है।

२ : आभ्यन्तर स्तर : बाह्य त्वक् के बाद आभ्यन्तर त्वक् होती है। इसका भाग श्वेत होता है। इसके बाद वृत्ताकार रचना दिखाई पडती है। यह शिराओ के द्वारा बनते हैं।

३ : मध्य का काष्ठमय भाग : यह काष्ठ सूत्रमय रचना वाला तथा पिष्ठमय पदार्थों से भरा रहता है। किसी-किसी मे यह भाग छिद्रमय दिखाई देता है। नवीन मूल मृदु व अल्प सूत्र वाली तथा पुरानी अधिक सौत्रिक होती है। काष्ठमय भाग के बीच मज्ज भाग होता है।

लम्ब च्छेद : इसमे भी वही भाग होते हैं। सिराओ के स्थान पर नलिकाये दिखाई देती है। यह रेखाये काष्ठ भाग पर दिखाई पड़ती है।

परिमाण :

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण श्वेत घूसर वर्ण। कषे व भगे श्वेत। चूर्ण : श्वेत घूसर। क्वाथ : ईपत् पीत। तैल ' ईपत पीताभ। घृत : श्वेत। ज्वाला : रक्त।

रस : कटु व तिक्त।

गन्ध ' शुष्क व आर्द्र मे मृदु गन्ध। धूपन मे उग्र।

स्पर्श परीक्षा : मूल कठिन, खर, रूक्ष, लघु।

शब्द परीक्षा : भग्न मे कट। अभगुर।

वर्ग : कटु व तिक्त होने से यह तैजस द्रव्य है।

पिप्पला मूल (Root of Piperlongum)

नाम : पिप्पली मूल। पिपरा मूल।

वर्ग प्राकृतिक : पाइपरेसी। (Piparaceae)

प्राचीन चरक . दीपनीय, शूलप्रशमन, हिक्कानिग्रहण।

सुश्रुत : उर्ध भागहर।

आकृति विज्ञान : पीपल का मूल शुष्क गाठदार, उपमूल के चिह्नों से युक्त होता है। इसका आकार वर्तुल नलिकाकार ग्रंथिल छोटे टुकडों मे विभक्त पाया जाता है। इसकी त्वचा धूसर वर्ण की होती है। खुरचने पर श्वेत वर्ण नीचे दिखाई पडता है। इसके गात्र पर ऊँचे-नीचे उभार से दिखाई पडते है। यह अधोगामी मूल होता है। इसके ऊपर की त्वचा मोटी होती है, दो गाँठो के वीच दवा हुआ भाग होता हे। स्पर्श मे यह रूक्ष है।

च्छेदन : इसमे च्छेद लेने पर निम्न रचनाये दिखाई पडती है :

१ : वाह्य त्वचा : वादामी या धूसर वर्ण की पतली होती है।

२ : आभ्यन्तर त्वचा . यह करीव २ मिली मी० मोटाई वाली होती है। पिष्ठमय भाग उसमे मिला होता हे।

३ · काष्ठमय भाग : यह पीतवर्ण का पाँच दलो मे विभक्त-सा दिखाई पड़ता है।

अनुलंव काट :

१ . वाह्य त्वचा।

२ · आभ्यन्तर त्वचा।

३ : काष्ठ भाग।

विशेष : बाजार मे पिप्पली मूल मे उसके कांड की मिली हुई गाठे होती हैं। काड के टुकडे भी मिलते है। अत. काड मे निम्नलिखित रचना मिलती है :

१ : वाह्य स्तर पर अनुलंव रेखायें मिलती है। जव कि मूल मे इस प्रकार की रेखा नही होती। मूल पर गाठे व उपमूल के चिह्न होते है।

२ . व्यतस्त काट मे भी प्रथम त्वचा पतली व काष्ठ का भाग व वीच मे पिथ का भाग होता है।

रचना निम्न होती है।

वर्ण : प्राकृतिक : बादामी। कषे भगे : श्वेत। क्वाथ . पीत : रक्त। तैल : पीत। घृत . पीत। ज्वाला · रक्त।

रस : कटु व तिक्त।

गन्ध : मृदु सुगन्ध।

स्पर्श : कठिन, खर, रूक्ष।

शब्द : भग्नकालीन कट।

वर्ग · प्रायश : कटु व तिक्त होने से तैजस वर्ग का है।

अनन्त मूल हेमी डिसमस इंडिकस
(Hemedecmus Indicus)

नाम : अनन्त मूल, कपूरी, उत्पल सारिवा ।

वर्ग : अर्कादि एसक्लेपिडियेसी (Asclepidiaceac)

चरक : स्तन्य शोधन, पुरीष संग्रहण, ज्वरहर, दाह प्रशमन, मधुर स्कंध ।

सुश्रुत : सारिवादि, विदारिगन्धादि, वल्ली पंचमूल ।

आकृति विज्ञान : सारिवा का मूल नलिकाकार पतला लगभग २ इंच लम्बा और श्याम भूरे रग की त्वचा वाली होती है । इसमे उपमूल के चिह्न लगे होते है । यह टेढी-मेढी होती है इस पर अनुलव उभरी हुई रेखाये भी दिखाई पड़ती हे । थोड़ी-थोडी दूर पर सूखने से दरारे पड गई है । और रचना पर्वाकार दिखाई पडती है । आकृति वर्तुल नलिकाकार होती है ।

स्थिति : वाजार मे शुष्क मूल मिलती है । ऊपर का वर्ण भूरे रग का तथा विभिन्न स्थलो पर फटा हुआ होता है । इसको हटाने पर भीतर धूसर वर्ण की मोटी त्वचा मिलती है । इसके नीचे पीत वर्ण का भाग दिखाई देता है ।

उपमूल : इसमे उपमूल भी लगे होते है । मूल क्रम अधोगामी होता है ।

छेदन : छेद लेने पर तीन मुख्य स्तर दिखाई पडते हैं ।

१ : वाह्य त्वचा . जो पतली व श्याव भूरे वर्ण की होती है ।

२ : आम्यतर त्वचा . स्थूल होती है तथा पिष्ठमय भाग लगा रहता है ।

३ : काष्ठ भाग : यह कठिन सौत्रिक रचनायुक्त होता है । वीच-वीच मे कुछ पिष्ठमय भाग दिखाई देता है ।

अनुलंब काट : इसमे भी वही भाग दिखाई पडते हैं । यथा .

१ : वाह्य त्वचा ' श्यावारुण वर्ण ।

२ : आभ्यन्तर त्वचा : धूसर वर्ण की मोटी ।

३ : काष्ठमय भाग : इसमे स्रोत नीचे से ऊपर जाते दिखाई पडते है ।

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण : भूरा ऊपर से । कषे भंगे ' पीत धूसर । चूर्ण : धूसर । क्वाथ पीत रक्त । तैल, घृत : पीत । ज्वाला : रक्त वर्ण की ।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईषत् ।

रस : प्रधान रस मधुर . अनुरस कषाय व तिक्त होता है ।

गंध : सामान्य सुगंध । कर्पूर गन्धी । उग्र ।

स्पर्श परीक्षा : लघु, रूक्ष, कठिन, खर ।

शब्द परीक्षा : भग्नकालीन : कट । अभगुर ।

वर्ग : प्रायश : मधुर व तिक्त होने से यह पार्थिव वर्ग मे आता है ।

आर्द्रक : जिंजिबेर आफिस नेलिस
(Gingibe officinale)

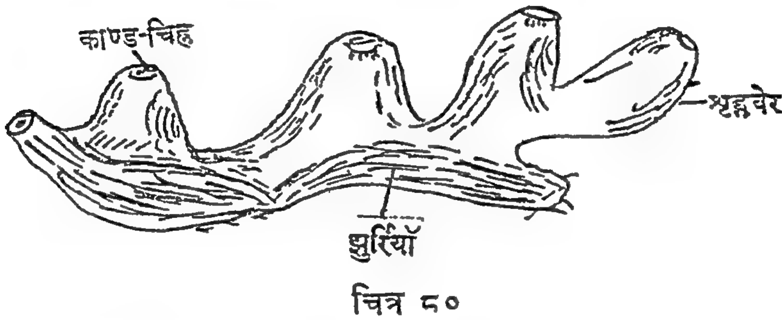
नाम ' आर्द्रक, शृंगवेर ।

गण : चरक : तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न, दीपनीय, शूल प्रशमन । तृष्णानिग्रहण ।

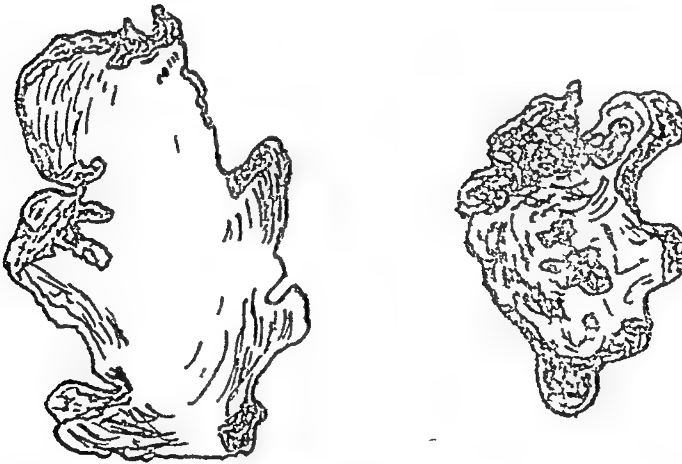
सुश्रुत : पिपल्यादि त्रिकटु ।

प्राकृतिक गण हरिद्रादिगण ।

आकृति विवरण : आर्द्रक का कन्द उसके काड का परिवर्तित स्वरूप है। यह बोने के बाद धीरे-धीरे खाद्य द्रव्य को सग्रह करके मोटे कन्द का स्वरूप ग्रहण करता है। प्रारम्भ मे मोटा-पतला आगे जाकर मोटा हो जाता है



चित्र ८०

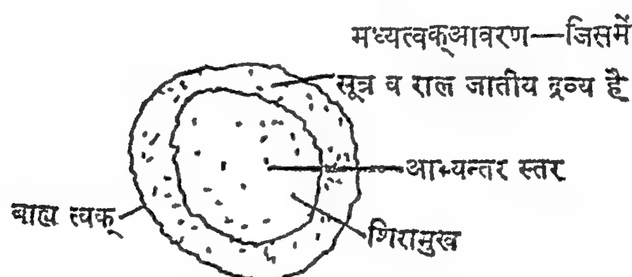


चित्र ८१ अफ्रिका का आर्द्रक चित्र ८२ कोचीन का आर्द्रक

और आगे के भाग मे गोल वेर के आकार का शृग बनाता है। अत. इसको शृगवेर के नाम से कहते है। धीरे-धीरे कन्द बढता जाता है और उस पर पत्रावशिष्ठ भाग रह जाते है। इसमे अक्षियाँ निकलती है और उस स्थान पर नये काड का उद्गम होता है इस प्रकार आगे-आगे बढता जाता है और कन्द

का रूप धारण करता है। अत एक कंद मे कई छोटे-छोटे उभार से बन जाते हैं। इसके ऊपर का वर्ण आर्द्रावस्था मे पीत बादामी रंग का होता है। स्पर्श मे यह श्लक्ष्ण होता है ऊपर धारियाँ दिखाई पड़ती है। जो कुछ दूरी पर वृत्ताकार रहती है। यह पत्र सन्निवेश का चिह्न है। यह त्वगीय भाग बहुत पतला होता है और सरलता से हट जाता है। इसके नीचे श्वेत पीत भाग का दिखाई पडता हे। इस पर छोटी-छोटी ग्रन्थिल शाखाये लग जाती है अतः यह गाठदार दिखाई पडता है। प्रत्येक शाखा पर वैसे ही वृत्ताकार चिह्न दिखाई पडते है। इसका व्यत्वस्त च्छेद ले तो नीचे निम्न रूप दिखाई पडता है।

१ : ऊपर का तनुत्वक् ' जो स्पर्श मे ममृण व बादामी वर्ण का होता है।



चित्र ८३

२ : अन्तस्त्वक् : इसके बाद नीचे का मासल अन्तस्त्वक् का मोटा भाग रहता है। जो श्वेत पीत वर्ण का मोटा होता है।

३ : अन्तस्थ भाग . यह भाग बीच का केन्द्रिय होता है इसमे सौत्रिक भाग अधिक होता है और पिष्ठाशयुक्त होता है। इसमे तैल ग्रन्थियाँ भी दृष्टिगोचर होती है और इसमे सुगन्ध का भाग होता है।

अनुलम्ब च्छेद : इसमे भी रचना वही होती है परन्तु स्थितिवशात् भिन्नता पाई जाती है। यथा . १—तनु त्वक् ; २—पश्चात्, मोटा भाग, ३—केन्द्रिय भाग , इसमे सूत्र लम्बाई मे दिखाई पड़ते हैं।

परिमाण : इसका भार २ से ३ तोले तक होता है। लम्बाई २ से ३ इंच तक, चौडाई १ इच, मोटाई आधे से पौन इच तक होती है।

वर्ण : बाह्य त्वक् बादामी वर्ण का होता है। आभ्यन्तर श्वेत पीत, जल मे पकाने पर हरित पीत व तैल मे मृदु पीत व घृत तथा दुग्ध मे हरित।

विलेयता : जल, तैल, घृत मे ईषत् विलेय।

रस : कटु तिक्त।

गध : सुगधित व हृद्य।

स्पर्श : कठिन, स्निग्धश्लक्ष्ण, गुरु।
शब्द : जलाने पर चिर-चिर शब्द।
वर्ग : प्रायश : कटु तिक्त होने से यह आग्नेय वर्ग का है।

काड परीक्षा विज्ञान

ज्ञातव्य : शुष्क काड वाले द्रव्यो की जव परीक्षा करना होना है तव उसके ठीक ज्ञानार्थ परीक्षा से पहले १८ घटे पूर्व उनको जल मे भिगो कर रखना होता है। जव वे अच्छी तरह से भीग जाते है तव उनको परीक्षार्थ रखते है। इस प्रकार वे द्रव्य निरीक्षण करने मे स्पष्ट दिखाई पडते है और चित्रादि वनाने मे सुगमता होती है।

गुडूची का काड। टिनास्पोरा कार्डिफो लिया (Tinospra Cordifolia)
नाम : गुडूची, अमृता, छिन्नरुहा।
वर्ग : गुडूच्यादि : मेनिस्परमेसी।
चरक : वय. स्थापन, दाहप्रशमन, तृष्णानिग्रह, स्तन्यशोधन, तृप्तिघ्न।
सुश्रुत : गुडूच्यादि, पटोलादि, आरग्वधादि, काकोल्यादि, वल्लीपचमूल।

आकृति विज्ञान : परीक्ष्य, दव्य गुडूची का काड है। इसका आकार वृत्त नलिकाकार होता है। ऊपर की त्वचा भूरे वर्ण की होती है जोकि कही कही कटकर अलग हो गई है। काड के वाहरी भाग पर छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ है जो अकार मे छोटी-वडी है। इसके ऊपर का भाग जो ऊभारदार है वह भी स्फुटित और रूक्ष है। ऊपरी त्वक फटने व गाठदार होने से विषम दिखाई पडता है। इसका वर्ण हरित व भूरे वर्ण का है।

ऊपरी त्वक् सरलता से पृथक् हो जाता है और नीचे की त्वचा का हरित वर्ण निकल आता हे और ग्रन्थियो के स्थान पर अवशिष्ट चिह्न दिखाई पडते हैं। ध्यान से देखने पर त्वक् मे सूत्रो की रचना लम्वाई मे दिखाई पड़ती है।

ऊपरी त्वक् का वर्ण भूरा मटमैला, तथा भीतर से हल्के वादामी वर्ण का दिखाई पडता है।

कांड च्छेद : काड की चौड़ाई की दिशा मे छेद लेने पर इसमे तीन स्तर दिखाई पड़ते हैं।

१ : त्वगीय स्तर - यह दो भागो मे विभक्त दिखाई पडता है। प्रथम सवसे ऊपर पतला भूरे रग का स्तर दिखाई देता है। यह सरलता से पृथक् हो जाता है। वर्ण धूसर और स्पर्श मे रूक्ष वनाता है।

२ : त्वगीय स्तर भीतरी : यह हरे वर्ण का काड से दृढ संसक्त होता है। यह स्निग्ध और मृदु है।

द्वितीय स्तर : यह काड का सबसे अधिक घन ससृष्ठ भाग है।

तृतीय भाग : यह स्तर कई भागो मे विभक्त होता हुआ चक्राकार दिखाई पडता है। अतः इसकी सज्ञा चक्राकार कही जाती है। इस भाग मे १८ से २० चक्राग पाये जाते है। ऊपर का भाग कुछ वृत्ताकार मोटा और नीचे का भाग पतला और संकीर्ण होता जाता है। इसमे बहुत से सूक्ष्म छिद्र होते है। केन्द्रिय भाग सब भागो से मिलने से घना हो जाता है। बीच मे एक मृदु भाग है। यह सूखने पर एक छिद्र की भाँति दिखाई पडता है।

परिमाण : भिन्न-भिन्न काण्ड के खण्डो का आकार-प्रकार भिन्न-भिन्न परिमाण का होता है।

वर्ण परिज्ञान : बाह्य त्वक् धूसर। नीचे का हरित।

शुष्क काड : धूसर मटमैला। चूर्ण धूसर मटमैला।

क्वाथ : हरित श्वेत वर्ण का। तैल . पीताभ। घृत ' कृष्ण पीत।

विलेयता : वारि मे अधिक व तैल-घृत मे ईषद् विलेय है।

गंध परिज्ञान : आर्द्र मृदु गन्ध। शुष्क मृदु गन्ध। अग्नि मे जलाने पर मृदु गन्ध।

रस परिज्ञान : व्यक्त रस तिक्त। अनुरस कषाय व मधुर।

स्पर्श परिज्ञान : यह स्पर्श मे कठिन, खर, व लघु है।

शब्द परीक्षा : अभंगुर, आर्द्र। जलने पर चट-चट शब्द करता है। शुष्क शब्द-रहित जलता है।

गणविनिश्चय : प्रायश तिक्त व अनुरस कषा य होने से वायव्य है।

काण्ड वाले द्रव्यो की परीक्षा

कृष्ण सारिवा : क्रिप्टोलेपिस बुचनानी (Creptolapıs Buchnanı)

आकृति विज्ञान :

वर्ग : एसक्लेपिडिएसी : (Asclepıdıacaee)

चरक : स्तन्य शोधन, पुरीष सग्रहणीय। ज्वरहर, दाह प्रशमन व मधुर स्कध।

सुश्रुत : सारिवादि, विदारिकंदादि, वल्लीपंचमूल।

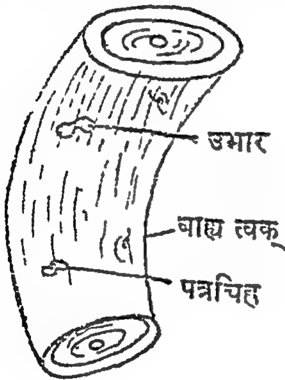
१ कृष्ण सारिवा के परीक्षण मे हाथ मे ले कर उसके काड को ध्यान से देखिए। बाहरी बनावट मे त्वचा के ऊपर छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ दिखाई पडेगी। इन्हे चित्र मे चित्रित करिए।

२ : आर्द्र त्वचा को ध्यान से देखिए। इसमे तीन स्तर मिलेंगे।

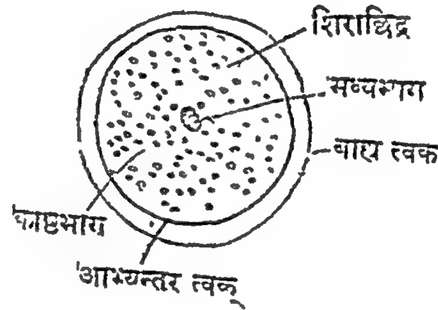
३ : नीचे के काष्ठ भाग का अवलोकन करिए। भीतरी रचना मे बहु-संख्यक छिद्र दिखाई पड़ेगे।

४ : इसके वर्ण, गन्ध व रस को नोट करिये।

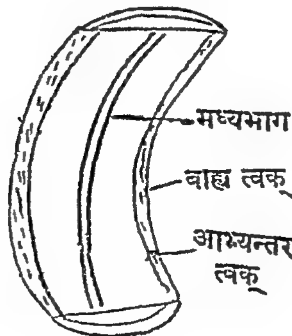
आकृति विज्ञान : यह एक दक्षिणावर्तिनी लता है। इसका काड औषधार्थ प्रयोग मे आता है। इसका वाह्य वर्ण रक्ताभ कृष्ण वर्ण का होता है। स्पर्श मे यह कठिन रूक्ष है। त्वचा के ऊपर छोटी-छोटी ग्रथियां दिखाई पडती हैं। अत. स्पर्श श्लक्ष्ण होते हुए भी यह रूक्ष-सा ज्ञात होता है। ऊपर की त्वचा कृष्ण वर्ण की पतली होती है। इसके हटाने पर नीचे रक्ताभ मोटी त्वचा दिखाई पडती है। यदि उसे भी हटा दिया जाय तो नीचे श्वेताभ पीत वर्ण का काष्ठ का भाग दिखाई पड़ता हे। इसका आकार नलिकाकार वृत्त होता है।



चित्र ८४



चित्र ८५



चित्र ८६

छेदन अनुप्रस्थ छेद : यदि इसका चौडाई मे छेदन करे तो दो प्रधान भाग दिखाई पडते है।

१ : त्वगीय भाग ।

२ : काष्ठीय भाग ।

त्वगीय भाग : इस मे तीन स्तर दिखाई पडते है ·

१ : प्रथम स्तर . यह ऊपर का कृष्णाभ त्वगीय तनुस्तर ।

२ : रक्त वर्ण की त्वचा का स्तर ।

३ : आभ्यन्तर त्वगीय स्तर : श्वेत धूसर वर्ण का ।

काष्ठ भाग में :

१ : श्वेत पीताभ काष्ठ भाग ।

२ · मध्य का शुषिर भाग ।

अनुलम्ब च्छेद : इसमे भी क्रमशः त्वगीय भाग व काष्ठ का भाग दिखाई पडता है । लम्बाई मे काष्ठ भाग मे नलिकाकार रचना मिलती है ।

परिमाण ·

वर्ण : प्राकृत वर्ण बाहर से कृष्ण रक्ताभ । चूर्ण : पीताभ श्वेत । क्वाथ : रक्ताभ श्वेत । तैल व घृत मे घुलनशीलता । जल, तेल व घृत मे ईषत् घुलनशील । रस प्रायश· तिक्त व कषाय ।

वर्ग : प्रायश.तिक्त व कषाय होने से वायव्य वर्ग का है ।

सुधा या स्नुही कांड परीक्षा

इयूफोरबिया नेरिफोलिया (Euphorbia Narifolia)

नाम : स्नूही या सुधा ।

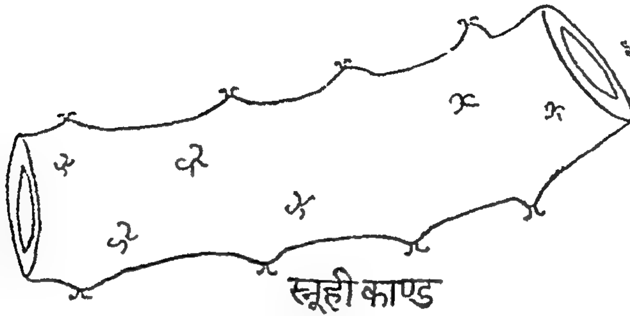
वर्ग : स्नुही वर्ग । इयूफोरबिएसी (Euphorbeaceae)

चरक : विरेचन वर्ग व मूलिनी ।

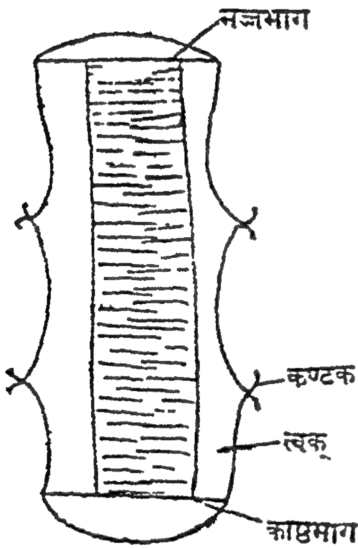
सुश्रुत : अधोभागहर, श्यामादि ।

आकृति विज्ञान : स्नूही का काड गोल या लम्बगोल होता है । इसमे काँटे होते है । काड का ऊपरी वर्ण हरे रंग का होता है । काँटे दो-दो की संख्या मे काड के ऊपर बने हुए होते है । ये उभार काड के ऊपर बने हुए होते है और इन कटको का वर्ण लाल भूरे रंग का होता है । बलपूर्वक इन्हे काड से पृथक् किया जाय तो यह उससे अलग हो जाते है । काड पर ये उभार, ५ इंच की ऊंचाई लेकर उठे हुए होते है । कंटक कठिन, दृढ व श्याम रक्त वर्ण के होते है । कंटको के नीचे पत्र लगते हैं । कही-कही पर कटको के बीच पत्र गिर जाने के चिह्न होते है इन कंटको का मुख विपरीत दो दिशाओ मे होता

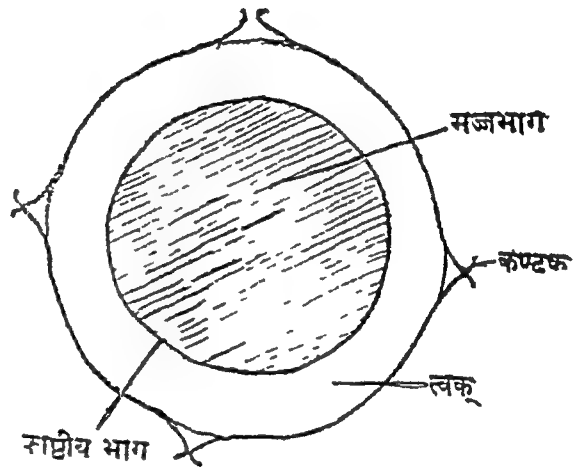
है। काण्ड मे सर्वत्र काटने पर क्षीर निकलता है। काड का छेद लेने पर निम्नलिखित स्तर पाये जाते है। यथा :



चित्र ८७



चित्र ८८



चित्र ८९

१. वाहर का घना हरा भाग।

२: नीचे का कठिन भाग।

३. आभ्यन्तर का भाग।

वाह्य स्तर : यह अधिक रसमय होता है। इसे छेदन करने पर क्षीर श्वेत वर्ण का निकलता है। इस पर ही काटे होते हैं।

कठिन स्तर : त्वक् के नीचे और मृदु भाग के ऊपर यह कठिन भाग रहता है। यह दृढ होता है। स्पर्श मे यह मसृण होता है।

आभ्यन्तर का मृदु भाग : यह सारमय तथा स्पर्श मे मृदु होता है। बीच-बीच मे स्रोतसो का भाग भी दिखाई पडता है।

परिमाण : यह स्नूही काड भार मे ६ औंस और आयाम २ से ३ इच, चौडाई मे डेढ इंच, मोटाई मे एक इंच होता है।

वर्ण : वाह्य हरित वर्ण का भीतर बीच का मज्जा भाग श्वेत।

रस परीक्षा : कटुतिक्त व कषाय।

गंध परीक्षा : मृदु ग्लानिकर।

स्पर्श : मृदु श्लक्ष्ण स्निग्ध पिच्छिल दारुण व लघु।

शब्द परीक्षा : यह अभंगुर है काड मे कोई शब्द नही मिलता।

गुण विनिश्चय : कटुतिक्त प्रधान होने से यह आग्नेय गुण का है।

गांगेरुकी कांड परीक्षा : ग्रेविया पोपुलीफोलिया। (Gravia Populıfolıa)

नाम : गागेरुकी। गंजेटी।

वर्ग : परुषकादि। टिलिएसी। (Tılaceae)

भाव मिश्र : वलादि वर्ग।

आकृति विज्ञान : गागेरुकी का काड नये पौधो मे हरित वर्ण का तथा पुराने पेडो मे कृष्णाभ रक्त वर्ण का होता है। इसका एक वहुवर्षायु क्षुप होता है जिसकी ऊंचाई ३ से ६ फीट तक होती है। इसके काड मूल से ही कई निकल कर एक गुल्म का सा स्वरूप बना लेते हैं। पत्र एकातरित और प्रायशः दन्तुर होते हैं। स्पर्श मे कर्कश होते हैं। मूल हल्के श्याम वर्ण की होती है जिसकी मोटाई हाथ जितनी मोटी होती है। मूल से कई उपमूल निकलती हैं।

कांड का छेद : काड का छेद लेने लेने पर इसमे ३ स्तर दिखई पडते हैं। इसके काड का ऊपरी वर्ण हरे भूरे रंग का नये मे तथा पुराने काड मे कृष्णाभ रक्त वर्ण का, स्पर्श मे रुक्ष तथा कठिन होता है। इस पर यत्र-तत्र श्वेत स वर्ण के चिह्न दिखाई देते है। त्वगीय भाग सरलता से पृथक् किया जा सकता है। काड पर पत्र निकलेने के चिह्न मिलते है। छेदन पर तीन स्तर दिखाई देते हैं, यथा :

वाह्य स्तर : अत्यन्त पतला हरे भूरे वर्ण का स्पर्श मे रुक्ष होता है।

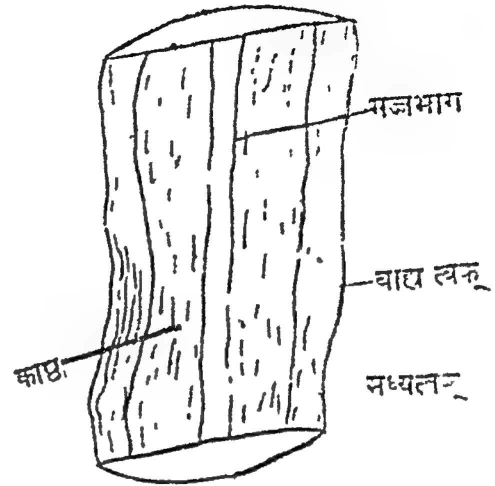
द्वितीय स्तर : हरित व पतला होता है इसकी रचना सौत्रिक होती है।

तृतीय स्तर : इसमे काष्ठ का भाग होता है, जो श्वेत वर्ण का होता है। यह कठिन और दृढ सूत्रो का बना होता है।

परिमाण : काड के टुकडे छोटे-बडे होने से लम्बाई, चौडई और मोटाई भिन्न-भिन्न होती है ।



चित्र ९०



चित्र ९१

रस विज्ञान : प्रायशः मधुर और कषाय होता है ।

गंध : मृदु व सुगन्धित होता है ।

सूर्तगुण : कठिन, खर और लघु होती है ।

शब्द परीक्षा : भंम होने पर चर्र शब्द होता है ।

वर्ग विनिश्चय : प्रायशः मधुर और ईषत् कषाय होने से यह पार्थिव वर्ग की औषधि है ।

मजिष्ठा : रुबिया कार्डिफोलिया : (Rubia Cardifolia)

नाम : मंजिष्ठा ।

वर्ग : मजिष्ठादि : (Rubeaceae)

चरक : वर्ण्य, विषघ्न, ज्वरहर वर्ग ।

सुश्रुत : प्रियग्वादि पित्तसंशमन ।

ऐतिहासिक विवरण : मजिष्ठादि कषाय का यह प्रसिद्ध द्रव्य है । भारतवर्ष मे इसका प्रयोग ईस्वीय सन् से दो हजार वर्ष पूर्व से होता चला आ रहा है । इसका प्रयोग ईस्वी सन् से २००० वर्ष पूर्व के चरक व सुश्रुत के साहित्य मे मिलता है । चरक इसे विषघ्न, वर्ण्य तथा ज्वरहर वर्ग मे तथा सुश्रुत मे प्रियंग्वादि वर्ग तथा पित्तसंशमन बर्ग मे तथा ईस्वी सन् के बाद के धन्वन्तरि

निघंटु, राज निघंटु, मदनपाल निघंटु, भावप्रकाश निघंटु आदि मे सबमे मिलता है। इसका प्रयोग औषधि व रंजन कर्म के लिए व्यापारियो द्वारा सदा से होता चला आ रहा है। पूर्वकाल मे रक्त वर्ण का वस्त्र रंजन इसी के साथ होता था।

विवरण : यह लताजातीय औषधि है, जो कि पर्वतीय प्रदेशो मे होती है। भारतवर्ष, यूरोप, दक्षिण अफ्रिका मे भी पाई जाती है। यह बहुवर्षीय आरोहिणी लता होती है। इसका मूल लम्वा लचकदार और ऊपर की मूल त्वचा हल्की रक्त वर्ण की होती है।

काण्ड : वह बहुत लम्बी होने से योजनवल्ली कहलाती है। यह स्पर्श मे रुक्ष कही-कही पर ऊभारदार कम काष्ठागयुक्त होती है। शुष्कावस्था मे इसका काण्ड ऊपर से झुर्रीदार व विपम होता है। ऊपर का वर्ण श्वेताभ रक्त त्वचा मोटी और काष्ठ का भाग अल्प होता है, जो पीत रक्त वर्ण का होता है। काण्ड की त्वचा का वर्ण गहरे रक्त वर्ण का होता है। काष्ठ मध्यम जो हल्के लाल वर्ण की होती है। शाखाये उमयपूर्व मे से मानातर होती है। उपशाखाये भी बहुत निकलती है।

पत्र : पत्र का आकार हृदयाकार होता है। पत्र वृंत्त लम्वेचतुष्कोण रोमदार होने से खुरदरे और कंटकित होते है। पत्र हरित चमकदार ३ से ९ सेटी मीटर लम्बे और डेढ से साढे तीन से० मीटर चौडे होते है और चार पत्र के गुच्छे एक स्थान-से निकलते है। पहले दो के पत्र व वृन्त वडे दूसरे दो के छोटे होते हैं और आमने-सामने एक चक्र मे होते हैं। नीचे के पत्र वड़े और ऊपर के छोटे होते है। पत्र पृष्ठ और सिराये भरी हुई लोमश व रुक्ष होती है। पत्राग्र तीक्ष्ण या नोकदार होते है।

पुष्प : पत्र कोणसे पुष्प की मंजरी निकलती है, जो त्रिकोणाकार होती है। बाह्य पुष्प कोश ६ मिलीमीटर लम्बा गोल नलिकाकार का मसृण होता है।

आभ्यन्तर कोप . हरे वर्ण का तीन मिलीमीटर लम्बा ५ पुष्प पत्र युक्त वृत्त तीक्ष्णाग्र मसृण होता है। स्त्री केशर दो होते हैं।

फल : चार से ६ मिलीमीटर व्यास के गोल, चिकने, चमकदार, रक्त कृष्ण वर्ण के होते हैं।

मजिष्ठा काण्ड परीक्षा : रुबिया कार्डी फोलिया

नाम : मंजिष्ठा काड।

वर्ग : मंजिष्ठादि।

चरक : वर्ग । विषघ्न । ज्वरहर ।

सुश्रुत : प्रियंग्वादि, पित्तसंशमन ।

आकृति विज्ञान : यह मजिष्ठा का कांड इसकी लता का शुष्क काण्ड है। बाहर से देखने मे यह हल्के रक्त वर्ण की गोलाकार स्पर्श मे कठिन रुक्ष ऊपर से नीचे तक सिकुडी हुई झुर्रीदार व आकार मे नलिकाकार है। ऊपर की त्वचा पर झुरियाँ हैं बीच-बीच मे गाठदार प्रशाखा चिह्न युक्त कुछ ऐंठी हुई होती है। झुरियो के बीच सीताये बनी हुई है। स्पर्श मे यह कडी, नरम, खर व लघु हैं इसके काड को भिगो कर आर्द्र करने पर यह पर्याप्त मोटी हो जाती हैं।

अनुछेदन : शुष्क मजिष्ठा की चौडाई मे छेदन करने पर इसमें तीन भाग दिखाई पडते हैं।

१ : प्रथम स्तर : यह त्वचा का भाग है जो कि ऊपर होता है। इसमें ऊपर की पतली त्वचा श्वेतारुण वर्ण की तनुचमकदार होती है। इसके नीचे की मोटी त्वचा गहरे लाल वर्ण की मोटी होती है।

२ : द्वितीय स्तर : कृष्ण प्रधान ईषत् पीत श्वेत वर्ण की स्पर्श मे कठिन है।

३ : तृतीय स्तर : काष्ठमय भाग के भीतर मज्ज भाग रक्त वर्ण का दिखाई देता है।

आर्द्र मजिष्ठा : इसका भी अनुलम्ब छेद ले तो वही तीन भाग दिखाई पडते है। प्रथम भाग मे त्वचा ऊपर यत्रतत्र फटी हुई, नीचे मजिष्ठ वर्ण का त्वगीय भाग दिखाई पडता है। द्वितीय भाग काष्ठमय पीत श्वेत वर्ण का तथा नीचे मज्ज भाग रहता है।

परिमाण : काड १ या २ इंच के टुकडो मे दो से तीन सेंटीमीटर मोटा।

विलेयता : वारि मे अधिक और तैल, घृत मे कम विलेय है।

रस परिज्ञान : प्रधान रस मधुर पश्चात् कषाय व तिक्त रसवाला।

शब्द परिज्ञान : काड भंगुर है। भग्न काल मे चट ऐसी होती है। ज्वलन काल मे चट-चट शब्द होता है।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृतिक वर्ण रक्त पीत होता है। चूर्ण : रक्ताभ। क्वाथ : घन रक्त वर्ण का। घृत ब तैल का वर्ण : हल्के रक्त वर्ण का। ज्वाला। पीतारुण।

गण विनिश्चय : प्रायशः मधुर ईषत् कषाय व तिक्त होने से यह पार्थिव वर्ग की औषधि है।

वृद्धदारुक : अरजीरियास्पेसिओसा : (Argeria Speceosa)

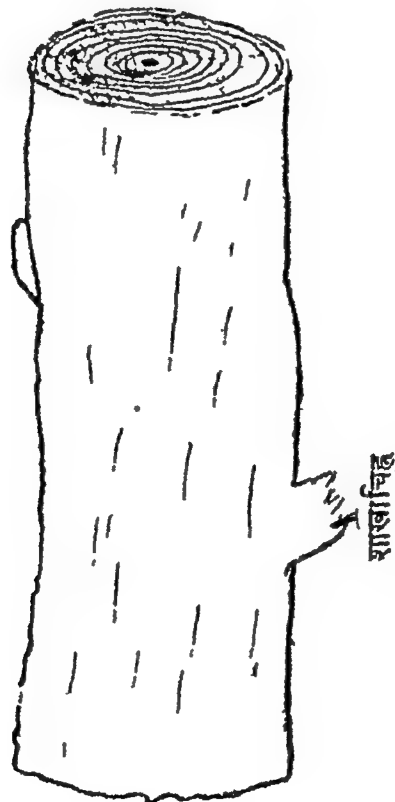
नाम : विधारा । वृद्धदारुक ।

वर्ग : शंख पुष्प्यादि वर्ग । कनभलभुलेसी । (Convulvulaceae)

चरक : वल्य ।

सुश्रुत : अधोभागहर ।

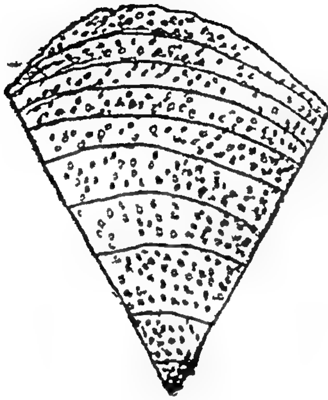
आकृति विज्ञान : यह काड आकार मे मोटा, लम्बा, गोल, नलिकाकार होता है। स्पर्श मे यह खर है। निरीक्षण से ज्ञात होता है कि इसकी त्वचा मे ऊपर से नीचे की ओर आती हुई रेखाये है। रेखाओ के साथ त्वक् भाग पर श्याव वर्ण के गोल-गोल धब्बे पड़े हुए है। काड पर स्थान-स्थान पर ग्रंथि



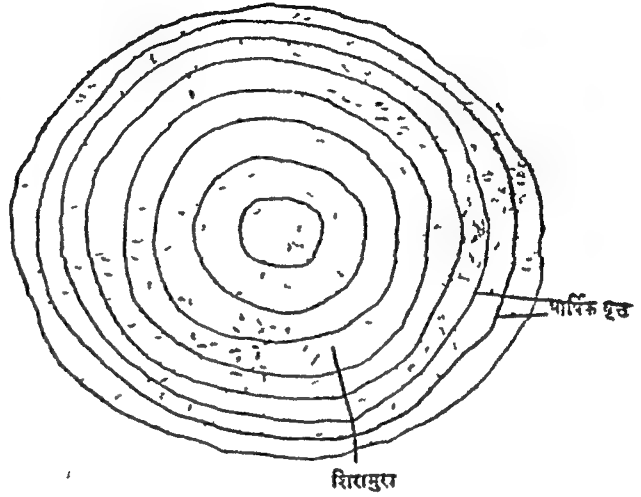
चित्र ९२

पाई जाती है। इसका वर्ण धूसर मटमैला होता है। इस पर रेखाओ के उभार धूसर और खात श्याम वर्ण के रहते हैं।

छेदन विवरण : इसका व्यत्यस्त छेद लेने पर गोलाकार मुद्राकृति आवरण दिखाई देते है। आर्द्र मे यह अधिक स्पष्ट दिखाई देते हैं। आर्द्र मे प्राय: ६ मुद्रिकाकार घेरे दिखाई देते है। शुष्क काड मे यह उतने स्पष्ट नही होते।



चित्र ९३



चित्र ९४

सबसे ऊपर बाहरी तनु त्वचा नीचे मुद्रिकाकार गोल स्तर और इन स्तरो के बीच बहुसंख्यक छिद्र मिलते है।

अनुलम्ब छेद मे भी यही वस्तु मिलते है। प्रथम तनु त्वचा पश्चात् नलिकाकार रेखाये रहती हैं। यह रेखा चौडाई मे दिखाई देने वाले छिद्र के विभाजित होने से बन गये है।

परिमाण : इस त्वक् खण्ड का भार ५६ गुजा है। आयाम आधा इंच विस्तार साढे तीन इंच, परिणाह २ १ इंच है।

वर्ण परीक्षा : प्राकृत वर्ण श्याव धूसर। कषे : श्वेत धूसर। चूर्णे : श्यावारुण। काथे : पीतारुण। तैले : पीत। घृते : पाडु। ज्वाला : रक्त पीत।

विलेयता : जल, तैल व घृत मे ईषत् घुलनशील।

गध परीक्षा : सुगन्ध। धूपन गन्ध अहृद्य।

रस परीक्षा : प्रायश- कषाय।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रुक्ष, लघु।

शब्द परीक्षा : अभगुर। भगे : चरचराहट।

गण विनिश्चय : कषाय रस प्रधान होने से यह वायव्य है।

मधुयष्टी परीक्षा : ग्लिसराइजा ग्लैब्रा : (Glycerrahıza glabra)

नाम : मधुयष्ठि काड ।

वर्ग : शिम्बी कुल । उप कुल—अपराजितादि ।

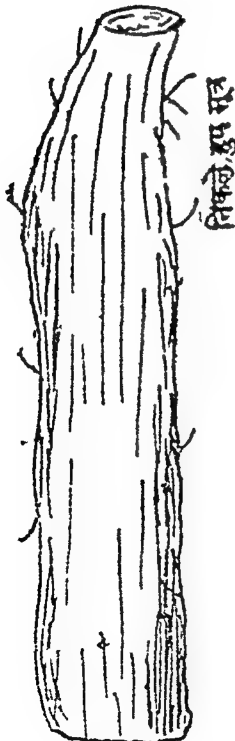
चरक : कव्य, जीवनीय, सधानीय, वर्ण, कंडूघ्न, मूत्र विरजनीय, शोणिता स्थापन, छर्दिनिग्रहण, स्नेहोपग, वमनोपग, आस्थापनोपग ।

सुश्रुत : काकोल्यादि, सारिवादि, अंजनादि, हरिद्रादि, बृहत्यादि, न्यग्रोधादि, अम्बष्ठादि ।

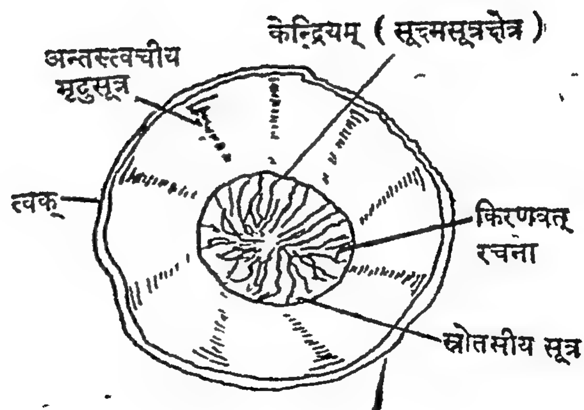
आकृति विज्ञान : यष्ठी मधु का काड छोटे टुकड़ो के रूप मे मिलता है । इसमे मूल और काड के भी टुकड़े मिले रहते है । यह गोल, वृत्ताकार, लम्बा



चित्र ९५ मधुयष्टि काण्ड



चित्र ९६ त्वक रहित द्रव्य



चित्र ९७ व्यत्यस्तच्छेद

और नलिकाकार होता है। इसका ऊपरी पृष्ठ कुछ-कुछ झुर्रीदार दिखाई देता है। कहीं-कहीं पर शाखा निकलने के चिह्न दिखाई पड़ते हैं। इसका ऊपरी भाग रक्ताभ कृष्ण है। मूल पर छोटे-छोटे उपमूल के चिह्न दिखाई देते हैं। यह आकार मे नलिकाकार है। कही पर यह एक तरफ मोटा एक तरफ पतला हो गया है।

कांड : ऊपरितन त्वक् हटाने पर नीचे पीत वर्ण दिखाई पड़ता है। अनुप्रस्थ छेद लेने पर तीन भाग दिखाई देता है। यथा :

१ : बाह्य त्वक् : पतला कृष्ण रक्त वर्ण का चतुर्दिक व्याप्त है।

२ : आभ्यन्तर भाग : यह पीताभ ततुमय भाग है। तंतुओ के बीच मे कुछ पिष्ठमय भाग भी है जिसका वर्ण पीत है।

३ : मध्य भाग : यह मध्य का सार भाग है। वर्ण मे पीत है और इसमे तंतु भाग कम है।

मूल का छेद : अनुपस्थ छेद लेने से मुख्यत: दो भाग दिखाई पड़ते हैं।

बाह्य त्वक् भाग : यह काड त्वक् से अधिक मोटा है। रचना एक सी ही है।

२ : मध्य भाग : यह भाग अधिक मोटा तथा कुछ ततुमय है। वर्ण कुछ श्वेताभ है।

अनुलम्ब छेद : उतने ही स्तर हैं। केवल इसमे लम्बाई मे तंतु अधिक दिखाई देते हैं।

परिमाण : भार २४ रत्ती है। आयाम डेढ इंच परिणाह ३। ४ इंच है।

वर्ण : प्राकृत वर्ण : घूसर कृष्ण। कषे, भंगे चूर्णे : पीत। क्वाथे : पीत। तैले व घृते : पीताभ। ज्वाला : रक्त पीत।

विलेयता : वारि मे अधिक, तैल व घृत मे कम विलेय है।

रस परिज्ञान : मधुर रसप्राय अनुरस तिक्त।

गंध परिज्ञान : सुगन्ध व मृदु।

स्पर्श विज्ञान : कठिन, खर, रुक्ष, लघु एवं समशीतोष्ण।

शब्द परीक्षा : अभंगुर।

गण विनिश्चय : मधुर रस प्राय होने से यह पार्थिव वर्ग का है।

परीक्षोपयोगी पत्र का निर्माण

ओषधार्थ जितने भी पत्र व्यवहृत होते है वे सब पूरे नही होते। टूटे-टाटे, खण्डित चूर्ण के रूप मे या विकृत रूप मे बाजार मे पाये जाते हैं।

तथा कुछ द्रव्यो के हरे पत्र प्रयोगार्थ लिये जाते है। तो जो वाजार से लिये जाते है वह स्पष्ट न होने से उनको परीक्षोपयोगी वनाना पडता है। इसकी विधि निम्न है।

१ : आर्द्र पत्रो के पूर्ण रहने पर परीक्षा सरल हो जाती है। शुष्क पत्रो मे पता लगाना कठिन होता है।

२ : इस निमित्त शुष्क पत्तियो को लेकर एक शीशे के पात्र मे पानी के साथ रख देते हैं। जव भीग कर मृदु हो जाती है तव उन्हे फैला कर रखते है। जव काम जल्द करना होता है तव इनको गर्म पानी मे कुछ देर रखना पडता है। तव यह मृदु हो जाती है। इसके वाद इसकी आर्द्रता ब्लाटिग पेपर मे रख कर सुखा देते है। या वाष्पीकरण विधि से निकाल देते है।

३ : अणुवीक्षण परीक्षा या रासायनिक परीक्षा के लिये यथा—कैल्सियम आक्झलेट या लोम आदि (Trichome) के लिये परीक्षा करनी हो तो कुछ पत्रो को २ वर्ग मीलीमीटर के टुकडो मे काट कर क्लोरल हाइड्रेट के द्रव मे रख देते है। फिर उसको तव तक वाष्पित करना चाहिये जव तक कि वह पारदर्शक न हो जाय। पुनः समान भाग ग्लिसरिन व क्लोरल हाइड्रेट मे रखना चाहिये। तव अणुवीक्षण की परीक्षा करना चाहिये।

४ : दर्शन परीक्षा मे पत्रो मे निम्न वाते लिखना चाहिये :

१ पत्र वृन्त :

यह सवृन्त पत्र है या अवृन्त पत्र है। कई पत्र अवृन्त होते है।

२ : लम्वाई, चौडाई, मोटाई, चौडा, कृश या किस प्रकार का है।

३ : आकार क्या है। पत्र धार तक पहुँचने मे क्या आकृति रहती है। मोटा, पतला, लम्वा, अतिलघु या वृहत्।

४ : पत्रधार या लैमिना (Lamina)

पत्रधार का क्या क्रम है। पूर्ण, अपूर्ण, दन्तुर, कर्णिकेय आदि।

२ : शिरा विन्यास किस प्रकार का है। साधारण जालीदार वृत्ताकार अर्ध-वृत्ताकार।

३ : किनारे : पूर्ण, तरगायित, दन्तुर खण्डित छिद्र आदि युक्त।

४ : पत्राग्र . तीक्ष्ण धारहीन, कुठित, दवा हुआ।

५ आधार : समान, असमान, वृत्ताकार, आदि।

६ : पृष्ठ : लोमश, श्लक्ष्ण, ग्रन्थि युक्त विषम, आदि।

७ : आकृति या आउट लाइन : आकार क्या है। रेखाकृति, हृदयाकृति, दर्वीवत, लम्ब गोल।

८ वर्ण : समग्र पत्र देख कर विशेष वर्ण को लिखना चाहिये।

९ : दार्ढ्य या टैक्श्चर : कडा, रुक्ष, कठिन, कर्कश, भगुर, अभगुर आदि।

१० : पत्र मान : लम्बाई, चौड़ाइ आदि। पत्र के मान को नाप कर लिखना चाहिये।

११ · रस, गन्ध, शब्द, आदि अवशिष्ट वाते भी लिख देना चाहिये।

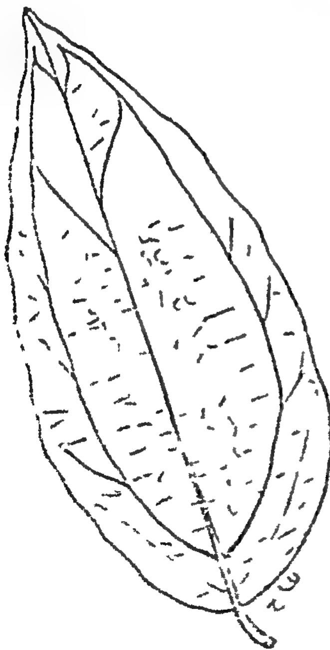
तमालपत्र

Cinnamomum Tamala

N. O. Lauracæa

आकृति परीक्षा :

हरित मलिन वर्ण के लम्वे, नोकीले, सवृन्त पत्र, जिनका ऊर्ध्वपृष्ठ श्लक्षण एवं कुछ अधिक हरा होता है। वृन्तमूल से एक स्थूल मध्यसिरा आरम्भ होती है जिसमे से निकट ही एक २ शाखा दोनो ओर निकलती है जो पत्र के अधोभाग मे मिलकर समाप्त हो जाती है। ये सिराये अध पृष्ठ पर उभारयुक्त और स्पष्ट होती हैं और ऊर्ध्वपृष्ठ पर इतनी स्पष्ट नही होती हैं। इन सिराओ से अनेको सूक्ष्म शाखाये निकलती हैं जो कि सम्पूर्ण पत्र जालकाकार रचना वनाती है।



चित्र ९८ तमालपत्र

यान्त्रिक परीक्षण :

विवर्द्धक काँच यन्त्र से देखने पर मुख्य सिराये किंचित ऐठनयुक्त प्रतीत होती हैं और इनके मध्य मे सम्पूर्ण पर सूक्ष्म शिराजालो से आवृत सूक्ष्म कोष्ठो मे विभक्त प्रतीत होता है।

परिमाण :

४" × १·४" के पत्र का भार	आयाम	विस्तार
१ रत्ती	२" से ६" तक	६" से २" तक

वर्ण

प्राकृत वर्ण : हरित मलिन

कषे : हरित

भंगे : हरित

चूर्णे : हरित पाण्डु

क्वाथे : पीत

तैले : हरित

घृते : हरित

ज्वाला : पीत

विलेयता :

वारि	तैल,	घृत
+	+	+

रस परीक्षा :

मधुर,	तिक्त	कटु
+ +	+ +	+

गन्ध परीक्षा :

शुष्क द्रव्य	सुगन्ध,	मृदु
	+	+
धूपन	उग्र	

स्पर्श परीक्षा :

मृदु, श्लक्ष्ण, स्निग्ध, लघु

शब्द परीक्षा :

भग्नकालीन : करकराहट

ज्वलनकालीन : चरचराहट

भगुर : +

गणविनिश्चय :

यह मधुर एव 'तिक्त रस प्रधान होने के कारण आप्य है।

वासा Adhatoda Vasica
N O. Acanthaceæ

आकृति विज्ञान पत्र :

वासा के पत्र हरित वर्ण के होते है। ऊपर से नीचे की ओर इसके पत्र उत्तरोत्तर बडे दीख पडते है। शाखा पर ये पत्र परस्पराभिमुख दोनो ओर निकलते है। शाखा से अभिमुख पत्रद्वय के निकलने की दिशा प्रत्येक पर्वान्तर पर समान और समीपस्थ पर्व पर पूर्ण विरुद्ध होती है। पत्रवृन्त लम्बा व कठिन होता है। पत्र का ऊर्ध्वपृष्ठ गहरे हरे वर्ण का एवं चिकना होता है और अध·पृष्ठ श्वेताभ हरित वर्ण का एवं उभरी हुई सिराओ से युक्त होता है। पत्रोदर मे एक मध्यरेखा स्पष्ट उभरी हुई दिखाई देती है उस मध्यरेखा से भी पत्रान्त मे जाती हुई रेखाये परस्पराभिमुख नही निकलती, प्रत्युत किंञ्चिद् अन्तर देकर निकलती है। इन रेखाओ (सिराओ) के अतिरिक्त और भी सूक्ष्म सिराओ की प्रशाखाये पत्र पर प्रसृत दीख पडती है। पत्राग्र नुकीला, मध्य-स्थूल एवं अन्त तनु होता है।

शाखा का बाह्यावरण मृदु, स्निग्ध होता है इसके भीतर काष्ठ भाग होता है। इस प्रकार शाखाक भी ३ स्तर विभक्त होते है :—

१—त्वगभाग
२—मध्य पेशी भाग
३—काष्ठ भाग

काष्ठ भाग के भी ठीक मध्य मे कुछ मज्जाशवत् प्रतीति होती है। काष्ठ भाग की रचना तन्तुमय होती है।

अनुप्रस्थ विच्छेद मे मध्यमज्जा के अतिरिक्त मध्य विन्दु दिखाई पड़ता है इसको आवृत करती हुई एक गोल-परिधि की रेखा भी दृष्टिगोचर होती है।

अनुलम्बच्छेद मे काष्ठ का तन्तुमय भाग स्पष्ट हो जाता है तथा मज्जा का धूसर भाग भी संहत-सा दृष्टिगोचर होता है।

परिमाण :

भार : १५ गुजा

दैर्घ्य : ६" इंच

आयाम : १ से ६"

वर्ण :

प्राकृत : हरित

कषे : हरित

दाहे : कृष्ण

भंगे : हरित

चूर्णे (कल्क) : हरित

क्वाथे : हरित पीत

तैले : पीत

घृते : पीत

विलेयता :

जल,	तैल,	घृत
+	+	+

गन्धविज्ञान :

शुष्क : अवसादन

आर्द्र : मृदु गन्ध

धूपनकालीन : उग्र गन्ध

रस : तिक्त

स्पर्श : मृदु, शीत, लघु

शब्द : भङ्गुर

भग्नकालीन = चर्र शब्द

गणविनिश्चय :

तिक्त रस प्रधान होने के कारण यह द्रव्य वायव्य है ।

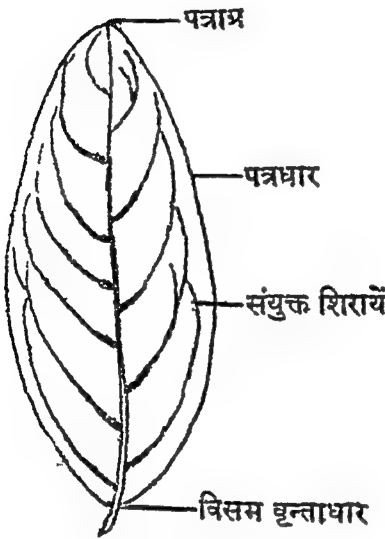
सनाय की पत्तियाँ । सेनी फोलियम
(Senae folium)

नाम : स्वर्णपत्री । सनाय । सनामक्की ।

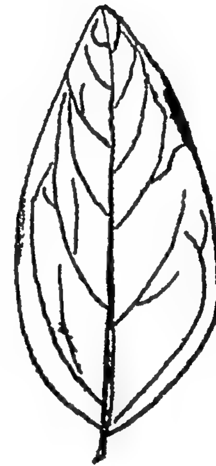
वर्ग : शिम्बी कुल : लेगूमिनोसी . (Leguminoceæ)

प्राप्ति स्थल : यह सनाय की दो जातियो से प्रात होने वाला पत्र है ।

जो कि शुष्कावस्था मे प्रयुक्त होता है। इन्हे कैसिया–अगूस्टी–फोलिया और कैसिया-एक्यूटी-फोलिया कहते हैं। व्यापारिक नाम टिनेवेली सेना और एले-क्जेन्ड्रियन सेना कहते हैं। इसमे की प्रथम कैसिया अगूस्टी कोलिया भारत धर्ष से और एक्यूटी फोलिया मिश्र देश से प्राप्त होती है। अरब मे मिलने वाली सनाय भी बाजार मे आती है।



चित्र ९९ भारतीय



चित्र १०० एलेक्जेड्रियन

इनके स्वरूप विज्ञान के लिए दोनो के तुलनात्मक विवरण साथ-साथ दिए जा रहे है।

आकृति विज्ञान : भारतीय सेना से एलेक्जेन्ड्रियन सेना का पत्र अधिक टूटा हुआ बाजार मे मिलता है।

विवरण	भारतीय	मिश्र देशीय
पत्रवृन्त	अनुपस्थित	अनुपस्थित
बनावट	संयुक्त पेरी पिन्नेट	स० पेरी पिन्नेट
शिराये	एकान्तरित	एकान्तरित
पत्रधार	अखण्डित, अन्तर भुग्न	अखण्डित, बहुत कम अंतः भुग्न
पत्रशिखर	कम तीच्णाग्र	तीक्ष्णाग्र
स्तर	कम परिपुष्ट	परिपुष्ट
आकार	भल्लाकृति	भल्लाकृति किन्तु अण्डाकार
वर्ण	हरित पीत	हरित पीत

स्तर	पतला नमन शील	पतला भंगुर
आयतन	२ से ३. ५ से० मी० लम्बा	ढाई से पाँच से० मी० लम्बा
गंध	सामान्य	सामान्य
रस	ईपत तिक्त, पिच्छिल, कषाय	पिच्छिल तिक्त, कषाय,
गण	प्रायश : तिक्त कषाय होने से वायवीय वर्ग का है ।	

चूर्ण का वर्ण :

वर्ण : पीत हरित से पीत वर्ण तक ।

गंध : विचित्र किस्म का सनाय के गन्ध से मिलता-जुलता ।

रस : तिक्त विचित्र किस्म का कषाय रस मिश्रित ।

इसके अतिरिक्त इसमे पत्र शिराये, पत्राधार के अश और पिच्छिल वस्तु हरित वर्ण व केलसियम और आवझलेट के अंश पाये जाते है ।

मिश्रण : सनाय मक्की । वम्वई व अरेवियन सनाय इसमे मिले हुए आते है । कभी-कभी इसमे देशी सनाय के जिसे आवर्तकी कहते है इसका भी भाग मिला हुआ मिलता है किन्तु यह आकार-प्रकार मे वडे और गहरे रंग के होने के कारण तथा शिरायेंपरिपुष्ट होने से सरलता से पहचान लिये जाते हैं ।

*तगर : वालकम् : वैलेरियन वैलिची

(Valarian Valıchı)

नाम : सुगंधवाला, वालकम् ।

वर्ग : जटामासी ।

चरक : तिक्त स्कंध ।

सुश्रुत :

आकृति विज्ञान : यह सुगन्ध वाला नाम के क्षुप का मूल है जो कि वैले-रियाना वालिची नाम के पौधे के मूल से प्राप्त होता है । आज कल बहुत से वैद्य इसे तगर के नाम से पुकारते है । यह ५ सेटीमीटर लम्बा और ५ से १० मिलीमीटर व्यास मे पतला नलिकाकार, झुका हुआ होता है । इसके मूल के ऊपर पत्र के चिह्न होते है । थोड़ी दूर पर, वृताकार चिह्न तथा उपमूल के चिह्न वहुत वने पाये जाते है। इसका वर्ण काला भूरा गहरे

* यह विषय मूल-प्रकरण का है ।

रंग का होता है। इसके ऊपर के भाग पर पत्र व काड के अवशिष्ट चिह्न होते हैं।

स्थान : भारतवर्ष तथा ग्रेट ब्रिटेन, हालैंड, जरमनी, जापान आदि ।

आकार : यह चार से पाच सेटीमीटर लम्बा होता है। इसके उपमूल २ से १० सेंटीमीटर लम्बे होते है। यह पतले नलिकाकार वहुग्रथियुक्त टेढी, सिकुडी हुई कमी चपटे आकार की जड की तरह मिलती-जुलती आकार की होती है।

वर्ण : गहरा काला भूरा।

गंध : सुगंधित।

रस : मधुर, सुन्धित, ईषत्तिक्त।

भग : सरलता से टूट जाता है।

स्पर्श : रुक्ष, खर, कठिन।

वर्ग : प्रायशः मधुर व ईषत्तिक्त होने से यह पार्थिव द वर्ग का है।

विशेपता : इसका विशिष्ठ गन्ध व मूल मध्य की रचना है।

च्छेदन : छेदन मे ऊपर हल्का त्वगीय भाग तथा नीचे कठिन काष्ठ मय अश प्राप्त होता है। इसमे पोषक तत्त्व अधिक होते है। जो कि स्टार्च के रूप मे मिलते है।

सगठन : इसमे सुगन्धित तैल, राल का अंश, चेटिनीन, वैलेरियेनीन, स्टार्च व पिच्छिल तत्त्व मिलते है।

मिलावट : इसमे वेलेरियाना अंगुस्टि फोलिया, वेलेरियाना आकिसि नेलिस व लैटिफोलिया का मिला हुआ भाग रहता है।

भेद : विदेशी वेलेरियाना आकिसी नेलिस का मूल अधिक मोटा और सुगधित होता है। विदेशी फर्म इसको ही प्रयोग मे लाते है।

नोट : जापानी वैलेरियन के कई भेद इससे मिलते-जुलते मिलते है।

भांग के पत्र : लीव्स आफ कैनाविस इंडिका
(Leaves of Canabis Indica)

नाम : गंजा, भंगा, मातुलानी, मादनी, विजया, जया।

चरक : मादक।

सूश्रुत :

प्रा॰ वर्ग (Moraceæ)

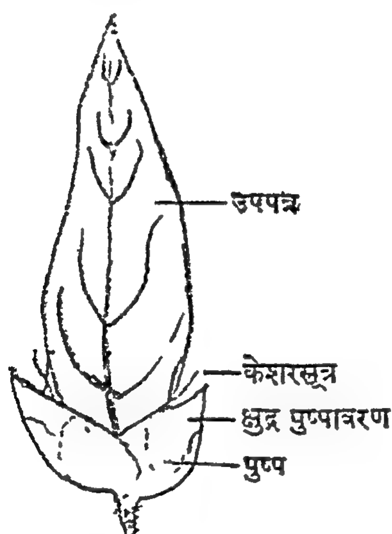
प्राप्ति स्थान : यह भाग की परिपुष्ट पत्तियां है जो कि इसके पुष्पकाल मे पाई जाती हैं और इनका संग्रह किया जाता है। इसका नाम कैनाविस

सैंटिवालिन है। वास्तव मे इनका संग्रह तब किया जाता है जब कि पत्तिया पुष्ट हो और उनमे का निर्यास न निकाला गया हो।

संग्रह स्थान : ऊष्ण कटिबंध केदेश, भारतवर्ष और अफ्रिका।

वर्ग : मोरेसी।

आकृति विज्ञान : भाग के पत्र के साथ उसके उप-पत्र, पुष्प व कदाचित् फल भी मिले होते है। अतः इसके साथ सबका मिश्रण पाया जाता है। सम्मिलित वर्ण हल्के हरे रंग का होता है। पत्तिया हरी, चोड़ी, मोटी होती है। इनकी चौडाई १ से १० सेंटीमीटर और लम्बाई १० से ३० से० मी० तक होती है। यह प्राय: टुकडो मे मिलती हैं। शुष्क औषधि मे गंध विशेष किस्म का



चित्र १०१ भागपत्र सपुष्प



चित्र १०२ दर्व्याकार उपपत्र



चित्र १०३ त्रिपत्र आवरण



चित्र १०४ भाग का बीज

और सुगन्धित होता है। भिगोने पर इनकी सुगन्ध विशेष प्रकार की होती है। इनका स्वाद तिक्तप्राय होता है।

शाखाएं : पतली और लम्बाई मे इन पर धारिया पड़ी हुई होती है।

ब्रैक्टस : इसमे दो प्रकार के उप-पत्र मिलते है। साधारण और आनत-रित। दोनो प्रकार के उप-पत्र आकार मे भल्लाकृति होते हैं। पत्रधार अखण्डित और आन्तरित आये हुये और स्टिप्युलेट होते है।

क्षुद्र उपपत्र : यह दो-दो की संख्या मे ब्रैक्ट के कोण से निकले हुए होते है। यह अण्डाकार और अग्रभाग मे तीक्ष्ण होते है।

पुष्प : पुष्प प्राय: पत्रकोण से निकले होते है। इसके उपपत्र कुछ रक्त-पीत वर्ण के होते हैं। इसमे स्त्री जाति के पुष्प पाये जाते है। गर्भाशय एक होता है और वह एक आवरण से ढँका होता है। पुष्प पत्रो के पास से दो स्त्री सूत्र केशर निकलते हैं।

फल : एकाकी शुष्क, अण्डाकृति पीत हरित वर्ण का होता है। इसका बीज बडे अङ्कुर से युक्त व कुछ भ्रूण के लिए शस्य का अंश भी रखता है।

संगठन : एक प्रकार का राल जातीय द्रव्य कैनाविनीन, चोलाइन व सुगन्धित तैल का अंश मिला हुआ होता है।

नोट : बाजार से जो माल मिलता है वह पत्रादि से युक्त होता है। अतः परीक्षा से पूर्व पत्र को मृदु बनाने के लिए इसे २४ घटे अलकोहल मे डुबा कर धोकर के गर्म जल मे १५ मिनट रख कर मुलायम होने पर फुला कर तब परीक्षण और निरीक्षण करते है।

पत्र, उप-पत्र और ब्रैक्ट का चित्र उतार लेते है।

पृश्नी पर्णी के पत्र

नाम : पृश्निपर्णी, पिठिवन, के पत्र।

गण : चरक : अंगमर्द प्रशमन संधानीय, शोथहर।

सुश्रुत : विदारिगंधादि, हरिद्रादि, लघु पंचमूल।

प्राकृतिक वर्ग : पलाशादि।

आकृति वर्णन : यह बाजार से टूटे-टाटे, मुड़े हुए मिलते हैं। इनको पूर्ववत बना कर तब आकृति का रूप लिखने मे सरलता होती है। कभी यह ताजे भी मिलते है। तब आकृति का लिखना सरल हो जाता है। इसके क्षुप वर्षा ऋतु मे अधिक मिलते है ऊंचाई ३ से ४ फीट होती है। पत्र आन्तरिक लगे रहते है। लम्बाई ५ से १५ इंच तक होती है। ३ से ६ इंच तक चौड़े होते है। पत्र वृन्त पतले छोटे व सूत्रवत् होते है। इन पर सूक्ष्म रोम लगे रहते है। एक पत्रवृन्त मे ५ या ६ पत्र लगे होते है। यह दो-दो के जोड़े

में होते हैं। अन्त मे एक पृथक् पत्र रहता है। आगे के पत्रो के वृन्त छोटे होते हैं। प्रत्येक पत्र ६ से ८ इंच लम्बा एक से डेढ इंच चौडा होता है। इनके पत्र धार पूर्ण होते है। धीरे-धीरे आगे को संकीर्ण हो जाते हैं। अग्रभाग कुछ तीक्ष्ण हो जाता है।

पत्र : पत्र पृष्ठ दो होते हैं। ऊपर का भाग रक्त श्याव वर्ण का होता है। नीचे पृष्ठ हरित होता है। ऊपरी पृष्ठ पर भूरापन लिये श्वेत वर्ण के चिह्न होते हैं। यह स्पर्श मे खुरदरे होते है। निम्न पृष्ठ पर सूक्ष्म रोम होते हैं।

शिरायें : इस पर कई शिराये होती है। जिससे आकार जालीदार बन जाता है।

गंध : इसका गंध उग्र होता है।

स्वाद : अम्ल व कषाय होता है।

उपपत्र : पत्र के प्रधान वृन्त के साथ दोनो तरफ दो उपपत्र होते है। इन पर शिरायें उभरी रहती हैं।

वर्ग : प्रायश. कषाय व अम्ल होने से यह वायव्य वर्ग का है।

घृतकुमारी के पत्र (Aloe)

नाम : ग्वारपाठा, कुमारी, घृत कुमारी पत्र।

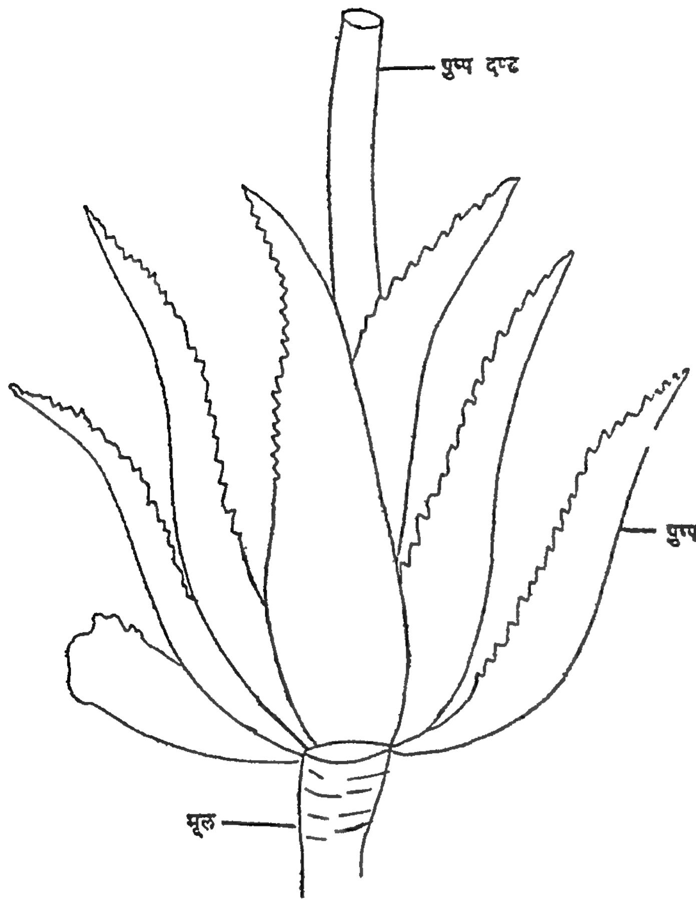
प्राकृतिक वर्ग : रसोन कुल लिलिएसी।

आकृति विज्ञान : यह पत्र सदा हरे प्रयोग मे लिये जाते है।

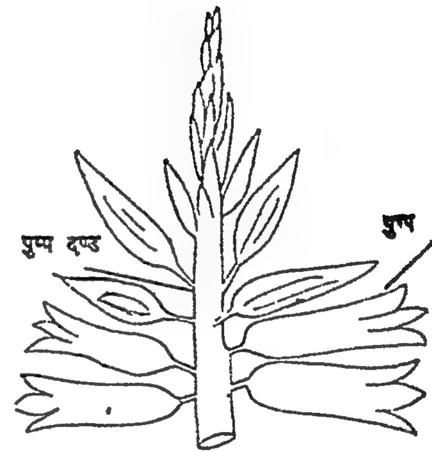
इसके क्षुप २ से ३ फीट ऊँचे होते है। बागो मे लगाये जाते है। इसकी खेती भी की जाती है। मूल से ऊपर काड से पत्र निकलते हैं। यह काड को चतुर्दिक आवेष्ठित करके लगते है। यह मोटे दलदार हरे और एक से डेढ फीट तक लम्बे होते है इनकी चौड़ाई २ से ३ इंच होती है। इसकी मोटाई आधे इच तक होती है। इसके बीच से एक पुष्पदण्ड निकलता है उस पर लाल-बैंजनी रग के फूल लगते हैं।

पत्र : यह अवृन्त पत्र होता है। यह काड को चारो ओर से आवेष्ठित करके चलता है। निकास की जगह वर्ण श्वेत होता है। धीरे-धीरे यह आगे को जाकर हरा हो जाता है। इसकी लम्बाई डेढ़ से दो फीट तक होती है। इसके भेदो के अनुकूल पत्र का आकार होता है। चौडाई २ से ३ इंच तक हो जाती है। कही अधिक भी होती है। यह प्रारम्भ मे चौडे और आगे धीरे-धीरे पतले हो जाते हैं आगे जाकर नोकदार हो जाता है। किनारे भी मोटे होते हैं

इन पर काटे लगे होते है। यह मुडे हुए आधे सेटीमीटर लम्बे होते हैं। पत्र धार पर छिद्र होता है। जो भीतर की तरफ होते हैं। पत्र का बाह्य पृष्ठ



चित्र १०५



चित्र १०६

उन्नतोदर व आभ्यन्तर पृष्ठ नतोदर होता है। बाह्य व आभ्यन्तर पृष्ठ पर श्वेत-श्वेत चिह्न होते है। त्वचा मोटी व रसदार होती है। भीतर का गूदा चमकदार, मोटा व पिच्छिल होता है। इसके बीच-बीच मे कुछ सूत्र भी दिखाई पडते है।

आकृति : तलवार से मिलती-जुलती होती है। दोनो किनारो पर पतलापन आकर धार निकला रहता है। काटे यहाँ पर होते है। जो आरी के दाँत की तरह दिखाई पडते।

दृढ़ता : पत्र दृढ होते है। परन्तु तोडने पर टूट जाते है। इनसे एक प्रकार का चिकना रस निकलता दिखाई पडता है। पत्र के उभय पृष्ट पर दृढ गाढा आवरण लगा होता है जो हरे वर्ण का होता है।

रस : रस प्राय: तिक्त होता है किसी मे मधुर भी पाया जाता है।
गंध : इसमे एक विचित्र प्रकार की गंध आती है।
स्पर्श : पिच्छिल व चिक्कण होता है।
वर्ग : स्वाद मे यह मधुर इर्षत तिक्त होने से आप्य वर्ग का है।

पुष्प परिचय में ज्ञातव्य बाते।

जब किसी पुष्प के वर्णन का विषय उपस्थित होता है तब निम्नलिखित बातो के ऊपर विचार करना पड़ता है।

जहाँ तक हो सके पूर्ण कुसुमदण्ड अथवा इनफ्लोरसेस की परीक्षा करना आवश्यक हो जाता है। इसमे स्पष्ट लिखना चाहिए कि यह पुष्प कलंगी है या गुच्छ मे है अथवा मिश्रित है। पूर्ण पुष्प की परीक्षा कर यह देखना आवश्यक है कि पुष्प का कोई आवश्यक विवरण न छूट जाय।

यथा : यह निममित है अथवा अनियमित है। रेगुलर या जाइगोमारफिक (Regular or Zaigomarphic) यह स्वाभाविक गर्भाशय वाला है अथवा यह नीचे गर्भाशय वाला है या अधःगर्भाशय वाला है। सपुष्प या अपुष्प श्रेणी का है एकलिङ्गी है या उभयलिङ्गी है। गर्भाशय नियमित है या अनियमित है इत्यादि।

इसकी खण्डात्मक परीक्षा मे निम्न बातो का ध्यान रखना आवश्यक है :

बाह्य पुष्पावरण या कैलिक्स (Calix) : बाह्यावरण का स्वरूप क्या है यह कितने पुष्प पत्रो वाला है, यह आपस मे मिले हुवे हैं या पृथक्-पृथक् है। इनके विभाग कितने हैं।

२ : इनका वर्ण क्या है, आकृति क्या है।

आभ्यंतर पुष्पावरण :

१ : इसके पुष्पपत्र कितने है, यह आपस मे मिले हुए गैमोपेटालस है, इनमे२ कितने विभाग हैं।
२ : इनका वर्ण क्या है, आकार क्या है।
३ : इसमे शिराओ का विभाग कैसा है।
४ . इसमे तैलग्रंथिया उपस्थित हैं या नही।

५ . पुष्पपत्र और केशरो का आपसी सम्बन्ध कैसा है ।

पुंकेशर :

१ : पुंकेशर कितने है ।

२ : यह केशर पृथक् है या पुष्प-पत्र से संयुक्त है । (मोनाडेलफस)

३ : पुंकेशर की लम्बाई क्या है ।

४ : पुष्प के परागकोष का स्वरूप क्या है । कोषयुक्त है अथवा ये छिद्र-युक्त है ।

स्त्री केशर :

१ : इनकी संख्या क्या है । यह संयुक्त है या स्वतन्त्र है ।

२ : स्वाभाविक श्रेणी के है अथवा हीन श्रेणी के है ।

३ : स्त्री केशर के सूत्र की लम्बाई क्या है । सूत्र, नलिका, योनि छत्र व गर्भाशय का स्थान क्या है ।

४ : केशर के ऊपरी भाग स्टिग्मा का क्या रूप है ।

५ : गर्भाशय पुष्पस्थालक और स्थालछ सख्या व आकार क्या है ।

इन सारी बातो का विवरण क्रमिक रूप से पुष्प के विवरण मे आ जाना चाहिए ।

केशर पुष्प की पहचान : कस या सैफरान :
(Crocus Safron)

नाम : केशर । ककुम । काश्मीर । घुसृण । बाह्लीक ।
वर्ग : केशर कुल । इरिडेसी ॥
चरक : शोणिता स्थापन ।
सुश्रुत : एलादि ।

परिचय : बाजार का केशर क्रोकस सैटाइवा के पुष्प का स्त्री केशर के अग्र भाग का शुष्क भाग है । यह अति प्राचीन काल से काश्मीर मे मिलता आ रहा है । इसके अतिरिक्त यह फ्रास मेसिडोनिया पर्शिया व अमेरिका आदि देशो से तैयार करके द्रव्य के रूप मे वाजार मे आता है ।

इतिहास : केशर भारत वर्ष का सबसे पुराना औषध द्रव्य है । वैदिक काल से ही इसके इतिहास का पता चलता है । यह मंगल द्रव्य और औषधि

द्रव्य के रूप मे सदा से प्रयुक्त होता आ रहा है। भारतीय निघंटुकारो ने इसका नाम ही काश्मीर इसीलिए रखा था कि यह काश्मीर से प्राप्त होता था। भारत वर्ष के साथ व्यापार के वढने के वाद जव इसकी पूर्ति यहा से न हो सकी तव वाहर से भी यह आने लगा और प्रथम वार वाह्लीक या बलख से लिया गया। अत इसकी सज्ञा वाह्लीक भी पडी। पूर्तगाल वालो के सपर्क के वाद यह वहा से भी आने लगा। केशर के व्यापार के विषय मे दशवी शताव्दी का समय स्पेन से और चोदहवी शताव्दी इगलैड के लिए मानी जाती हे। इंगलिश केशर की उपज विशेष रूप से १७१८ ईस्वी मे पैदा किया गया था। भारतीय केशर ईस्वीय सन् से कई हजार वर्ष पूर्व चिकित्सा मे व्यवहृत होता था। देवी देवताओ के पूजन मे चदन के साथ इसका उपयोग वरावर होता था। रघुवश मे रघु के दिग्विजय मे उपहार स्वरूप इसका देना प्रतिपादित है। अव भी अधिकाश भाग भारत मे काश्मीर से ही मिलता है। शेष भाग वाहर से आता है।

संग्रह और खेती :

केशर विशेष कर ७००० फीट की ऊँचाई के प्रदेशो मे पाया जाता है। इसका रोपण जुलाई और अगस्त मास मे विशेष प्रकार की तैयार की हुई भूमि मे किया जाता है। रोपणार्थ २० सेटी मीटर चौडी और १८ सेटी मीटर लम्बी नालियां वनाई जाती है। और इसका कद १ या २ सेटी मीटर की दूरी पर रखते चले जाते हे। प्राय. इसका प्रथम पुष्प कालसितम्वर में या अक्तूवर मे होता हे। इसके वाद प्रत्येक कंद से छोटे छोटे कद और निकलते हैं। फिर इनमे पुप्प निकलते। और रक्षन का सग्रह किया जाता है। इस प्रकार एक कंद से कई कद वन जाते है और इनकी ही सग्रह करके वीज के लिये रखते हैं।

सग्रह : केशरी के स्त्री पुप्प को प्रातः काल एकत्र करके टोकरियो मे रख देते हैं। और संग्रहालय को भेज देते हैं। केशर चेननेवालेइन प्रत्येक पुष्पो से इनके वीच के स्त्री केशर का संग्रह कर लेते है। फिर इकको कृत्रिम गर्मी मे सुखा दिया जाता है विशेष कर इन्हे कोयले की भट्टियो पर वालो की वंधी हुई जाली पर सुखा देते हैं। यह ३० से ४५ मिनट मे सूख जाते हैं। फिर इन्हे शुष्क स्थान पर रख कर ठडा करते है। ९० हजार एक लाख फूलो से ६००० हजार ग्राम अर्थात् गीले केशर मीलते है सुखने पर एक हजार ग्राम रह जाते है।

केशर को एकत्र कर नेपर ये लाल या पीले रंग के दिखाई पडते हैं। ऊपरी भाग गहरा लाल और नीचे का भाग कुछ पीलापन लिये हुये होता है।

काश्मीर मे ऊपरी भाग की मीगरा और नीचे के भाग की लच्छी या गुच्छी करते है। सपूर्ण का संग्रह करने पर इसकी संज्ञा गुच्छी होती है। इसमे बहुत ही सुन्दर मधुर गध तथा स्वाद कटु होती है। इसे चबाने पर थूक भी पीले केशरी रग का हो जाता है। इसकी पहचान अणुवीक्षण यत्र द्वारा सरलता से की जाती है।

मिश्रण : प्राचीन काल से ही मूल्यवान द्रव्य होने के कारण केशर मे मे मिलावट का सदा से विवरण मिलता है। इसमे तत्सम पुष्पो का समावेश करना बडा ही सरल कार्य रहा है। इससे मिलते जुलते कई पुष्प होते है। यथा :

१ : कुसुम्ब के केशरी ठीक इससे मिलते हुवे है।
२ : कैलेन्डुला आफिसिनेस या चाइनीज सैफलावर ,
३ कॉरथेमस पिंक टोरियस या इडियन सैफलवर,
४ : अरनिका मोटाना।
५ . ओनोपारडनसिवथोरपियन।

६ · आजकल बाजार मे कृत्रिम कामजो के कटे हुवे या आम्र की झिल्लियो को सुखाकर पतला काट कर रंग देकर केशर जैसा वना देते है और यह नकली केशर बहुत ही सस्ता बिकता है।

ऊपर कथित पुष्प केशर अपने प्राकृत रूप मे या रग कर मिलाये जाते है। कुछ वर्ष पूर्व लाइपेरिया एट्रो पर प्यूरा का केशर भी बाजार मे केशर के नाम से विकता था।

परीक्षा · विशुद्ध केशरी की परीक्षा निम्न रूप से की जाती है :

१ : गंधकाम्ल के ऊपर यदि केशर को छिडका जाय तो उसके ऊपर गहरे बैंजनी रग का वर्ण दिखाई पडता है। किन्तु यह परीक्षा ठीक नही है। क्योकि इस प्रकार के रूप कई पुष्पो के होते है।

२ : केशर ईथर। पेट्रोलियमस्प्रिट मे अपना रग कम प्रकट करता है। इसका वर्ण पानी मे शीघ्र ही घुलता है। .१ ग्राम पानी को ५० मिली मीटर को पीला रग देता है।

३ . केसर जलाने पर ५ से ७ प्रतिशत तक भस्म मिलती है। इससे अधिक होना किसी निरीन्द्रिय पदार्थ के मेल का द्योतक है। जो बुद्धिमत्ता से रंग कर मिलाई गई है।

४ : केशर मे ९ से १४ प्रतिशत आर्द्रता रहती इससे अधिक मात्रा का

होना इस बात का द्योतक है कि इसमे शर्करा या मधु अथवा ग्लिसरिन या लवण द्रव का अश मिश्रित है।

५ : कर मे २ २२ से २ ४३ नाइट्रोजन के द्रव्य प्राप्त होते है। रासायनिक परीक्षा मे विश्लेपण से इसे प्राप्त किया जा सकता है।

कुंकुंम के संगठित तत्व :

१ : क्रोसिन नाम का एक ग्लाइकोसाइडल तत्व जो रंजक तत्व है इसमे मिलता है।

२ . वर्ण रहित तिक्त पदार्थ पिक्रो क्रोसिन

३ : उडन शील तत्व ' वोलेटाइल आयल

४ मधुच्छिष्ट का भाग

प्रयोग : कुकुम का प्रयोग औपधि के रूप मे अधिक नही होता जितना यह सुगंध द्रव्यो के निर्माण मे व्यय होता है। इमे रजनार्थ तेल घृत व मोदक मे शक्त आदि मे तथा पाक व अवलेहो मे इमे डालते है। इसका प्रयोग स्वाद व सुगधी डालने के लिए भी होता है।

काश्मीर के लोग इमे प्रसूता के वलवर्धनार्थ करते है। सामान्य बल लाने के लिए भी इसका प्रयोग होता हे। प्रयोग

लवंग पुष्प ' केरियो :

नाम :

लवंग, देव कुसुम, श्री प्रसून ले०, कैरियोफाइलस एरोमेटिकस।

वर्ग : लवंग कुल। मिरटेसी।

भाव प्रकास : चदनादि वर्ग।

परिचय : बाजार मे मिलने वाला लवग इउ जेनिया कैरफिलस नामक लवंग के पेड के पुप्प की सूखी हुई कलियाँ है इसका पेड ३० से ४० फीट ऊचा होता है। अधिक से अधिक ६० फीट तक ऊचा होती है अव इसकी खेती मलाया मे अधिक हरती है। यहाँ से तीन चौथाई लवंग की सप्लाई होती है। जिजी वार और पेम्वा मे इसकी खेती की जाने लगी है। इस समय इसका अधिक निवास यहाँ से ही होने लगा है। पेनाग, सुमात्रा, अम्बोयना, मडेगास्कर और सैलेबीज मे भी खेती होती है। पश्चिमीय द्वीप समूहो मे भी इसकी खेती होती है।

इतिहास : लवग का प्रथम ज्ञान भारतीयो को हुवा था। वैदिक काल से लेकर इसका प्रयोग पाते है ईस्वीय सन से दो हजार वर्ष पूर्व, चरक और सुश्रुत के काल से ही चिकित्सा मे इसका प्रयोग होता आ रहा है। भारत के वाद २२० वी. सी. मे चीन को ज्ञान हुआ था। चौथी शताब्दी मे यूरोप को इसका ज्ञान हुवा। इब्न खुरदाद वाह और मार्कोपोलो दोनो के लेखो से ज्ञात होता है कि जावा से यह प्राप्त होता था। किन्तु पन्द्रहवी शताब्दी मे निकोलो कौटी ने अध्ययन करके बताया कि जावा मे वॉदा से आता था। सोलहवी शताब्दी मे पूर्तगीजो ने मसाले के द्वीपो पर अधिकार जमाया था। डचोने इन्हे १६०५ मे भगा दिया था। १७७० मे फेच भी लवग की खेती करने में सफल हो गये थे। और सुमात्रा मे १८०३ मे खेती होने लगी थी फिर पेनाग गाय, मैडेगास्करजीवार : १८१८ . व पेम्बा इत्यादि मे भी खेती होने लगी।

प्राचीन काल मे भारत वर्ष मे इसकी खेती श्री पर्वत के आसपास होती थी। सारा भारत इसका उपयोग करता था। दक्षिण भारत इसकी सप्लाई का केन्द्र था। दक्षिण भारत मे केरल मालावार एलेपी आदि मे जहाँ जहाँ पर इलायची की खेती होती थी वहाँ वहाँ पर पहले लवग की खेती होती थी परंतु ऐसा ज्ञात होता है कि पश्चात काल मे यह सारी व्यवस्था भग हो गई और यहाँ से पूर्तगाल वाले बीज लेकर अपने द्वीपा मे खेती करने लगे और इनकी सप्लाई स्थान वदल गया।

लवग के पर्याय वारिज शब्द से पता चलता है कि यह अधिक जलीय प्रदेशो मे हुआ करता था। अथवा यह लंका और उसके पास के द्वीपो मे होता था जहाँ पर स्थान पानी से घिरा रहता था श्री पर्वत की खेती व आसपास की खेती वन्द सी हो गई। वैदिक काल से लेकर सहिता काल तक इनकी प्राप्ति यह वतलाती है कि भारत के घर घर मे दिन रात प्रयुक्त होने वाला यह द्रव्य भारत का अति सुलभ था। धनवन्तरि निघटु, राजनिघटुमदनपाल निघटु भाव प्रकाश निघंटु सवमे इसकी प्राप्ति देखी जाती है। घर घर मे यह प्रयुक्त होता था। अव भारत को इसके लिए वाहरी सप्लाई पर निर्भर रहना पडता है।

संग्रह व पहचान : लवंग का पेड जव पुष्पित हो जाता है तव इसका संग्रह का काल तव समझा जाता है जव कि मजरी का वर्ण लाल वर्ण का हो जाता है। लवंग का पेड जव नौ वर्ष का हो जाता है तव उसमे पुष्प आने का काल समझा जाता है। पुष्प मजरी का संग्रह अगस्त व दिसवर मास के

बीच किया जाता है। जजी वार और पेम्बा मे वर्ष मे दो बार संग्रह किया जाता है। इनकी मजरी को चटाइयो पर रख कर सुखाते है। सूखने के बाद इनकी कलियाँ पृथक चुन ली जाती है। यदि सग्रह करने मे और कलियो के तोडने मे देर हो जाती है तो कलियो के ऊपर के पुष्प पत्र गिर जाते हैं और यह मातृ लवंग का स्वरूप धारण कर लेता है। संग्रह कर के इनको डिब्बो मे भर लिया जाता है।

पहचान ' लवंग पुष्प १० से १७ मिली मीटर लम्बे होते है। पेनाग और अम्बोयना का लवग वडा होता है इनकी वडी माँग होती है। किन्तु इतनी इनकी उपज नही होती कि सबको दिया जा सके। जजी वार लवग भी अच्छा होता है यद्यपि कुछ छोटा होता है। यह प्रारंभ से पतला और धीरे धीरे मोटा होता जाता हे इसका पुष्प वृन्त कुछ लम्बा होता है। पुष्पा वरण नलि का कार होता है। इसमे चार कणिकाये होती है। आभ्यन्तर पुष्प भीतर से गोल दिखाई देता है कई अर्द्धगोलाकार पुष्प पत्रो से आच्छादित होने के कारण यह गोल दिखाई देता है। इसके भीतर वहुसख्यक पुष्प केशर होते हैं। जो योनि छत्र के चारो तरफ रहते हैं इसमे एक विशेष प्रकार की सुगध आती है। रंग लाल व काला होता है।

संगठन :

इसमे १५ प्रतिशत सुगंधित उडन शील तेल और १० से १३ प्रतिशत टेनीन, एककापोफाइलिन नाम का रवेदार अंश होता है।

लवंग मे भस्म १-५ प्रतिशत पाई जाती है।

लवंग पुष्प का परीक्षण : कार्योफाइलस एरोमेटिकस ॥

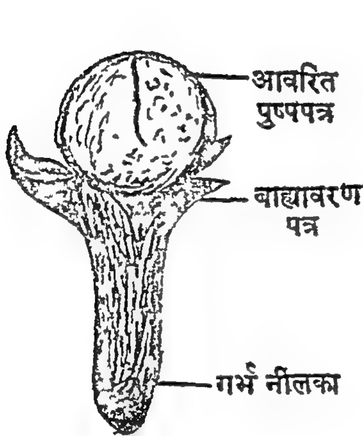
नाम : लवग पुष्प की आकृति प्रारंभ मे नलि का कार व आगे जाकर फैले हुये पुष्प की तरह है। इसका वर्ण श्याम व भूरे वर्ण का है। लम्बाई आध इच है। इसका बाह्य पुष्पावरण पतला नलिकाकार है। जो आगे चलकर चार भाग मे विभक्त हो गया है। इसका प्रत्येक दलत्रिकोणाकार है इसका बाह्यावरण का स्वरूप अन्तर गर्भाशयाश्रित है। इसके आभ्यतर पुष्प का स्वरूप वृत्ताकार है सावधानी से पृथक करे तो दो पुष्पदल अर्द्धवृत्ताकार वडे और दो पुष्पदल छोटे मिलेगे।

इनमे स्त्री केशर बन्द है। वहुत ध्यान पूर्वक देखने पर इसमे ४० पुंकेशर

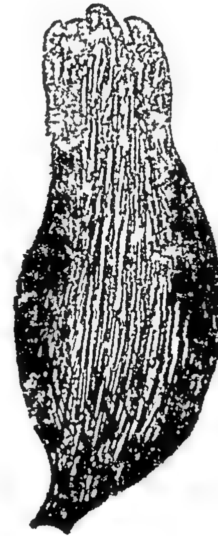
दिखाई पडेते है। वीच मे एक स्त्री केशर शङ्काकार स्थित है। जिसे सव पुंकेशर घेरे हुवे है।

वाह्यावरण के नलिकाकार भाग पर सूक्ष्म सूक्ष्म तेल ग्रन्थियाँ है। इन्है दवाने पर तेल निकल आता है।

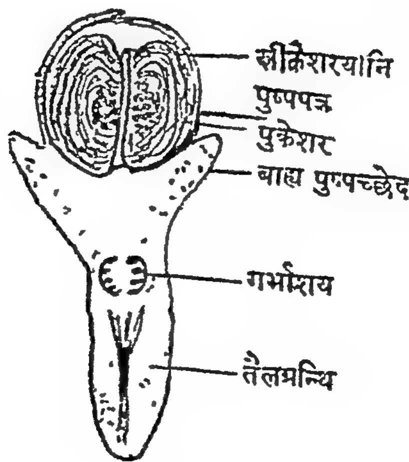
च्छेद लेने पर : इसका अनुलंब छेद लेने पर नलिकाकृति पुष्प बाह्यावरण का वाह्य भाग दिखाई पडता। इसके पश्चात् गर्भ कोष का भाग दिखाई पडता है। अंतरावरण के पुष्प दल पुकेशर सूत्रं स्त्री केशर को आच्छेदित भाग दिखाई पडता है। पुंकेगर केशीर्ष पर द्विवालग्न पराग कोप दिखाई पडता है।



चित्र १०७



चित्र १०८



चित्र १०९

परिमाण : इसका भार १ रत्ती व लम्बाई आधी इंच है।

वर्णपरिज्ञान : प्राकृत वर्ण गहरा भूरा व काला। कपेभंगेश्याम। चूर्ण-भूरा। क्वाथ-बादामी। तैल-पीत। घृत-पीत रक्त।
ज्वाला पीत।

विलेयता : वारि, तैल, घृत व सुरा मे ईषद्विलेय।

रस परीक्षा : प्रायश कटु।

गंध परीक्षा : मृदुसुगध। धूपन मे उग्र।

स्पर्श परीक्षा : कठिन खर रुक्ष लघु।

शब्द परीक्षा : भग्न काल मे कट्। भगुर

गण विनिश्चय : प्रायश कटु व तिक्त होने से यह आग्नेय है॥

पिपरमेंट पचांग परीक्षा। मेंथा पिपरेटा लिन॥

नाम : पिपरमेंट

वर्ग : मेथा पाईपेरेसी।

प्राप्ति स्थान : पिपरमेंट की सूखी पत्तियाँ जब उनका पुष्प काल होता है एकत्र की जाती है पिपरमेंट का तैल इसकी सूखी पत्तियाँ से परिस्रुत करके तब इकट्ठी की जाती है। इसके पूरे पौधो परिश्रुत करके रेक्टी फाइड स्प्रिट के साथ भी उपलब्ध होता है। अमेरिका व इंगलैंड के व्यापार दो प्रकार के पिपरमेंट के पौधो से पिपरमेंट निकालते हैं

१ : मेथा पिपरेटा वाल या ब्लैक मिंट,

२ : मेथा पिपरेटा वाल आफिसिनेलिस सोल अथवा श्वेत मिंट

जापानियो का पिपरमेंट, मेथा-केनाडेसिवार पिपमेस से निकाला जाता है।

इतिहास : पिपरमेंट भारतीय द्रव्य नही जान पडता, यह जापान का द्रव्य जान पडता है। इसकी कई जातियाँ होती है। प्रत्येक प्रकार का पिपरमेंट का काड चौकोर होता है। और मूल आरोही होता है। यह फैलने वाली लता होती है। और काड की ग्रथियो से मूल देकर फैलती है। इसके पुष्पो मे पुष्प के ५ वाह्यावरण के दल होते हैं पाच आभ्यन्तररावण के दल तथा पुकेशर चार और स्त्री केशर २ होते हैं। कालीमिंट जो इगलैड मे बोई जाती है सकेकड लाल इश गहरे हरे वर्ण के पाये जाते है। इनके पत्र हरित वर्ण से कुछ पाटल वर्ण मे परिणत हो जाते है। पत्र ३ से ८ सेंटी मीटर लम्बे तीक्ष्णाग्र

और दन्तुर होते है। इसके पत्ते मे था स्पिकाटा से चौडे किन्तु मे था एक्वेटिका से पतले होते है। ग्रीष्म ऋतु इन पर बैंजनी रंग के पुष्प आते हैं।

संगठन : पिपरमेंट के तैल मे ४ से १० प्रतिशत इस्टर का होता है। जिसे मेथाइल मेथाइल एसिटेट कहते है इसमे ४६ प्रतिशत से कम फ्री मेथल नही होता। कुछ पिरपर मेट मे जो कि व्यापारिक रूप मे पाये जाते है उनका स्वरूप निम्न होता है।

आपेक्षिक गुरुत्व	अमेरिकन	इंगलिश कालामिंट	इग० श्वेतमिंट
गुरुत्व	·९०० से ९१५	·३०६	९०५८
आप्टिकल रोटेशन	१८ से ३५ डि०	२३·५ डि०	३३ डि०
मेथाइल ईस्टर	५ से १४ प्रति०	३ ७	१३·७
फ्री मेथल	४५ से ५०	५९ ४	५१·९
मेथीन	९ से १९	११·३	९ २

जापानी पिपरमेट का तैल ७० से ८० प्रतिशत मेथोल के भाग वाला होता है। और पिपरमेट निकालने के लिए उपयुक्त होता है। मेथोल निकाले हुवे तैल मे (जापानी) इस्टर की मात्रा उतनी ही होती है जितनी अमेरिकन तैल मे होती है।

नाग केशर का पुष्प : मेसुवा फेरिया :

नाम : नाग केशर नागेश्वर, असली नागकेशर।

वर्ग प्राकृतिक : नागकेशरादि वर्ग : गट्टीफेरी।

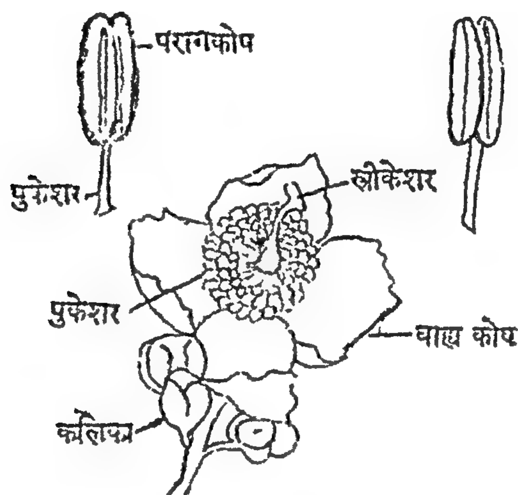
सुश्रुत : एलादि गण। प्रियंग्वादि गण। अंजनादि गण।

भाव मिश्र : चतुर्जात।

आकृति विज्ञान ' नाग केशर चिर हरित रहने वाला पेड है जो कि अधिक ऊचाई पर पाया जाता है। इसकी डालिया अतिशय मृदु होती है। छाल आधा इच मोटा होता है जो पुराना होने पर अपने आप उतर जाता है। भीतर के कोष्ठ का भाग लाल होता है। पत्र ढाई इंच से डेढ पौने दो इच तक चौड़ा होते हैं। पत्र नीचे की तरफ झुके होते है। इस पर फूल लगते है। जो सुगंधित उभय लिंगी होता है। इसका व्यास दो इच तक होता है।

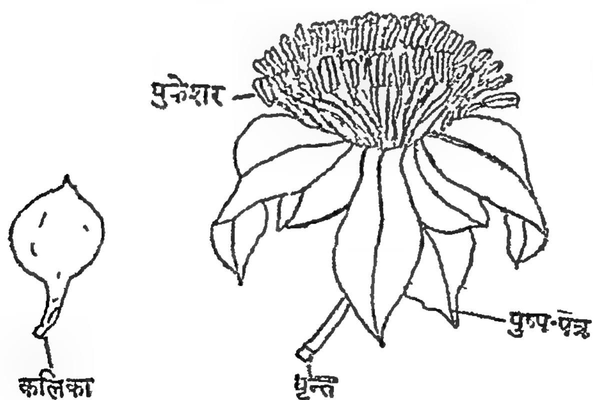
पुष्प का विशिष्ट विवरण : इसके फूल का प्रयोग होता है अतः इसका ज्ञान होना आवश्यक है। नागकेशर के पुष्प का वृन्त आधा इंच तक लम्बा होता है। इसका वाह्य कोष कठिन और चार पत्रक वाला होता है। जो दो

पंक्ति मे आमने सामने होते हैं। इसमे असंख्य पुकेशर होते है इनके बीच मे स्त्री केशर रहता है जिसका आकार सर्प के फण की तरह होता है। इसके आधार पर ही इसका नाम नागकेशर हुवा है। वाह्य आवरण के पत्र वर्क भी पुष्पित होने पर सर्प फण की तरह मुड जाते है। इसका गर्भाशय दो प्रकोष्ठ



चित्र ११०

का होता है स्त्री केशर का भाग भी दो भागो मे वटा हुआ दिखलाई पडता है पुकेशरो का वर्ण स्वर्ण वर्ण का होता है। शुष्क पुष्प मे गर्भाशय भी कुछ मोटा दिखाई पडता है। आगे की नली पतली और अग्र भाग फण वत चौडा होता



चित्र १११

है। अतः नागवत केशर होने से नाग केशर नाम दिया गया है। इसे इंग्लिश मे कोवरा सैफरन कहते है। पुकेशरो का अग्र भाग भी सर्प फण की तरह चौडा

होता है। इसमे एक अच्छी सुगंधी आती है। परिमाण ' पुष्प भार पाच ग्रेन होता है। इसकी लम्बाई चार सेंटी मीटर चौडाई तीन सेंटी मीटर व उत्सेध आधा इंच होता है।

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण स्वर्ण वर्ण। वाह्य आवरण कुछ श्यावता के लिये पीत। कषे भगे: लाल

चूर्ण : गाढ रक्त वर्ण पुराने पर रक्त श्याव। : किंचित पीत।

तैल घृत : पीत। ज्वाला : रक्त।

विलेयता : तैल घृत व जल में पकाने पर किंचितन।

रस : प्रायश कषाय अनुरस तिक्त।

गन्ध ' सुगंधित। तैल मे अधिक टिकने वाला गंध।

स्पर्श : लघु, रुक्ष।

शब्द परीक्षा : भंगुर, ज्वलन कालीन' चटचट।

वर्ग ' प्रायश' कषाय होने से व अनुरस तिक्त होने से वायव्य वर्ग का है।

नाग केशर बाजारू। द्वितीय : अ क्रो कार्पसलांफोलियस

नाम : रक्त नागेश्वर। छोटा नाग केशर।

वर्ग : नागकेशरादि।

आकृति विज्ञान : इसके पेड गुंवजा कार वडे वड़े भाग पर गोल दिखाई पडते है काड त्वच इर्षत् लाल धूसर वर्ण की होती है। मोटाई आधे इच तक। पत्र ५ से ९ इंच लम्वे दो ढाई इच चौड़े होते हैं। पत्र वृन्त कठिन प्रारम्भ मे पत्र गोलाकार आगे लम्व गोल पत्राग्र नोक दार होता है पत्र शिरा मोटी होती है ७ से ८ जोडी सिरार्थे पत्र पर होती है। इसके पत्र कोण व शाखा पर पुष्प लगते है। जो कि गुच्छाकार मे निकलते हैं।

पुष्प का विशेष विवरण :

पुष्प के वाह्य मे चार पत्र दल होते है आभ्यंतर को मे भी चार पुष्प दल होते हैं। जो भीतर की तरफ मुड़े होते है।

पुष्प वृन्त के आगे की रचना वृत्ता कृति होती है पुष्पाग्र कुछ नोकदार होता है। वृन्त चौथाई से आधे इच तक लम्वा पतला होता है। पुष्पित होने पर वाह्य व आभयन्तर दल फैल जाते है और केशर वाहर निकल कर पीतत्र नारंगी वर्ण का दिखाई पडता है। इसके पुष्प की कलियो को पुष्पित होने से 'पहले' ही सग्रह कर लेते है जव तक की गोल गोल रहती है और सूलने नही

पातीं। इसको पुन सुखा लेते है। और इसमे अच्छी सुगंध आती है। सूखने पर भीतर का केशर सूख कर एक गोलाकार आकार वनता है इसको मसलने पर पुंकेशर पृथक पृथक हो जाते है। यह छोटे व वहु संख्यक होते हैं। इसके वीच स्त्री केशर होता है। जो प्रारम्भ मे मोटा वीच मे पतला और अत मे छत्राकार या नाग फणाकार होता है। इसके चारो ओर पुकेश सटे होते है। इसमे भी सुगध आती है वर्ग भी एक ही है और रचना भी समान हुई है। केवल पुष्प छोटे व वडे होते है व केशर वडे होते है।

परिमाण : १ पुष्प का भार एक ग्रेन होता है। लम्बाई पाँच मिली मीटर व चौडाई ३ मिली मीटर होती है। मोटाई २ से ३ मिली मीटर होती है।

वर्ण : शुष्क पुष्प : लाल वर्ण का। नवीन रक्त श्याव।

कपे भंग : रक्त श्याव। चूर्णः : उक्त वर्ण। क्वाथ : पीत वर्ण। घृत तैल : ईषत पीत।

विलेयता : तैल घृत व वारि मे ईषत्।

रस परीक्षा : प्रायशः कषाय अनुरस तिक्त।

गंध : सुगध।

स्पर्श परीक्षा : मृदु लघु श्लक्ष्ण भंगुर।

शब्द परीक्षा : भगुर द्रव्य गत : ईषत् झनझनाहट वत।

वर्ग : प्रायश कषाय होने से वायव्य वर्ग का होता है।

वीज परीक्षण कैज्ञातव्य

(General Method of examination)

सामान्य विवरण :

किसी वीज की परीक्षा करने मे साधारणतया निम्न वातो का ध्यान रखना उचित है। यदि वनौषधि का सामान्य विवरण ज्ञात रहे तो आगिक विवरण मे सरलता उत्पन्न हो जाती है। यह परीक्षण को सुगम वना देते है : यथा :

आकार प्रकार : (Size)

जिस किसी वीज की परीक्षा करना हो उनके आकार व प्रकार के ज्ञानार्थ उसके १० या २० वीज को लेकर मापना चाहिए। छोटे से छोटे और बडे से वड़े दोनो का माप लेकर औसत लम्वाई या चौडाई निकालना चाहिए। यदि वीज छोटे हो तो एक या आधी इच की रेखा खीच कर उस पर दोनो को लम्वाई या चौडाई मे रख कर उनकी औसत लम्बाई या चौडाई निकाल लेनी

चाहिए। यह औसत लम्बाई चौडाई वमोटाई ही आकार प्रकार मे लिखना चाहिए।

२ : आकृति : (Shape) गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण इत्यादि।

३ : सतह (Surface) · इसमे मूर्त गुणो को यथा मृदु, कठिन लोमश भासुर। धारियाँ, सीता एछिद्र या अन्य चिह्न जो भी उस पर ही उन्हे नोट करना चाहिए।

४ : वर्ण (Colour) वर्ण का निर्णय कई वीजो को देख कर करना चाहिए। जल घृत तैल व सुरा आसव आदि मे इसका क्या वर्ण होता है तथा ज्वाला मे क्या वर्ण होता है यह नोट करना चाहिए।

५ : बीजावरण (Seed Coat): वीज के ऊपर या भीतर कितने आवरण है इन्हे लिखना चाहिए।

६ बीज शस्यआदि : (Perisperve) : मिगी के भीतर का वीज शस्य है है या नही है तो कैसा है। इसकी मोटाई लम्बाई चोडाई आदि नोट करे।

७ : गर्भभोज्य (इन्डोस्पर्म) है या नही इसका आकार प्रकार वर्ण सभी लिखना चाहिए।

८ : भ्रूण (Embryo) अंकुर की स्थिती नोट करिए। यहाँ पर कैसा है। द्विदल वृन्त आकार आदि की दशा कैसी है।

९ : गर्भभोज्य (Resened food) यह है या नही। किस प्रकार का है।

१० : गंध : वस्तु का गध क्या है। अग्नि मे डाल कर इसकी गध की परीक्षा करना चाहिए।

११ : रस (Taste) रस की क्या स्थिति है मधुर अम्ल कटुतिक्तादि।

१२ : रासायनिक परीक्षा (Chemical Test) : जहा आवश्यक समझा जाय वहा पर करना है। शब्द या है नही। तोड़ने से क्या शब्द होता है। भंगुर है या अभंगुर।

वर्ग निर्णय : वर्ग का निर्णय सुश्रुत की पद्धति द्वारा की जाती है। जैसा रस होता है उस द्रव्य का वर्ग निर्णय किया जाता है।

विशेपता : द्रव्य मे कोई विशेपता हो तो उसे भी स्पष्ट रूप मे नोट करना चाहिए। यह भी परिचय मे सहायक होता है।

जायफल : (Miristica Phragrance)

नाम : जातीफल, जायफल

वर्ग : जातीफलादि वर्ग : मिरिस्टिकेसी।

चरक : सुश्रुत के गण :

आकृति विज्ञान : यह मिरिस्टिका फ्रेगरेंस नामक वृक्ष का फल है इसे जायफल के नाम से पुकारते है। वास्तव में बाजार मे मिलने वाला द्रव्य फल है इस पर आवरण नही होता। यह आकृति मे दो प्रकार का मिलता है। एक अंडाकार व छोटा दूसरा बडा वृत्ताकार लम्ब गोल। इसका वर्ण नया रहने पर श्वेताभ भूरा होता है। इस पर किंचित उठी हुई धारिया प्रतीत होती है। फल के नीचे वृन्त का भाग और ऊपर को एक हल्का सा नोकदार भाग होता है। वृन्त के भाग से निचले भाग तक पृष्ठ पर उभरी हुई रेखा दिखाई पडती है। इसी रेखा पर वृन्त के पास कुछ नीचे भ्रूण का भाग दिखाई पडता है। यदि ऊपर का गहरे भूरे रग का छिल्का हटावे तो नीचे भूरे रग की मज्जा दिखाई पडती है। यह २० से ३० मिली मीटर लम्बा और २० मीली मीटर व्यास का होता है।

आवरण : इस पर का आवरण हटा कर वेचते है अत आवरण नही मिलता। कभी कभी आवरण सहित मिलता है।

व्यत्यस्त च्छेद ' चौडाई मे इसकाछे द लेने पर इसमे तीन भाग दिखाई पडते है।

१. बाह्य त्वक्, २ ' अतस्त्वक्, ३ ' आभ्यतर का मज्जा का भाग।

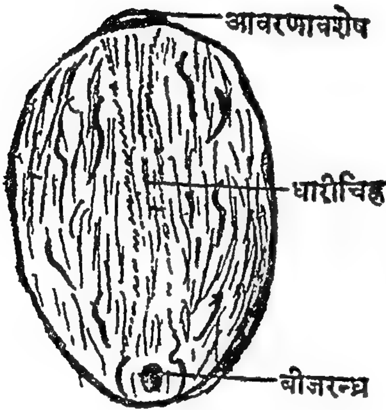
बाह्य त्वक् : यह कठिन कृष्ण तथा भगुर होता है। अन्दर से धूसर दिखाई पडता है।

अंतस्त्वक् : यह बीज के ऊपर की तनु कला है जिसको जावित्री कहते है। जो पीले वर्ण की होती है और फल से हटा कर निकाल ली जाती है।

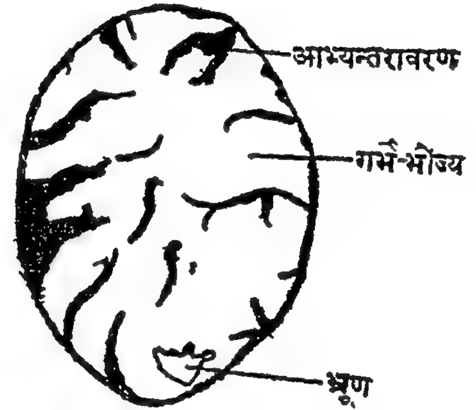
आभ्यतरभाग : यह सुपारी की तरह होती है। ऊपर का भाग श्वेत व भूरे रंग का दिखाई पडता है। छेद करने पर बीच का भाग मृदु कोमल स्निग्ध सुगधित व श्वेत बादामी वर्ण का दिखाई पडता है। ध्यान से देखने पर भ्रूण का भाग वृन्त व दल सहित दिखाई पडता है। गध विशिष्ट प्रकार की होती है।

परिमाण : ३ माशे तक का मिलता है।
वर्ण : ऊपर से भूरा श्वेत पीत भीतरको।
ज्वाला का वर्ण ' रक्त पीत।
कषे भंगे ' कत्थई। चूर्ण हल्का बादामी।

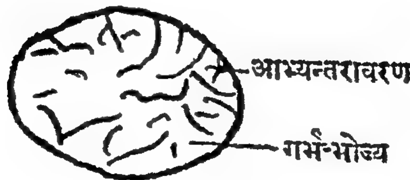
क्वाथ : बादामी। तैल व घृत बादामी।
रस : प्रायशः कटु तीक्ष्ण व तिक्त प्रतीत होता है।
गंध : उग्र गंध शुष्क व सुगधित।
विलेयता . वारि व तैल मे अल्प।
स्पर्श : कठिन रूक्ष गुरु ॥
शब्द : जलाने पर : चिड़ चिड।
गण : प्रायशः कटु होने से यह तैजस वर्ग का है।
तैल : इसमे एक प्रकार का सुगधित स्थिर व उड़न शील तैल पाया जाता है।



चित्र ११२



चित्र ११३

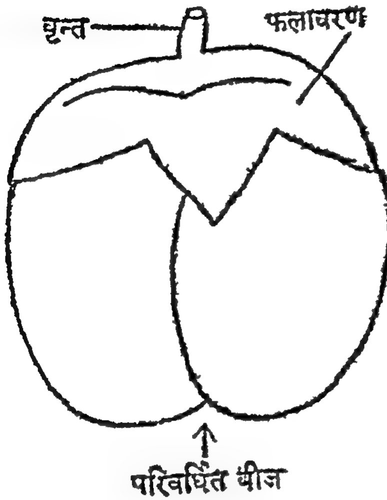


चित्र ११४

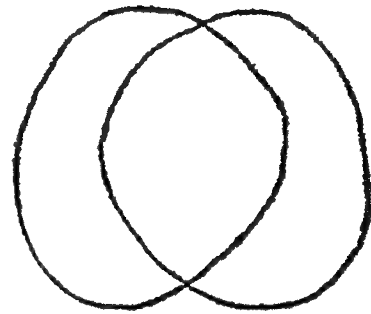
गंध प्रियंगु की परीक्षा : कैलिकारपामैक्रोफाइला
(Callıcarpa macrophyla)

वर्ग : निर्गुंडी कुल : वर्विनेसी। (Verbenacae)
चरक : पत्र विरजनीय। मूत्र संग्रहणीय। अंजनादि।
सुश्रुत : प्रियग्वादि।

यह एक वृत्ताकार सूक्ष्म फल है। आकार प्रायः गोर सर्षप के बराबर होता है। इसके वृन्त का भाग स्पष्ट परन्तु छोटा सा दिखाई पड़ता है। वृन्त के आगे पुष्पावरण का भाग फलावरण के रूप मे दिखाई पड़ता है। यह बीज के मध्य भाग तक रहता है और इसमे नोकदार चार या पाच पत्रक होते हैं। वृन्त के पास मे दो रेखाये फलाग्र भाग तक जाती है इससे इसके दो भाग बन

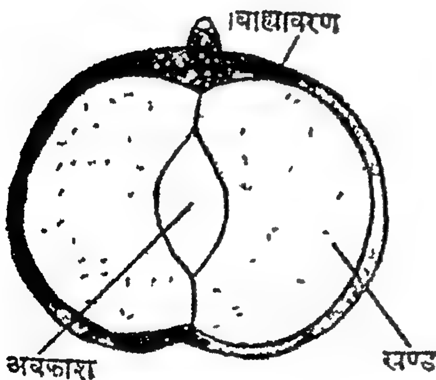


चित्र ११५

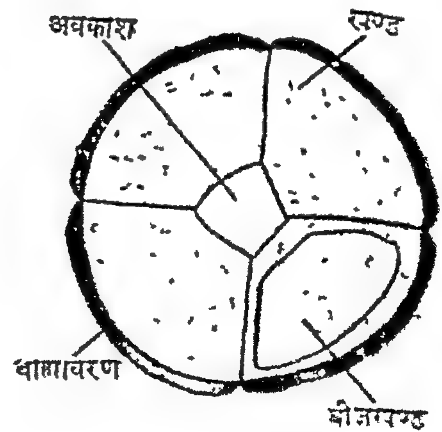


वृन्तहीनफल

चित्र ११६



अनुलम्बच्छेद चित्र ११७



व्यस्तच्छेद चित्र ११८

जाते हैं। प्रत्येक भाग के पुन: दो दो भाग हो जाते हैं। इस प्रकार इसका चार खड हो जाता है। आवरण का भी चार खंड हो जाता है आवरण का वर्ण पीत होता है। आवरण के नीचे के भाग मे फल का कुछ स्निग्ध भाग रहता है जो शुष्क होकर काले भूरे रंग का हो जाता है। इसी से प्रधान खंड बनते हैं। प्रत्येक खड मे दो बीज होते हैं। इनका आकार त्रिकोणाकार होता है

बाहर की तरफ का भाग उन्नतोदर और भीतरी पृष्ठ समतल और चपटे होते हैं। इनका श्यावारुण वर्ण होता है। बीज का ऊपरी भाग नारंगी की तरह गोल शिखर पर दबा हुआ होता है।

छेदन : व्यत्यस्त छेद लेनेपर ऊपर आवरण नीचे गूदे का शुष्क भाग पश्चात बीजावरण उसके नीचे बीज शस्य का भाग होता है।

भार : ५० बीज का भार २ गुञ्जा होता है।

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण श्यावारुण, भगे अरुण वर्ण, दाहे भस्माभ श्वेत, क्वाथे पीत वर्ण, तैल पीत, घृत मे ईषत्पाण्डु, ज्वाला पीताभ।

विलेयता : वारि तैल घृत मे ईषत् होती है।

गंध : मृदुगध सुगंध, धूपन काल मे मृदु सुगध।

रंग : प्रायशः कषाय ईषत्तिक्त।

स्पर्श : कठिन, लघु।

शब्द : ज्वलनकालीन मृदु चट चट-भगुर।

गण : प्रायशः कषाय होने से वायव्य वर्ग का द्रव्य है।

एरंड बीज : सीड्स आफ रेसिनस कम्युनिस लिन्। (Seeds of Ricinuss Communis)

ज्ञातव्य विचार।

१ : एरंड बीज को देखकर उसके आकार प्रकार को चित्रित करिए। इसमे बीज के शिखर पर के श्वेत नाभि नाल को व नाभि चिह्न को चित्रित करिए।

२ : इसके ऊपर के कठिनावरण की व भीतर की मृदु झिल्ली को व स्निग्ध बीज शस्य को अवलोकन करिए।

३ : एक आर्द्र किए हुये बीज को तोडकर उसके बाह्यावरण को देखकर उसके बाहर और भीतर के रूप वर्ण आदि को चित्रित करिए।

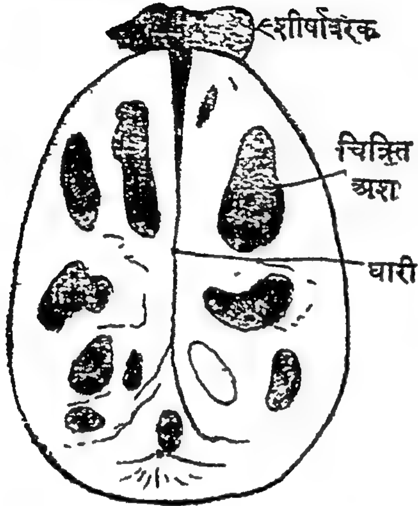
४ : एक लम्बाई मे च्छेद लेकर उसकी मोटाई द्विदलो की स्थिति उनकी स्निग्धता और मृदुता को नोट करिए। इसके भ्रूण और उसकी स्थिति को चित्रित करिए।

५ : इसके स्वाद वर्ण और गंध को तथा इस मे के स्थिर तैल को लिखिए।

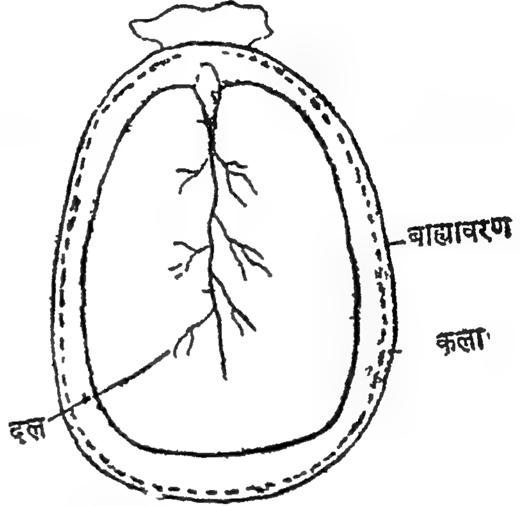
नोट—बीजो को १२ घंटे पूर्व भिगो कर तव उसको प्रयोगार्थ देना चाहिए। यही विधि जयाफल मे भी अपनाना चाहिए।

एरंड बीज (Ricinus communis)

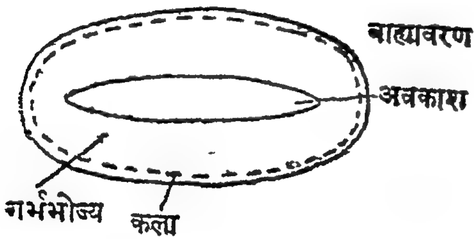
प्रा० वर्ग : एरंडादि वर्ग—इयूफोरवियेसी (Euphorbiaceae) ।
प्राचीन वर्ग : चरक । भेदनीय, स्वेदोपग, अंग मर्द प्रशमन, मधुरस्कंध ।
सुश्रुत : विदारिगंधादि । अधोभाग हर । वातसशमन ।



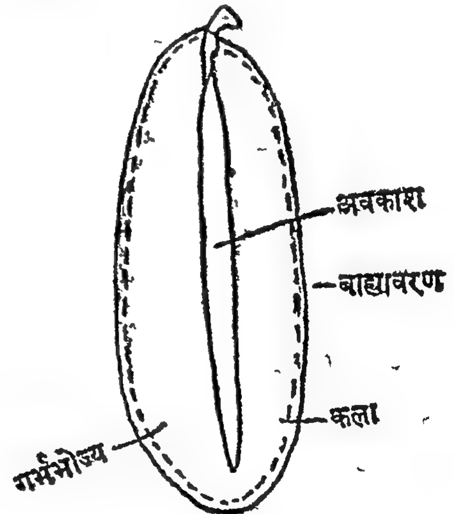
एरण्डवीज चित्र ११९



बीजाकुर चित्र १२०



व्यस्त छेद चित्र १२१



लम्बाई मे छेद चित्र १२२

आकृति विज्ञान : यह श्लक्ष्ण, लम्ब गोल कुछ चपटापन लिए हुए होता है। मूल की तरफ कुछ गोल चपटा होता है। बीज के पृष्ठ भाग पर एक श्वेत रेखा मिल कर शिखर तक जाती हुई दिखाई पडती है। भीतर की तरफ एक रेखाकृत उभार है। पृष्ठ भाग पर कोई रेखा नही है। ऊपरी वर्ण लाल है।

और पृष्ठ भाग चारो तरफ श्वेत चिह्नो से चित्रित है। भीतर की तरफ श्वेत चिह्न मध्य शिरा के उभय भाग मे रहते है। बाहरी भाग पर श्वेत चिह्न अधिक होते है। बीज के शिखर पर एक श्वेतरग का उत्सेध रहता है। इसको भ्रूण कोष या इन्द्रियोसेक कहते हैं। इसके सधिस्थल पर भी भीतर की तरफ एक छिद्र रहता है। इसे नाभि चिह्न कहते है।

बीजावरण : कठिन मसृण, श्वेत चिह्नो से युक्त होता है। यह दृढ ऊपर को उन्नतोदर भीतर की तरफ अवनतोदर होता है। इमके भीतर एक श्वेत वर्ण का स्निग्ध शस्य भरा होता है।

छेदन करने पर : ऊपर बीजावरण और दो भागो वाला होता है।

१ : ऊपर का चित्रमय तनु भाग।

२ : नीचे का दृढ या कठिन भाग।

बीजावरण के नीचे तनुश्वेत कला इसके बाद स्निग्ध मज्जा का भाग।

अनुप्रस्थ च्छेद ऊपर आवरण पश्चात तनुकलावरण नीचे श्वेत शस्य का भाग।

परिमाण ५ रत्ती।

वर्ण : प्राकृतिक। लाल चित्रित श्वेत।

क्वाथ : दुग्धाभ श्वेत, तैल मे रक्त पीत, घृत, ईषत् पीत।

रस : मधुर।

गंध : धूपन मे उग्र, दुर्गन्ध युक्त, मिगी मृदुगंधी।

ज्योतिष्मती सम्बन्धी शिक्षायें

१ : मालकागनी के बीज को सावरण अवलोकन करिए। उसके आकार को ध्यान पूर्वक देखिए। बाह्यावरण की बनावट को नोट करिए और बाहर और भीतर की रचना को देख कर उसे चित्रित करिए।

२ : आवरणरहित बीज सघात को देखिये। ऊपर के पतले पीले वर्ण के फल शस्य के सूखे भाग को पहचानिये।

३ : बीज संघात से बीज को पृथक करिए। इसमे तीन प्रधान खंड और प्रत्येक खंड मे दो-दो बीज आपस मे युक्त मिलेगे। इनके आकार को चित्रित करिए।

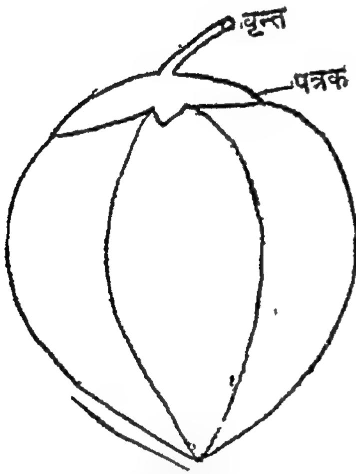
४ : बीज के भीतर की द्वि पत्रक रचना को ध्यान से देखिए। ताल यत्र के प्रयोग से उसकी रचना को चित्रण करिए।

५ : द्रव्य के रस गध वर्ण और स्पर्श का निरीक्षण करके लिखिए।

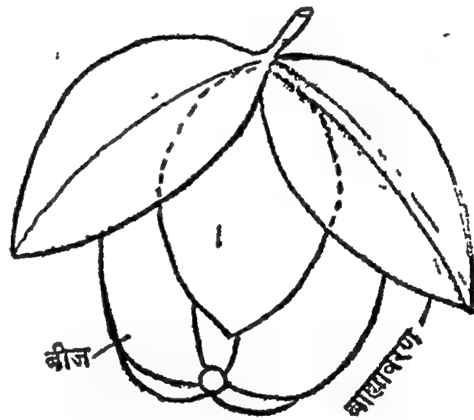
६ : बीज चूर्ण को परीक्षा नली मे रख कर सुरा प्रदीप पर जला करके स्थिर तैल और उड़न शील तैल का अवलोकन करिए।

ज्योतिष्मती—सेलेष्ट्रसपेनि कुलाटा (celestris Paniculata)
प्रा० वर्ग—ज्योतिष्मत्यादि
प्राचीन वर्ग : चरक "शिरोविरेचन वर्ग
सुश्रुत : अधोभागहर व शिरोविरेचन

आकृति व विज्ञान : ज्योतिष्मती के फल के गुच्छे लगते है। हरिति अवस्था मे इन फलो के ऊपर एक दृढ आवरण रहता है। धीरे-धीरे यह बीज पकते है और पोले हो जाते है। इन मे बीज वंद रहता है। सूखते ही फल का आवरण अपने आप फट जाता है।



पूर्णफल चित्र १२३

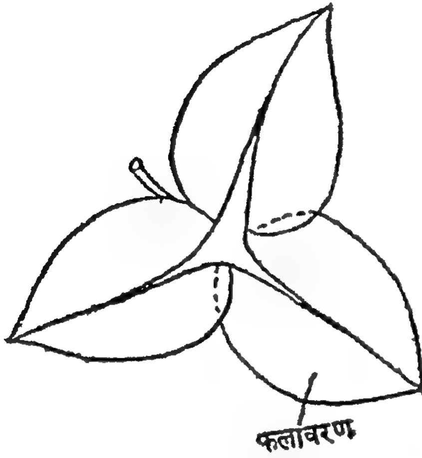


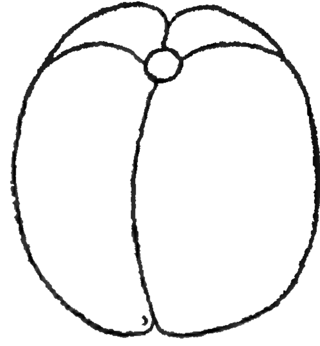
पक्कफल-आवरण-प्रस्फूरित चित्र १२४

फल के मूल पर वृत लगा होता है जिसमे तीन उभार होते है। जो कि मूल भाग पर फैले रहते है। फलावरण तीन बडे भागो मे विभाजित होता है। आकृति पहले पान के पत्ते की तरह प्रारंभ मे गोलाकार आगे को नोकदार होती है। फटने और सूखने पर यह उथला हो जाता है। वाह्य पृष्ठ भीतर को दव जाता है। आभ्यंतर भाग उभरा हुआ होता है। भीतर की तरफ का भाग एक उभार के द्वारा दो भागो मे विभक्त होता है।

आवरण के नीचे आर्द्रावस्था मे जो स्निग्ध गूदा होता है वह सूख कर हल्के लाल वर्ण का हो जाता है। इसके ही कारण सब बीज आपस मे सयुक्त

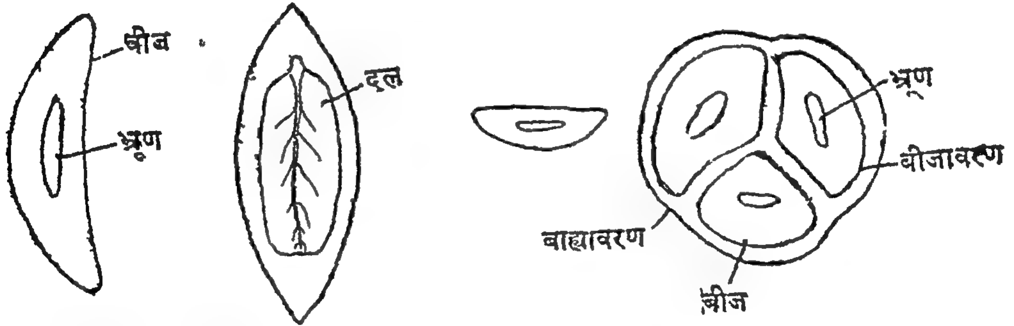
रहते है। प्रत्येक बीज मे ३ से ६ बीज होते है कभी-कभी एक भाग मे २ के बदले ३ भी बीज होते है जिनका आकार त्रिकोणाकार नत होता है।





चित्र १२५ आवरणरहित सगठित बीज चित्र १२६

छेदन : बीज छेदन करने पर भीतर २ द्विदल मिलते हैं। यह सरलता से पृथक किये जा सकते हैं सयुक्त बीजो के छेदन करने पर ऊपर आवरण नीचे तनु आवरण भीतर बीज इस प्रकार तीनो भाग मिलते हैं।



बीजच्छेद बीजाकुर चित्र १२७ सयुक्तबीज का व्यत्यस्त छेद चित्र १२८

परिमाण : फल १ रत्ती बीज आधी रत्ती

वर्ण : प्रकृत ' हल्का कत्थई '' क्वाथ, तैल, घृत मे वर्ण पीत, ज्वाला पीत वर्ण

विलेयता : वारि मे अल्पाश तैल व घृत मे अधिक घुलन शील

रस ' प्रायस: तिक्त : अल्प कटु

गध : उग्र

स्पर्श : कठिन . श्लक्ष्ण लघु : वर्ग प्रायश: तिक्त कटु होने से तैजस है।

मदन फल : रैंडिया ड्यूमिटीरम्

वर्ग : रुबिएसी ।

चरक : फलिनी : ऊर्ध्व संशोधन ।

सुश्रुत : ऊर्ध्वभागहर । आरग्वधादि । मुष्ककादि ।

आकृति विज्ञान : मदन फल का आकार गोल होता है । वर्ण रक्त पीताभ बडे आँवले के बराबर दोनो शिरो पर दबा हुआ चपटा तथा वृंत चिह्न युक्त होता है । इसके ऊपर चार या पाँच धारिया उठी हुई होती है । भीतर इसमे दो कोष होते है । इससे फल भीतर से दो भागो मे विभाजित होता है । प्रत्युक कोष्ठ मे पुन. छोटे दो भाग होते है । भीतर की पिप्पली का वर्ण भूरा या गहरे कृष्ण लाल या भूरे वर्ण का होता है । इस पिप्पली मे इलायची की तरह कई बीज फल मज्जा से चिपट कर एक मे सट कर उभारदार त्रिकोणाकृति वना लेते हैं । यह स्पर्श मे चिकने होते है । सूखने पर कठिन हो जाते है ।

यान्त्रिक विवरण : चौडाई मे छेद लेने पर पहले त्वचा पश्चात् नीचे का वस्तु दर्शित होती है। त्वचा मोटी लाल वर्ण की होती है । आर्द्र करने पर इसमे रक्त बिन्दुसी प्रसरित रेखाये दिखाई पडती हैं । नीचे तनुकला और भीतर धूसर वर्ण दिखाई देता है । मध्यावरण श्यामाभ धूसर वर्ण का होता है । बीच-बीच मे कटे हुए बीज भाग दिखाई पडते है । बीच का व्यवच्छेदक भाग भी मध्य मे दिखाई पडता है ।

भार : ४० गुंजा ।

वर्ण : पीत रक्त । भंगे रक्ताभ । चूर्ण रक्त श्वेत ।

क्वाथ : रक्ताभ । तैल फेन युक्त पीत । घृत पाडुर ।

ज्वाला : पीत ।

विलेयता : वारि में अधिक । तैल घृत मे अल्प ।

गध : शुष्क सुगंध । धूपन मे मृदुगध ।

रस : कषाय व अम्ल ।

स्पर्श : कठिन खर ।

शब्द : ज्वलन कालीन । चरचराहट । द्रव्य गत खडखडाहट ।

गण विनिश्चय प्रायश कषाय रस होने के कारण यह वायव्य है ।

पिप्पली का विवरण (PIPER LONGUM)

नाम : पिप्पली । पीपल । पीपरि ।

गण : चरक । कासहर । हिक्का निग्रह । शिरोविरेचन । वमन । तृप्तिघ्न । दीपनीय शूल प्रशमन ।

सुश्रुत : पिप्पल्यादि । शिरोविरेचन आमलक्यादि ।

प्राकृतिक : पिप्पली कुल पाई परेसी ।

आकृति : पीपर की लता होती है इसपर यह फल लगते है। यह फल लम्बे शुडाकार होते है। लम्बाई डेढ इंच होती है। शुष्क फल का वर्ण कृष्ण होता है। फल वृंत के स्थान पर यह तीन सूत मोटा और धीरे धीरे पतला होता जाता है। इस पर अनेक छोटे छोटे गोल गोल उभार पाये जाते हैं। इसका आकार शहतूत की तरह होता है। पुष्प काल मे इस पर छोटे छोटे कई पुष्प पाये जाते है। यही फल वन जाने पर एक एक बीज वन जाते है। और गोल दाना के रूप मे दिखाई पडते है। यह प्रत्येक बीज एक एक फल पृथक पृथक होते है। प्रत्येक दाने पर एक उभार दिखाई पडता है। जो कि स्त्री केशर का अवशिष्ट भाग होता है। नोकदार दिखाई पड़ता है। इस के नीचे का भाग फलावरण से आपस मे मिल कर बना होता है और आपस मे मिला हुआ दिखाई पडता है। इस प्रकार दानो की एक तिरछी पंक्ति लम्बाई मे बन जाती है और चौडाई मे भी तिरछी आडी लाइन मे दाने दिखाई पडते हैं। बीज का आधे से अधिक भाग बीजावरण के एक परदे से ढका रहता है। इस के हटाने पर भीतर से बीज दिखाई पडता है। इस प्रकार एक वृंत पर कई दाने लगे हुए दिखाई पडते है। बीच का भाग वलवरण से ढकाहुआ आपस मे मिला हुआ दिखाई पडता है।

छेदन : व्यत्यस्त छेद मे बाह्यावरण। बीज का भाग व बीजो के बीच का भाग व बीच मे केन्द्रीय भाग दिखाई पडता है।

अनुलम्ब काट मे : बाह्यावरण बीज। जबी शस्य वृत का भाग पृथक पृथक होता है।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृतिक वर्ण कृष्ण। कषे भंगे श्याव। चूर्ण श्याव। क्वाथ श्वेताभ पीत। तैल पीताभरक्त। घृत रक्त पीत। ज्वाला रक्त पीत।

विलेयता : वारि तैल व घृत मे अल्प विलेय।

रस परीक्षा : प्रधान रस कटु।

गंध परीक्षा : गंध तीक्ष्ण सुगध धूपन मे उग्र गध।

स्पर्श परीक्षा : शीत कठिन खर रूक्ष गुरु।

शब्द परीक्षा : भग्न चट। भगुर।

वर्ग : प्रायश. कटु होने से तैजस वर्ग का है।

फल परीक्षा विवरण—

ज्ञातव्य बाते

१ : फल को पहले अपने हाथ मे लीजिए। उसके आकार प्रकार को देख कर एक विचार बनाइए।

२ : फल के ऊपरी आकार को देखने के बाद उसके ऊपरी आवरण को हटा कर के भीतरी स्तर की परीक्षा करिए और नोट करिए। इसके आकार प्रकार वर्ण गध आदि को नोट करके लिखिए।

३ : बीज के बाह्य भाग को देखिए। वर्ण आकृति चिह्न उत्सेध आदि को नोट करिए।

४ : बीज के भार को नापिए। तौलिए कई बीजो को तौल करके उनका औसत निकालिए।

५ : बीज को बीच से काटिए और उसके भीतर की स्थिति को नोट करके उसका चित्र बनाइए। अकुर कहा पर है क्या आकार है यह नोट करके उसको चित्रित करिए।

६ : अकुर के पोपक आहार को पहचानिए।

७ : बीज का वैज्ञानिक विवरण दीजिए।

बीज की परीक्षा—

१ : एला बीज की परीक्षा।

२ : परीक्षा से पूर्व क्या क्या ज्ञातव्य बाते हैं इनका ज्ञान प्राप्त करना अत्यावश्यक है।

१ : पहले सूखे फलो को लेकर उसपर के चिह्न वृन्त व अग्रभाग को तथा उसपर की धारिया झुर्रियां आदि देख कर के उन्हे नोट करिए।

२ : आवरण को हटा कर उसपर के भीतरी भाग का अवलोकन करिए। दाने एक मे सटे दिखाई देगे। इन्हे पृथक करने से पूर्व ही आवरण मे लगे कई बीजो को देखिए। प्रत्येक दानो को देख कर के उनके आकार प्रकार और व्यास को नापिए। एक दाने का चित्र बनाइए।

३ : बीज के भीतर के नाभि नाल को खोजिए। ऊपर के छिल्के और उसके रूप को नोट करिए।

४ : इसके वर्ण और गंध को लिखिए।

५ · बीज का छेद लेकर के आभ्यन्तर रचना को देखिए।

६ · स्वाद और रस का विवरण दीजिए।

क्षुद्रएला का विवरण—

छोटी इलायची की परीक्षा।

नाम क्षुद्र एला। इलायची व कार्डेमोमिसेमिना

प्राप्ति : यह छोटी एला एलिटेरिया कार्डेमोमम मैटन वार नामक एला के सूखे फल जो पक्व या पाकोन्मुख होते है एकत्र कर के सुखा कर एकत्र किये हुए फल मात्र है। इन के बीजो को आवश्यकतानुसार संग्रह कर लेते है।

वर्ग : यह आर्द्रक वर्ग की है।

चरक · कटुक स्कध श्वास हर। अंगमर्द प्रशमन। शिरोविरेचन वर्ग मे पठित है।

सुश्रुत : एलादि गण।

भौगोलिक स्थिति : दक्षिण भारत व लंका मे मिलती है। दक्षिण भारत मे मैसूर। मालावार, मंगलोर और एलेपी की इलायची प्रसिद्ध है।

आकृति : यदि इलायची के फल को ध्यानपूर्वक देखे तो ज्ञात होगा कि यह श्वेत पीत व हरित वर्ण की है जो कि स्थान भेद से अपना रग व रूप प्राप्त करती है। यह देखने मे तीन उभार वाली बीच मे मोटी और दोनो किनारो पर पतली एक विशिष्ट आकार की होती है।

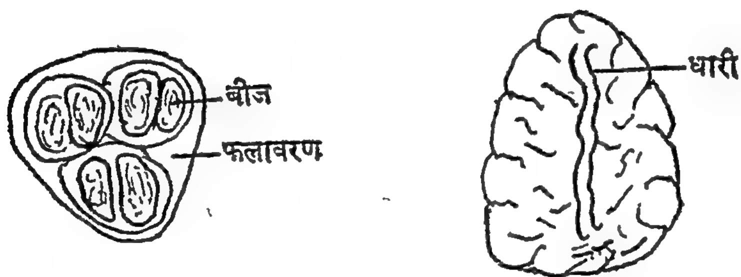
मैसूर की एला . पीले वर्ण की ढीले छिल्के वाली करीब २ सेटीमीटर लम्बी गोलाकार यह गोल आकार की होती है। वृन्त के पास यह स्थूल और अग्रभाग की तरफ कुछ पतली और उभारदार होती है। आगे का यह उभार योनिछत्र का अवशिष्ट अश होता है। यह तीन अर्द्धवृताकार पुटो से युक्त होती है। तीन भागो मे तीन जगह उठी हुई दिखाई पडती है। इसके त्वक् पर लम्बाई मे उभरी हुई रेखाये दिखाई पड़ती है। छिल्का बाहर से खुरदरा और भीतर से चिकना होता है। भीतर बीज ५ से १२ तक संख्या मे प्राप्त होते है।

आकार : यह ४ मिलीमीटर लम्बी ३ मिलीमीटर चौडी होती है। यह अनियमित आकार के कोणो मे होती है। ऊपरी सतह अनियमित व लम्बाई मे झुर्रीदार होते हैं। फलावरण के हटाने पर भीतर तीन भागो मे विभाजित वल्ल पिपली मिलती है। जिसका रग पीले भूरे रग से लेकर परिपक्व फल मे लाल भूरे रग तक होता है। आपस मे ये एक चिकने वस्तु मे सटे हुए होते है। अत. बीजाकृति उनकी स्थिति के अनुकूल कही नोकदार कही गोलाकार कही

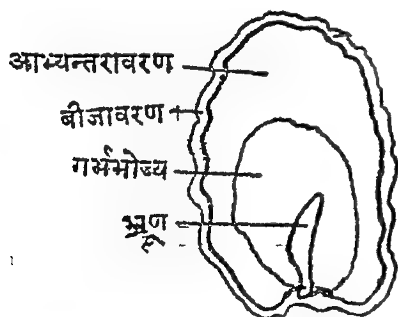
अनीदार एक तरफ दबे हुए बाहर की तरफ उन्नतोदार दिखायी पड़ते हैं। यदि बीज का छेद ले तो बाह्यावरण पीले भूरे या लाल भूरे रग का दिखाई पडता है। उसके बीच मे का भाग अति सूक्ष्म दिखाई पडता है। वल को यदि चौडाई मे छेदन करे तो फल तीन खण्डो में विभाजित दिखाई पडता है। आवरण के नीचे बीच के भाग होते है।

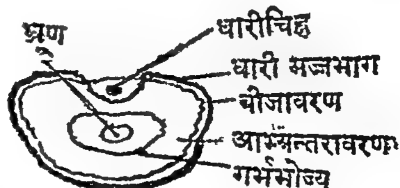


पूर्णफल मगलोर का पूर्णफल मालावार का पूर्णफल मैसूर का चित्र १२९



फल का व्यत्यस्त छेद चित्र १३० फल का एक बीज चित्र १३१





अनुलम्व छेद चित्र १३२ बीज का व्यत्यस्त छेद चित्र १३३

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण ऊपर से पीत।
क्वाथ : घृत तैल।
विलेयता : जल, घृत, तैल मे अल्प।
रस : कटु व तिक्त।

गंध : सुगंधित, विशिष्ट गंध युक्त।

स्पर्श : खुरदरा ऊपर से कठिन।

शब्द : भंगुर।

वर्ग : कटु व तिक्त प्रधान रस होने से तैजस् द्रव्य है।

एला चूर्ण परीक्षा :

वर्ण हल्का पीला व भूरे रंग का जिस मे हरे भूरे रंग के अंश अधिक मिले रहते है।

गंध : सुगंधित।

वस्तु संग्रह : सुगन्धित तैल व अत्यल्प पिष्ट मय भाग मे युक्त।

रक्त गुंजा का विवरण (Abrus Precatorious)

नाम ' लाल गुञ्जा, काकणती, काकादनी।

गण : मूल विष, सुश्रुत।

उपविष भाव०

प्राकृति वर्ग : शिम्वी वर्ग, Legumenoseaco। उपकुल: अपराजितादि। (Popeleonacy)

आकृति विवरण : गुञ्जा की लता का यह फल होता है। इस मे अनेक शाखाये होती है।

पत्र इमली की तरह होते हैं। शिम्वी एक से डेढ इञ्च लम्वी होती है। इस मे चार-चार या पाच-पाच वीज लगते हैं। वीजो का आकार अंडाकार गोल होता है। इसकी लबाई दो से तीन सेंटी मी० तथा चौडाई ६ सेंटी मी० होती है। यह दोनो पार्श्वो से उभारदार चिकना व लाल वर्ण का होता है। यह सामान्य फल होता है। इसका तीन चौथाई भाग नीचे की तरफ से लाल और एक चौथाई भाग काले वर्ण का होता है।

बीजावरण : बीज पर एक चिकना आवरण होता है जिसके फल वृंत के ऊपर चारो तरफ काला रंग होता है। शेष लाल रहता है। यह दृढ कवच की भाति दृढ होता है। कृष्ण भाग मे एक श्वेत वर्ण का चिह्न होता है। यही नाल चिह्न है। इसके पास ही एक सूक्ष्म छिद्र होता है इसे बीज रन्ध्र कहते है। इसके भीतर श्वेत ईषत पीत वर्ण का वीजशस्य होता है। यही गर्भ भोज्य वस्तु की तरह कार्य करता है। यह दो होते है। इन्हे बीज दल भी कहते है। ऊपर का आवरण दृढ और मोटा होता है। इसके नीचे एक पतली झिल्ली होती है।

झिल्ली के नीचे द्विदल का भाग होता है। दलो के बीच मे अंकुर का अश रहता है।

छेदन : इसके छेदन करने पर इसमे क्रमशः निम्न वस्तु पाये जाते हैं।

१ : ऊपर का आवरण। इसमे दो भाग मिलते हैं। ऊपर का मृदु कला का भाग, जो भिगा देने पर सरलता से पृथक हो जाता है। और इसके ऊपर का रग भी छूट जाता है।

२ : इसके नीचे एक पतली श्वेत कला लगी रहती है। यह बीज शस्य को आवरित रखती है।

३ : इसके नीचे बीज शस्य का भाग रहता है। यह दो होते हैं। यह मोटे श्वेत वर्ण के होते हैं।

वर्ण परिज्ञान : इसका ऊपर का वर्ण कृष्ण व रक्त वर्ण का होता है।
कल्क : कृष्ण व श्वेत या रक्त व श्वेत।
चूर्ण : धूसर।
क्वाथ : ईषद्रक्त।
तैल : श्वेत।
घृत : श्वेताभ।
ज्वाला : रक्त।
विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईषद् विलेय है।
रस परीक्षा : प्रायशः मधुर ईषद् तिक्त।
गंध परीक्षा : मृदु सुगंध।
स्पर्श परीक्षा : शुष्क शीत, कठिन, श्लक्ष्ण व गुरु।
शब्द परीक्षा : शुष्क अभंगुर।
वर्ग : प्रायश. मधुर होने से यह पार्थिव वर्ग का है।

कुपीलु या कारस्कर बीज

कुछ ज्ञातव्य सूचना :

१ : कुपीलु के बीजो को परीक्षार्थ तीन से छै दिन तक पानी मे भिगो कर रखने के बाद तब प्रयोगार्थ देना चाहिये।

२ : कुपीलु के बीजो की बाहरी गोलाई, चपटापन निरीक्षण करिए। इसका व्यास और मोटाई नापिए। इसके नाभि नाल को ढूँढिए।

३ : इसके रेशम की तरह चमकदार लोम को जो ऊपर आवरण की तरह है बनावट को देखिए।

४ : इसकी दिशा प्रान्तीय भाग की तरफ जाती हुई अवलोकिए। किनारे की सधि पर बीच मे उठी हुई धारी को देखिए।

५ : इसके आर्द्र भाग को चौडाई मे काटिये। इसे चित्रित करिए और अकुर को ढूँढिए।

६ : आर्द्रबीज को मोटाई मे काटिए-और केन्द्रीय रिक्त भाग को नोट करिए। इसके'अंकुर की पत्रात्मक स्थिति का अवलोकन करिए। उस पर के शिरा विन्यास को ताल के द्वारा देखिए।

७ : इसके चूर्ण की विशेष तिक्तता का स्वाद लीजिए। इसके वर्ण और गंध को नोट करिए।

८ : इसके क्वाथ का वर्ण। घृत तैल के वर्ण को नोट करिए।

कारस्कर : नक्स वोमिका :

नाम : कुपीलुकारस्कर, काकतिन्दु, इसके पर्याय है।

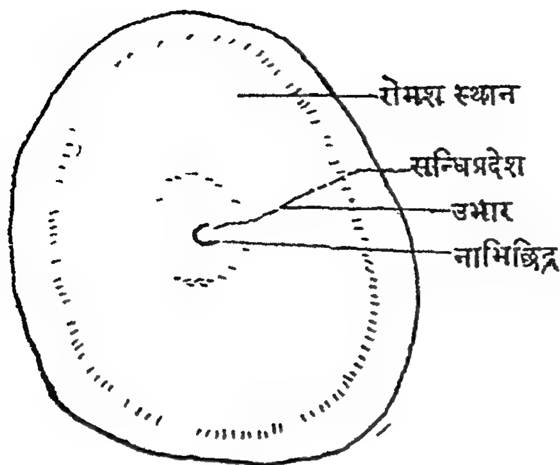
वर्ग : कुपील्वादि या लोगेनिएसी।

चरक सुश्रुत : सुरसादि वर्ग कारस्कर का बीज चपटा गोलाकार ठीक बटन की आकृति का होता है।

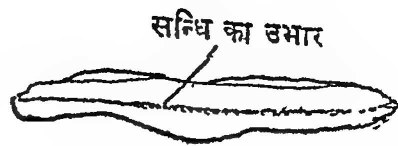
इसका वर्ण भस्म वर्ण का श्वेत चमकदार होता है। इसके पार्श्विक किनारी पर बीच मे एक उभार होता है। इसके २ तल होते है। एक तल कुछ नतोदर दूसरे की अपेक्षा अधिक उभरा हुआ होता है। ऊपर का आवरण एक पतली झिल्ली की तरह होता है। आर्द्र बीज मे यह सरलता से हटाई जा सकती हे। इसकी सतह पर सूक्ष्म लोम होते है जिनकी दिशा केन्द्र से प्रान्त की तरफ होती है। इन मसृण रोमो के कारण यह चमकता भी है। इसके उठे हुए भाग के ऊपर एक विन्दु की तरह छिद्र दिखाई पडता है। किनारे पर एक उभरा हुआ सा विन्दु भी है। यहाँ पर अकुर का अश रहता है। इसका किनारा उभरा हुआ धाररहित धारीदार है। एक हल्की परन्तु स्पष्ट गहरी सी धारी जो कि मंडलाकार फैली हुई इसे दो भागो मे विभक्त करती है।

छेद लेने पर : १ . वाह्यत्वक् भाग, पतला होता है।

२ : अतर्भाग यह कठिन हरे भूरे रग का दिखाई पडता है। यह द्विदलो मे होता है।

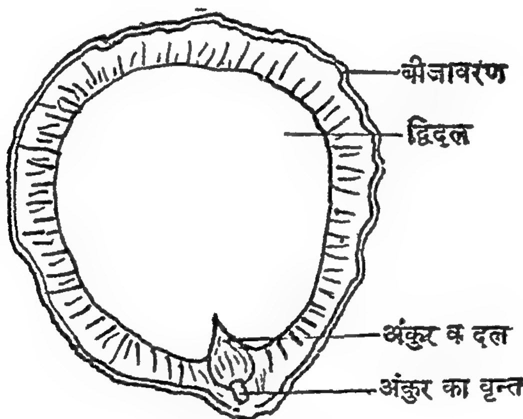


चित्र १३४

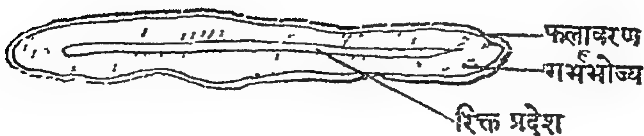


चित्र १३५

३ : भीतर का भ्रूण का भाग पान के पत्र की आकृति का होता है। इसका वृंत मोटा पुष्ट दिखाई पडता है। यह एक किनारे पर लगा होता है। इसका वर्ण अन्य भाग से सफेद होता है। इसका पत्र ५ शिराओ से युक्त होता है।



चित्र १३६



चित्र १३७

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण ईषत् पीत धूसर होता है।

कपे : धूसर। भगे, श्वेत् धूसर। वर्ण धूसर।

क्वाथ : ईषत् पीत। तैल पीत । घृते धूसर । ज्वाला पीत ।

विलेयता : वारि, तेल, घृत मे ईषत ।

कारस्कर :

रस : तिक्त ।

गंध : मृदु, धूपन मे उग्र ।

स्पर्श : कठिन, श्लक्ष्ण, गुरु ।

शब्द : अभंगुर ।

गण : तिक्त रसत्वात तैजस ।

चूर्णका

वर्ण : भूरे रंग का । ब्राउनिश ।

गंध :

स्वाद : तिक्त व महातिक्त ।

रासायनिक परीक्षा :

१ : शुष्क दल के एक मोटे भाग को ईथर मे भिगो करके वसा रहित करिए। उसके ऊपर सल्फोवेनेडिक एसिड को छिडकिए। उस पर परपल वर्ण दिखाई पडेगा । यह स्ट्रिकनिन की उपस्थिति को बतलाता है ।

२ : वसा रहित एक खंड कुपीलु का लेकर घन नाइट्रिक एसिड का डालिए। लाल नारगी रंग दिखाई पडेगा ।

सगठन : इसमे स्ट्रिकनिन १ २४ प्रतिशत ।

ब्रूसिन १ ५ प्रतिशत ।

कैफि ओ टैनिक एसिड : लोगैनिन एक पिष्ट सार व कुछ स्थिर तैल मिलता है।

ईषद्‌गोल या ईसब गोल (प्लैटेगो ओवाटा)

वर्ग : ईषदगोलादि वर्ग प्लान्टैजिनेसी ।

आकृति विज्ञान : ईसबगोल के वीज छोटे-छोटे नोकाकृति होते है । इनका वर्ण वादामी होता है। प्रत्येक वीज के ऊपर एक पतला श्वेत वर्णका आवरण होता है। इसको ईसवगोल की भूसी कहते है। बीज स्पर्श मे चिकना व चीमडा होता है। इस मे दो दल होते है और आपस मे वे एक दूसरे से मिले होते है। बीज के वीचो वीच भीतर की तरफ एक खात होता है। यह वाहर की तरफ

उन्नतोदर होता है। भीतर को यह नतोदर होता है। दोनो तरफ अन्त मे कोण बन जाता है।

इसका बादामी वर्ण श्वेतता से मिश्रित होता है। भिगोने पर यह लुआबदार हो जाता है। शुष्क होने पर बीज इसी मे चिपके रहते है।

सच्छेदन यांत्रिक परीक्षण :

व्यत्यस्त छेद लेने पर इस मे तीन भाग दृष्टिगोचर होते है।

१ : बाह्य भाग : ऊपर का बीजावरण बादामी वर्ण का दृढ होता है। इसके ऊपर बहुत पतली श्वेत वर्ण की झिल्ली होती है।

२ : अन्तर भाग नतोदर व श्वेत वर्ण का होता है।

भार : १।६४ रत्ती।

वर्ण : श्वेत रक्ताभ।

कपे व भंगे बादामी : चूर्ण श्वेताभ धूसर, क्वाथे श्वेत, तैले श्वेताभ पीत, घृते श्वेताभ।

ज्वाला : रक्त पीत।

विलेयता : वारि मे ईषत्।

रस : मधुर।

गध : शुष्क, मृदुसुगंध। आर्द्रमृदुगध।

स्पर्श : श्लक्ष्ण, कठिन, गुरु व पिच्छिल, शीत।

शब्द : अभंगुर।

गण विनिश्चय : प्रायश मधुर होने से यह पार्थिव द्रव्य है।

नोट—यह यूनानी द्रव्य है किन्तु अब इसका प्रयोग चिकित्सा मे अधिक होने लगा है। यह बल्य शीत पिच्छिल व ग्रही द्रव्य है।

स्थूलैला बडी इलायची : एमोममसैबूलेटम

नाम : बडी इलायची, स्थूलैला।

वर्ग : आर्द्रकादि वर्ग। स्किटेमिनेसी।

चरक :

सुश्रुत :

आकृति विज्ञान : बडी इलायची स्थूल एला का फल है। यह त्रिकोणाकार दोनो किनारो पर पतले होते है। इनके ऊर्ध्व भाग मे एक वृन्त का भाग लगा रहता है। यह योनिच्छद का अवशिष्ट भाग है। नीचे के भाग पर फल

वृन्त का चिह्न होता है। इसका वर्ण कत्थई होता है। इस पर लम्बाई मे रेखायें होती है। यह स्पर्श मे रुक्ष है इसके छिलके को उतारने पर भीतर की तरफ यह चिकनी होती है। छिलके के नीचे बीज दिखाई पडते है। यह बीज एक चिकने भाग से आपस मे चिपके हुए रहते है। छिलके के भीतर तीन भाग दिखाई पडते है। प्रत्येक भाग मे फल पिप्पली का सटा हुआ भाग दिखाई पडता है। यह मिला हुआ भाग भूरे रंग के आवरण से आवरित होता है। सम्मिलित रूप मे इनका रूप बीच मे मोटा और किनारो पर पतला होता है। इनमे ५ से १० तक बीज चिपके रहते है।

बीज : इसका आकार अंडाकार सा होता है। ऊपर का भाग कठिन कृष्ण भूरे वर्ण का होता है। नीचे का भाग श्वेत वर्ण की वस्तु से भरा होता है। यह छोटे-छोटे ६ पंक्तियो मे आवद्ध होते हैं। प्रत्येक बीज दूसरे से सटा हुआ होता है। प्रत्येक बीज के ऊपर एक पतली झिल्ली सी श्वेत कला लगी होती है जो शुष्क गूदे की अवशिष्ट भाग है। किसी किसी पर श्वेत किसी पर भूरी किसी पर यह भूरे कृष्ण वर्ण की होती है। बीज ३ स्तर वाला है। ऊपर की सतह उन्नतोदर नीचे की २ लाइन मिल कर नतोदर बनी हुई होती है। इनका स्पर्श कठिन और मसृण होता है।

छेदन कालीन : फल का अनुप्रस्थ छेद करने पर ऊपर आवरण और नीचे ३ प्रकोष्ठ दिखाई पडते है। यह एक बारीक झिल्ली द्वारा पुन' दो भाग मे विभाजित हो जाते है। इनमे बीज केन्द्रीय अपरा स्थिति के अनुसार लगे होते है। बीच मे एक मोटी झिल्ली त्रिपक्षीय होती है। यह तीनो पक्ष सूख जाने पर कागज की तरह पतली दिखाई पडती है।

अनुलम्ब च्छेद : इसमे भी प्रथम आवरण बाद मे बीजावरण नीचे बीज शस्य होता है।

भार : ८ रत्ती। आयाम ८ इंच। विस्तार ·८ इंच। परिणाह १·२ इञ्च।

वर्ण : प्राकृत वर्ण श्वेत कृष्ण या भूरा कृष्ण। भंगे श्वेत कृष्ण चूर्ण श्वेत कृष्ण।

क्वाथ कृष्ण रक्ताभ : तैल घृत, कत्थई। ज्वाला रक्त पीत।

विलेयता : वारि व तैल घृत मे अल्प।

रस ' प्रथम मधुर पश्चात कटु व तिक्त।

गध : सुगंध, मृदु।

स्पर्श : कठिन, रूक्ष और लघु।

शब्द : भग्न कालीन चट्, ज्वलन कालीन चट्।

गण : प्रायशः कटुतिक्तत्वात् ईषत् मधुरत्वात् आग्नेय ।

माजूफल : क्वेरकस इनफेक्टोरिया (Quercus Infectoria)

नाम : माजूफल, मायाफल ।

वर्ग : मायाफलादि, क्युपुलिफेरी । (Cupulefarea)

आकृति विज्ञान : यह एक प्रकार का फलाकार द्रव्य है जो माजूफल के शाखाओ पर एक प्रकार की मक्खी सिनिप्स गैली टिंकटोरिया के छेद करने पर उसके चारो ओर एकत्र हो जाता है। इसके भीतर यह मक्खी अपने अडे देती है और बाद मे इसमे छिद्र कर के उड़ जाती है। इसका आकार ठीक फल की तरह होता है। इस माया मक्खी के द्वारा इसके बनने के कारण इसको माया फल कहते है। आकार मे यह गोल छोटे-छोटे उभारो से युक्त होता है जो देखने मे कंटक की तरह उठे हुए दिखाई पडते है। यह स्पर्श मे कठिन खर होता है। इसका वर्ण हरित वर्ण का अथवा सफेद होता है। इसमे प्राय. एक छिद्र दिखाई पडता है। किसी किसी मे छिद्र नही भी होता है। कीट इसमे पडा रहता है। इसका रस इतना इकट्ठा हो जाता है कि उसका आकार एक प्रकार के फल जैसा बन जाता है। डाली से लगे हुए स्थान पर एक वृत सा दिखाई पडता है।

छेद विवरण : छेदन करने पर इसमे ऊपर बाह्यस्तर श्याम हरित वर्ण का दिखाई पडता है।

मध्य स्तर : यह मोटा घन सघाती निर्यास से वस्तु का शुष्क भाग होता है।

केन्द्र : यह भूरे रग का कठिन भाग हे। यहा पर यह इतना कठिन होता है कि देखने और स्पर्श करने पर गुठली की तरह होती है। अतः बहुत से वैद्य इसे फल मान लेते है।

कीट : फल के बीच मे मक्खी का अवशिष्ट भाग या मक्खी ही मिलती है। मक्खी का आकार ठीक गृह मक्खी की तरह होता है। इसका शिर छोटा उदर बडा पीले पख छोर पर होते है।

परिमाण : बल का भार १८ रत्ती के बराबर होता है।

वर्ग . प्राकृत हरा खाकी या श्वेत।

कपे व भगे खाकी चूर्ण का वर्ण भूरा। क्वाथे पीताभ रक्त। तैल व घृत मे ‍पीत वर्ण।

ज्वाला : पीत।
विलेयता : वारि मे अधिक। तैल व घृत मे अल्प।
रस : कषाय प्रायशः व पश्चात् मधुर क्वचित् अम्ल।
गंध : मृदु।
स्पर्श : कठिन खर, रूक्ष और मृदु गुरु।
शब्द : भग्न करने मे चट। अभगुर।
गण : प्रायशः कषाय व ईषत् मधुर होने से वायव्य है।

आरग्वधफल : केसिया फिस्चुला : (Cassiafistula)

नाम : आरग्वध : राजवृक्ष, चतुरंगुल।
वर्ग : करजादि गण सीजल पिनिएसी : (Caesal peniaceae)
चरक : कुष्ठघ्न, कंडूघ्न, विरेचन, तिक्त स्कंध।
सुश्रुत : आरग्वधादि, श्यामादि, अधोभागहर, आकृतिविज्ञान। अमलतास की फली गोल लम्बी होती है।

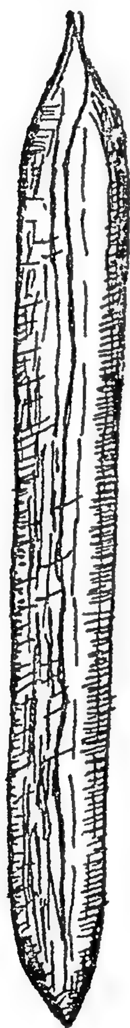
आकृति विज्ञान : अमलतास की फली गोल लम्बी नलिकाकार डेढ से दो फीट लम्बी होती है। इसका वर्ण काला होता है। आवरण दृढ तथा छोटी-छोटी धारियो से युक्त होता है। प्रारम्भ मे छोटा सा वृत का भाग होता है। वृंत के पास से दो धारियाँ उभय पार्श्व मे स्पष्ट आदि से अन्त तक चलती है। यह इसकी आवरण संधि स्थल है। इस फली को तोडे तो भीतर काले रंग की मज्जा मिलती है। यह स्पर्श मे मृदु व चिपचिपा होती है। मृदु भाग से सटी हुई काष्ठ की पतली झिल्ली सा कला का भाग होता है जिसका वर्ण पीत होता है। थोडी-थोडी दूर पर यह कला पाई जाती है। दो कलाओ के बीच मे एक बीज रहता है। फली का आवरण ऊपर से काला तथा भीतर का बादामी वर्ण का होता है। इस प्रकार एक इच फली मे सात के लगभग अवकाश होते है।

छेदन विवरण : व्यत्यस्त छेद लेने पर इसमे ऊपर फलावरण रहता है, इसके दो भाग होते है।

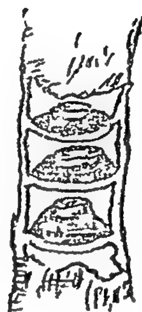
पहला ऊपर का काला भाग जो कि पतला आवरण होता है। इसके नीचे कठिन आवरण पीले बादामी वर्ण का होता है, यह बहुत दृढ होता है। तदनुसार कृष्ण वर्ण का मज्जा का भाग होता है। काली मज्जा के ऊपर बीज का स्थान होता है। इस पर यह चिपका हुआ रहता है, इसका वर्ण बादामी वर्ण का होता है।

मज्जा : काली, मृदु, स्वाद मे मधुर व कषाय होती है ।

बीज : यह गोल चपटा सा होता है । वर्ण लाल पीला होता है । प्रारम्भ मे एक वीज अंग वृन्त होता है । यहाँ पर बीज कुछ दबा हुआ होता है । इसके ऊपर के भाग पर हल्की सी रेखा उठी हुई होती है । प्रारम्भ मे गोलाकार तथा अन्त मे कुछ नोकदार होता है ।



चित्र १३८—पूर्णशिम्वी



चित्र १३९—शिम्बी का अनुलम्बच्छेद



चित्र १४०—आरग्वध वीज

छेदन : छेदन करनेपर ऊपर लालभूरी सी त्वचा जो वहुत कठिन और दृढ होती है । नीचे मिगी किंचित् पीली सी होती है । इसके दो दल होते है ।

भार : वृन्त के पास श्वेत वर्ण का छोटा सा अंकुर होता है ।

वर्ण : फली कृष्ण वर्ण की । भीतर की मज्जा काले वर्ण की । मज्जा का क्वाथ वर्ण मे कृष्ण । तैल व घृत मे पीताभ तथा फली फूलने पर पीताभ होती है ।

विलेयता : मज्जा वारि मे वर्ण घुलनशील ।

रस : मधुर व कषाय ।

गंध : मृदु सुगंध ।

स्पर्श : फली : कठिन, खर, व लघु होता है ।

मज्जा : मृदु श्लक्ष्ण पिच्छिल व सान्द्र ।

बीज : कठिन श्लक्ष्ण गुरु ।

शब्द : भग्नकालीन चट् ।

गण निरूपण : मज्जा प्रायश: मधुर होने से व ईषत् कषाय होने से पार्थिव है ।

मदन फल रेंडिया ड्यूमेटोरम ।
(Randia Dumetorum)

नाम : मदन फल ।

गण : च० : फलिनी व वमन वर्ग ।

सु० : ऊर्ध्व भाग हर, आरग्वधादि, मुष्ककादि गण ।

नैस० वर्ग : मजिष्ठा कुल रुबिएसी (Rubeaceae)

आकृति विज्ञान : मदन फल का फल गोलाकार बादामी वर्ण का शुष्क वृत्ताकार होता है । इसकी ऊँचाई लगभग १ इञ्च की, इतनी ही मोटाई और परिणाह २ इञ्च का होता है । आर्द्रावस्था मे इस पर धारिया होती हैं इससे इसे धारा फल कहते हैं । शुष्क हो जाने पर भी धारिया रहती है और शुष्कता के कारण झुरिया दिखाई पडती है । इस पर एक फल वृन्त है विपरीत दिशा मे स्त्री केशर का अवशिष्ट चिह्न दिखाई पडता है ।

व्यवच्छेद : १ : व्यत्यस्त च्छेद लेने पर इस पर प्रथम बाह्यावरण दिखाई देता है जो कि मोटा होता है । ऊपर पतला कला सदृश भाग आर्द्र मे पृथक् हो जाता है ।

२ : इसके नीचे इसका दूसरा स्तर है जो कि मोटा है । वर्ण हलका ईषत् पीत है ।

३ : इसके नीचे एक पतली तनु कला है । जो कि बीज के ऊपर आवेष्टित है ।

४ : मदन फल पिप्पली इसके नीचे मिलती है जो सूख कर श्याव रक्त वर्ण की होती है ।

आर्द्रावस्था मे यह फल का गूदा मोटा रहता है। सूख जाने पर पतला और काले वर्ण का हो जाता है और बीजो पर चिपक जाता है। यह कणदार रूप मे मिलता है।

मदन फल पिप्पली का भाग एक तनु कला द्वारा दो भागो मे विभक्त हो जाता है। यह विभाजक कला कहलाती है। प्रत्येक खड के पुन: दो भाग एक और विभाजक लघु कला द्वारा हो जाता है। प्रत्येक खड मे बीज पुञ्ज एक मे सटे हुए दिखाई पडते हैं, जिनका आकार इलायची के बीजो की तरह होता है। बीजो पर से इस फल के गूदे को हटा देने पर नीचे पीत वर्ण के बीज मिलते है। गूदे का भाग ही फेनिल अंश अधिक रखता है और मदन फल को वामक बनाने मे विशेष भाग लेता है।

वर्ण : बाहर से वर्ण प्राकृतिक धूसर होता है।
कपे : धूसर।
भंगे : श्याव धूसर।
चूर्ण : श्याव धूसर।
क्वाथ : रक्त।
तैल : पीत।
घृत : ईषत् पीत।
ज्वाला : रक्त वर्ण की।
विलेयता · वारि, तेल व घृत मे ईषद्विलेय है।
रसपरीक्षा : कषाय रस। अनुरस, मधुर।
गंध परीक्षा : मृदु सुगध।
स्पर्शानुमेय गुण : कठिन, खर, रुक्ष, लघु।
शब्द परीक्षा : द्रव्यगत शब्द कट, अभगुर।
गण : प्रायश· रस कषाय होने से वायव्य वर्ग है।

धुस्तूर बीज का विवरण

नाम : धत्तूर बीज। (Datura Alba)
गण : चरक व सुश्रुत मे इसका गण नही है।
प्राकृत वर्ग : कंटकायादि वर्ग। सोलेनेसी (Solanaceae)
आकृति विवरण : धत्तूर का बीज आकार मे एक वृक्क की तरह दिखाई पडता है। यह डेढ सूत लम्बा व १ सूत चौडा व एक मिलीमीटर ऊँचा होता

है। बीज के किनारे उभरे हुए होते है। बीज का वर्ण कृष्ण या लाल वर्ण का होता है। श्वेत धत्तूर का वर्ण लाल व कृष्ण का काला होता है। इसके एक किनारे पर वृन्त चिह्न होता है इसके पास ही दवा हुआ भाग होता है। इस चिह्न को हाइलम कहते है। इसके पास ही एक छोटा-सा चिह्न होता है जो नाभिछिद्र कहलाता है। इसके दोनो स्तर पतले, चपटे और दवे हुए होते हैं। बीज के ऊपर का आवरण कठिन होता है और बीज की रक्षा करता है। ऊपरी सतह पर कही-कही झुर्रीदार दवा हुआ भाग होता है।

इसके भीतर गर्भ भोज्य का भाग होता है। इसमे अकुर का व भ्रूण का अंश होता है।

छेदन : छेदन करने पर इसमे सवसे ऊपर बीजावरण मिलता है। उसके बाद गर्भ भोज्य का अंश रहता है। इसमे दल के भाग व भ्रूण के अकुर का भाग दिखाई पडता है।

अनुलंब व व्यत्यस्त छेद मे प्राय: यही अश मिलते है। दृश्य भिन्न-भिन्न होता है। इसके चित्र पृथक् पृथक् दिये गये हैं।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृतिक वर्ण कृष्ण वर्ण वाले मे कृष्ण भगे धूसर।

चूर्ण : कृष्णाभ।

क्वाथ : ईषत् पीत।

तैल व घृत : पीत।

ज्वाला मे रक्त वर्ण।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे विलेय है।

रसपरीक्षा ' स्वाद मे कटु व तिक्त होता है।

गंध : सामान्य धूपन मे उग्र व अवसादक।

क्षुण : स्पर्श मे कठिन, खर, रुक्ष व लघु होता है।

शब्द परीक्षा : अभगुर।

वर्ग : प्रायश कटु व तिक्त होने से आग्नेय होता है।

विडग : इम्बेलिया राइब्स (Embalia Ribs)

नाम : विडग फल।

वर्ग : विडगादि, मिरसीनेसी।

चरक : कृमिघ्न, कुष्ठघ्न, तृप्तिघ्न, शिरोविरेचन।

सुश्रुत : सुरसादि, पिप्पल्यादि।

भावप्रकाश : त्रिमद।

आकृति विज्ञान : विडंग का फल आकृति मे वृत्ताकार होता है। इसका उपरितन भाग श्याव गाढे लाल वर्ण का होता है। ध्यानपूर्वक देखने पर यह ऊपर की रचना जालीदार दिखाई पडती है। किसी-किसी मे यह झुर्रीदार दिखाई पडता है। किसी-किसी मे यह रचना नही भी पाई जाती है। इसमे एक छोटा-सा वृंत का भाग होता है ऊपर योनिच्छद का अवशिष्ट भाग होता है जो कि नोकदार रचना से युक्त होता है।

ऊपर के रक्त वर्ण के छिलके को हटावे तो नीचे गहरे रक्त वर्ण का दूसरा आवरण दिखाई पडता है। यदि इसके आवरण भाग को भी हटा दे तो इसके नीचे एक और आवरण दिखाई पडता है। यह दूसरे भाग से हल्के वर्ण का होता है। इसको भी हटाने पर नीचे कठिन श्वेताभ बीज दिखाई पडता है।

छेदन : अनुप्रस्थ छेद लेने पर इसमे पहले कृष्ण वर्ण का आवरण दिखाई पडता है। इसके नीचे बादामी वर्ण का आवरण और नीचे श्वेत वर्ण का बीज होता है।

अनुलम्ब छेद लेने पर भी यही चार भाग दिखाई पडते हैं।

भार : ज्ञ। १२ सेज्ञ। ६ रत्ती तक श्र।

वर्ण : प्रा० कृष्ण भूरा।

चूर्ण : कृष्ण रक्ताभ।

क्वाथे : पीत ईषद्रक्त।

तैले घृते : रक्ताभ।

ज्वालायाम : रक्त पीत।

विलेयता : वारि मे अल्प, तैल, घृत मे कुछ अधिक श्र।

रस : प्रधान रस, कषाय अनुरस तिक्त।

गध : सुगंध मृदु।

धूपन : दुर्गन्ध।

स्पर्श : कठिन, खर, रुक्ष, लघु।

शब्द : अभंगुर।

गण विनिश्चय : प्रायशः कषाय व अनुरस ईषत् तिक्त होने से वायव्य है।

करंज या कुवेराक्ष : सीजल पीनिया क्रिरटा :
(Caesalpinia cresta)

नाम : करंज, कुवेराक्ष, कंटकी करंज ।

वर्ग : करंजादि : सीजल पीनिएसी (Caesalpeniaceae)

चरक : सुश्रुत : अधोभागहर ।

आकृति विज्ञान : करंज के वीज शुष्क ही काम मे लाये जाते हैं । इसका वर्ण स्लेटी रग का होता है । यह गोल वृन्त के पास कुछ पतले आगे को विशिष्ट गोलाकार हो जाते हैं । कभी-कभी यह कुछ चपटे भी होते हैं । वह दोनो तरफ उन्नतोदर होता है । किसी पर कभी धारियाँ भी पायी जाती हैं । ऊपर का नोग कठिन और वर्ण मे पीताभ होता है । इसके नीचे वीज की मज्जा होती है । यह मज्जा कभी श्वेत व कभी भूरे वर्ण की होती हे ।

छेदन : अनुलम्ब छेद लेने पर ऊपर कड़ा भाग छिलके का दिखाई पडता है । नीचे मज्जा का भाग और उसके वीच मे दवे हुए भाग के पास भ्रूण का भाग होता है ।

परिमाण : भार १६ गुन्जा ।

वर्ण : प्रा० वर्ण धूसर या स्लेटी ।

भग : कृष्ण व श्वेत ।

चूर्ण : धूसर वर्ण का ।

क्वाथ : पीत रक्त ।

तैल व घृत : पीत रक्त ।

ज्वाला : पीत वर्ण ।

विलेयता : वारि, तैल घृत मे अल्प ।

रस : मधुर व कषाय ।

गध : दुर्गंध ग्लानिकर ।

स्पर्श : ऊपर से श्लक्ष्ण, कठिन, लघु ।

बीज : कठिन, रुक्ष, लघु ।

शब्द . द्रव्यगत, खड़खडाहट ।

गण विनिश्चय : प्रायश. कषाय व ईषत् मधुर होने से वायव्य है .

यमानी : कैरम कैप्टिकम् : (Carum Taptacum)

नाम : यमानी, जवाइन ।

वर्ग : मड्डक पर्णादि : अम्बेलीफेरी : (Umbelefareae)

चरक : शीत प्रशमन । भाव० : चतुर्बीज :

आकृति विज्ञान : यमानी एक सामान्य फल है। इसका आकार छोटा, गोल व चपटा होता है। फल का अधोभाग ऊर्ध्व भाग की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है। अधोभाग पर फल वृंत लगा होता है। ऊर्ध्व भाग पर योनिच्छत्र का अवशिष्ट भाग लगा रहता है जो कि ऊँचा उठा हुआ उभार सदृश दिखाई देता है। फल मे दो बीज मिले रहते है। संयोग स्थल पर एक गहरी रेखा स्पष्ट दिखाई देती है। ऊपर से नीचे आती हुई इसमे दस रेखाये दिखाई पडती हैं। अर्थात् प्रत्येक बीज पर पाच-पाच रेखाये होती है। रेखान्वित भाग श्वेत तथा अन्य भाग धूसर होता है। दोनो बीजो को अलग करने पर दोनो को पृथक करनेवाली पतली झिल्ली दिखाई पडती है।

प्रत्येक बीज त्रिकोणाकार लम्बा होता है। यह अन्दर की तरफ नतोदर होता है। इसके ऊपर एक धूसर आवरण होता है। जिसके हटाने पर श्वेताभ बीज मज्जा दिखाई पडती है। प्रत्येक बीज मे एक पीताभ अकुर होता है।

अनुच्छेद : छेद लेने पर चौडाई मे ऊपर बीजावरण नीचे बीज मज्जा तथा दोनो के बीच मे तनु झिल्ली दिखाई देती है। अनुलम्ब छेद मे भी यही चीजे दिखाई पडती हैं।

परिमाण : ३० फल का भार १ रत्ती होता है।

विलेयता : वारि मे अधिक और तैल व घृत मे ईषत् विलेय है।

रस परीक्षा : प्रधान रस कटु व अनुरस तिक्त होता है।

गंध : यमानी मे उग्र गन्ध होता है। साथ ही यह सुगन्धित होता है। (पन मे उग्र गंध मिलती है।

स्पर्श परीक्षा : यह स्पर्श मे कठिन, खर, रुक्ष और लघु होता है।

शब्द परीक्षा : यह भंगुर होता है। जलाने पर कोई आवाज नही मिलती।

गण विनिश्चय : प्रायश कटु व तिक्त होने के कारण यह आग्नेय द्रव्य है।

अजमोदा : कैरम राक्स वर्घिएनम
(Carum Roxburgheenum)

नाम : अजमोदा, खराश्वा, मयूरिका।

वर्ग : मडूक पर्ण्यादि, अम्बेलीफेरी। (Umbalıfarae)

चरक : शूलप्रशमन, दीपनीय। सुश्रुत : पिप्पल्यादि।

आकृति विज्ञान : अजमोदा का फल एक छोटा-सा गोलाकार फल है। यह सामान्य फल की श्रेणी का है। बाजारू फल मे कच्चे व पके फल दोनो मिश्रित रहते है। पके फल पीताभ और कच्चे फल हरित होते है। फल के अधोभाग मे फल वृन्त लगा होता है। उसके ऊर्ध्वभाग पर योनिच्छत्र का अवशिष्ट भाग रहता है। नीचे से ऊपर तक संपूर्ण फल मे दस रेखाये पीताभ उत्सेधयुक्त दिखाई पड़ती है। इसमे दो बीज होते हैं। दोनो के संधि स्थल पर मोटी रेखा होती है। दबा कर यह सरलता से अलग किये जा सकते है। दोनो बीजो के बीच मे एक सधि स्थलीय पतली झिल्ली होती है।

प्रत्येक बीज पर एक आवरण होता है। सन्धि की तरफ बीज कुछ नतोदर ही होता है। आवरण हटाने पर एक अडाकार श्वेताभ बीज मिलता है।

विशेपताये :

१ फल का आकार यमानी सदृश ही होता है किन्तु यह अपेक्षाकृत गोलाकार होता है।

२ : फल यमानी से बडे होते है।

३ : यह यमानी सदृश तीक्ष्ण गंधी नही है।

अनुच्छेद : अनुलम्ब छेद लेने पर ऊपर बीजावरण उसके नीचे बीजावरक तनुकला तथा नीचे बीज का भाग होता है। बीच मे वृन्त का भाग जो आगे चलकर विभाजक कला का स्वरूप धारण करता है।

अनुप्रस्थ छेद : इसमे प्रथम बीजावरण घूसर वर्ण का पहले मिलता है। बाद मे बीजावरक झिल्ली पश्चात् बीज होता है।

परिमाण : ९५ फल का भार १ रत्ती होता है।

वर्ण परिज्ञान : पके फल का वर्ण पीताभ और कच्चे फल का वर्ण हरिताभ होता है।

कषे : हरिताभ।

भङ्गेचूर्णे : हरित पीताभ।

क्वाथे : पीताभ श्वेत।

तैल व घृते : हरिताभ।

ज्वालायाम् : रक्ताभ।

विलेयता : वारि, तैल, घृत मे ईषत् विलेय है।

रस परीक्षा : प्रायश: कटु अनुरस तिक्त है।

गध परीक्षा : उग्रगंधी किन्तु सुगंधयुक्त होता है।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष व लघुगुणयुक्त होता है।

गण विनिश्चय : प्रायशःकटुतिक्तत्वात् यह द्रव्य आग्नेय माना जाता है।

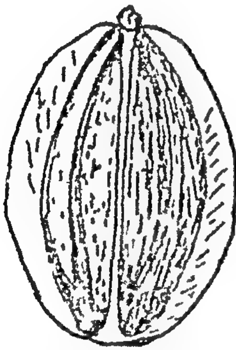
मिश्रेया सोआ : प्यूसिडेनम ग्रेविओलन
(Pucedenam graviolans)

नाम : मिश्रेया, सोया।

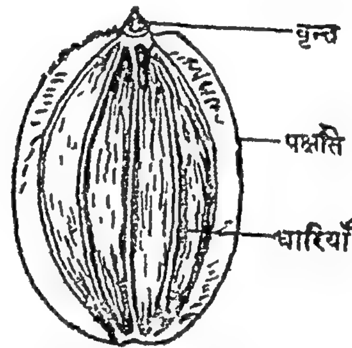
वर्ग : शतपुष्पादि। (Umbalifarae)

चरक : सुश्रुत . दीपनीय।

आकृति विज्ञान : सोया एक सामान्य जाति का फल है। यह गोल, लम्बा, पतला, लघु फल है। इसकी चौडाई लम्बाई से कुछ अधिक होती है। यह दोनो सिरो पर पतला हो गया है। अधो भाग पर वृन्त और ऊर्ध्वभाग पर योनिछत्र



चित्र १४१—सामनेसे

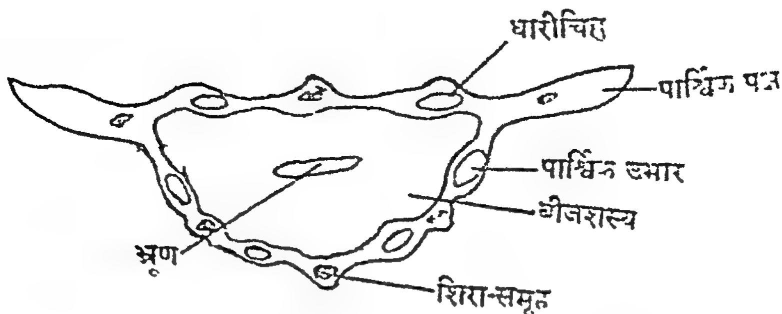


चित्र १४२—पार्श्विक प्रदर्शन

का अवशिष्ट भाग रहता है। इस पर १० अनुलम्ब रेखाये है। सन्धि स्थान पर दो रेखाओ के संयोग से एक मोटी रेखा वन गई है। दो रेखाओ के वीच का भाग कृष्णाभ है। वीज के पार्श्विक भाग पर पतली पक्षति की तरह निकला हुआ भाग है। दवाने पर दोनो वीज सरलता से पृथक हो जाते है। इनके बीच वृन्त का भाग आगे जाकर फैल कर चौडा व विभेदक झिल्ली की तरह वन गया है। प्रत्येक वीज लम्बा और भीतर की तरफ नतोदर होता है। प्रत्येक वीज पर एक पतला आवरण है जिसको हटा देने पर नीचे धूसर वर्ण की फल मज्जा मिलती है। जिसके एक सिरे पर श्वेताभ भ्रूण का भाग अवस्थित है।

छेदन : अनुप्रस्थ छेद लेने पर ऊपर आवरक कला उसके नीचे बीजावरण पश्चात् वीज शस्य मिलता है। बीच मे विभाजक कला का भाग रहता है।

अनुलम्ब छेद लेने पर ऊपर आवरक कला विभाजक कला मिलती है। बाकी सब वही अंश होते हैं।



चित्र १४३—व्यत्यस्तच्छेद

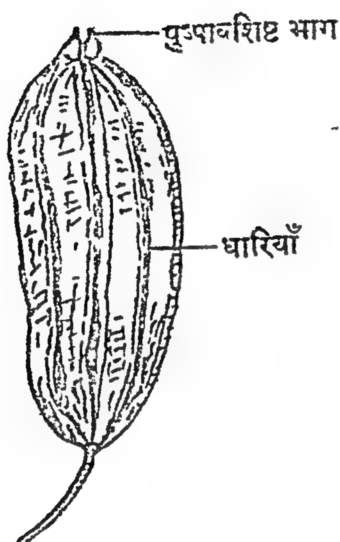
परिमाण : २० फल मिलकर एक रत्ती के बराबर होता है।
वर्ण परिज्ञान : वर्ण प्राकृत कृष्णाभ पीत।
कर्पे व भंगे : घैसर।
क्वाथ : रक्ताभ पीत :
तैल व घृत में : पीताभ हरित।
ज्वाला : रक्ताभ।
विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईषत् विलेय है।
रस परीक्षा : प्रायशः कटु अनुरस तिक्त।
गंध परीक्षा . उग्र गध सुगध। धूपन मे भी उग्र गंध।
स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष, लघु है।
शब्द परीक्षा : भंगुर, सरलता से दबाने पर दोनो बीज पृथक हो जाते है।
गण विनिश्चय : प्रायश. कटु व तिक्त होने के कारण यह आग्नेय द्रव्य है।

शतपुष्पा : फोयनीकुलम केपिलिकम :
(Focaniculam Capilecum)

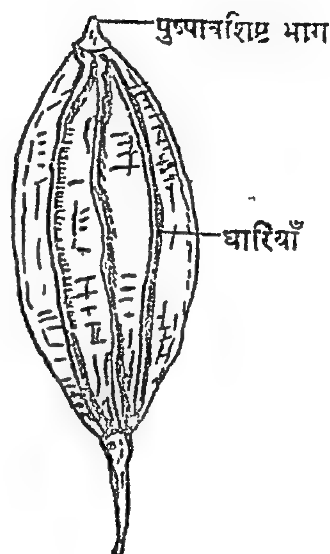
नाम : शतपुष्पा, मिशि, मधुरा छत्रा।
वर्ग : मंडकू पर्ण्यादि, अंबेलीफेरी। (Umbalifarae)
चरक :
सुश्रुत : आस्थापन।

आकृति विज्ञान : सौफ का फल साधारण जाति का फल होता है। यह छोटा, लम्बा, गोलाकार फल है। बीच मे मोटा और किनारो पर पतला हो

जाता है। अधोभाग पर वृत और ऊर्ध्वभाग पर योनि छत्र का अवशिष्ट भाग रहता है। प्रत्येक फल पर पीताभ १० अनुलम्ब रेखाये होती है। दो रेखाओ के बीच हरिताभ गर्त होता है। प्रत्येक फल पर दो बीज रहते हैं। दोनो के बीच मे संधि स्थल पर एक मोटी रेखा दिखाई पडती है।

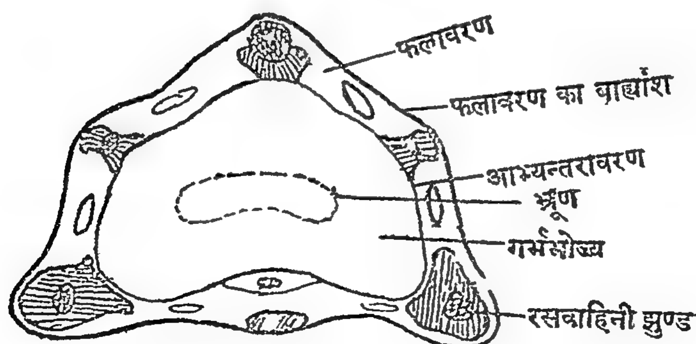


चित्र १४४



चित्र १४५

सधि स्थल पर दवाने से दो वीज निकल आते है। वीज लम्वे व अन्दर की तरफ नतोदर होते हैं। बीजो के वीच मे सूक्ष्म कला होती है। जो दोनो को



चित्र १४६

अलग करती है। बीज के ऊपर एक आवरक कला होती है। जिसका आकार पीताभ होता है इसको हटाने पर लम्बगोल मज्जा मिलती है। प्रत्येक फल मज्जा मे एक तरफ अकुर का भाग दिखाई पडता है।

अनुलम्ब छेद : छेद लेने पर अनुलम्ब मे ऊपर फलावरण नीचे बीज को विभाजन करनेवाली कला मिलती है।

अनुप्रस्थ छेद : अनुप्रस्थ छेद लेने पर ऊपर पीताभ फलावरण नीचे बीजावरक झिल्ली पश्चात बीज शस्य का भाग मिलता है।

परिमाण : १२ फल का भार एक रत्ती होता है।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृत वर्ण पीताभ व हरिताभ।

कषे : पीताभ।

भंगे : पीताभ।

चूर्णे : पीताभ।

क्वाथे : पीत हरिताभ।

तैल : पीताभ।

घृत : हरिताभ।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईषत् विलेय।

रस परीक्षा : प्रधान रस मधुर। अनुरस कषाय।

गंध परीक्षा : मृदु गंध, सुगंध।

मूर्तगुण : कठिन, खर, रूक्ष व लघु।

शब्द परीक्षा : भंगुर दवाने पर दोनो बीज सरलता से अलग हो जाते है।

गण विनिश्चय : प्रायशः मधुर होने से यह पार्थिव वर्ग का द्रव्य है।

नोट : बीजो को परीक्षा नली मे रख कर जलाने पर इससे एक सुगंधित उडनशील तैल पाया जाता है।

धान्यक परीक्षा : कोरियेन्ड्रम सैटिवम्।

नाम : धान्यक, धनिया।

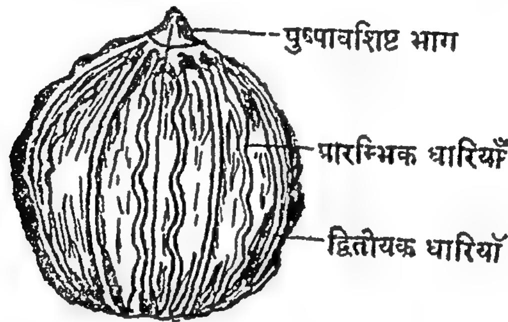
वर्ग : अम्बेलीफेरी।

चरक : तृष्णानिग्रह, शीतप्रशमन।

सुश्रुत : गुडूच्यादि।

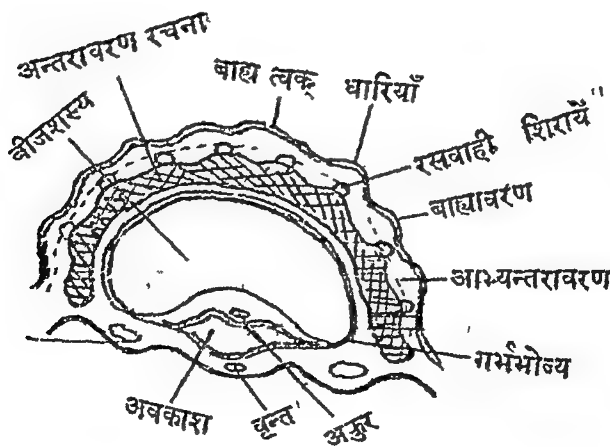
आकृति विज्ञान : धनिया एक सामान्य जाति का फल है। इसका आकार लघु अडाकार होता है। यह दोनो सिरो पर पतला बीच मे मोटा वृत्ताकार होता है। इसके अधोभाग पर वृन्त और ऊर्ध्व भाग पर योनिछत्र का अवशिष्ट भाग होता है। लम्बाई मे इस पर १२ धारियाँ लगी होती है। दो बीजो का सन्धि स्थल

स्पष्ट दिखाई पडता है। यह स्पर्श मे रूक्ष तथा वर्ण मे पीताभ होता है। इसमे दो बीज होते है जोकि सरलता से दबाने पर पृथक हो जाते हैं। दोनों के सन्धि स्थल पर एक सीवनी-सी दिखलाई पडती है। प्रत्येक बीज अन्दर की ओर नतोदर होता है। इस पर दो आवरण होते हैं। ऊपर का आवरण कठिन और पीला होता है। नीचे का आवरण पतला और मृदु होता है। इन आवरणो को हटाने पर नीचे फल मज्जा मिलती है जो श्वेताभ होती है। इसके नतोदर भाग की तरफ पीताभ अंकुर या भ्रूण दिखाई पडता है।



चित्र १४७ धनियां

च्छेदन : अनुप्रस्थ छेद लेने पर ऊपर प्रथम पीत कठिन आवरण मिलता है। पश्चात् बीज के ऊपर की पतली झिल्ली मिलती है, उसके नीचे फल शस्य होता है।



चित्र १४८

अनुलम्ब छेद लेने पर यही बाते दिखाई पडती है। इनके अतिरिक्त दोनो बीजो के बीच की विभेदक झिल्ली भी मिलती है।

परिमाण : सात फल एक रत्ती के बराबर होता है ।

वर्ण : पीताभ ।

प्राकृतिक वर्ण : पीताभ ।

भंगे कषे : पीताभ ।

चूर्ण : पीताभ ।

क्वाथ : पीताभ ।

घृत : पीताभ ।

ज्वाला : रक्ताभ ।

विलेयेता : जल, तैल व घृत मे ईषत् विलेय है ।

रस : प्रधान रस मधुर ईषत कषाय ।

गंध : मृदु सुगंधित ।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष, लघु ।

शब्द परीक्षा : भंगुर ।

दोनो बीज सरलता से दवाने पर पृथक हो जाते है ।

गण विनिश्चय : प्रायशः मधुर होने से यह प्राथिव वर्ग का है ।

नोट : परीक्षा नली मे रख कर परीक्षा करने पर ज्वाला मे तपाने पर एक प्रकार का सुगन्धित उड़नशील तैल मिलता है ।

जीरक परीक्षा : क्यमिनम् साइमिनम्
(Cuminum Ciminum)

नाम : जीरक, जीरा ।

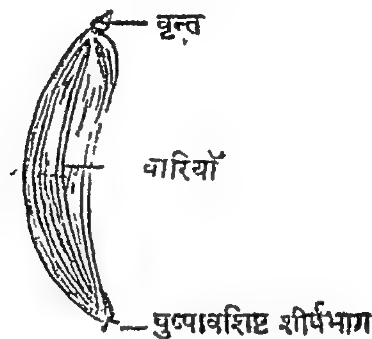
वर्ग : शतपुष्पा कुल, अम्बेली फेरी । (Umbelifarae)

चरक : शूल शमन, शिरोविरेचन ।

सुश्रुत : पिप्पल्यादि ।

आकृति विज्ञान : यह जीरे का फल है जो सामान्य फल है । यह दो प्रकार का पाया जाता है । श्वेत व कृष्ण । काले जीरे का प्रयोग औषधि मे अधिक होता है । यह देखने मे पतला, काला और दोनो सिरो पर पतला बीच मे कुछ मोटा होता है । नीचे की तरफ इसमे वृन्त लगा होता है जो छोटा होता है । अन्त मे ऊपर योनिछत्र का अवशिष्ट भाग रहता है । इसकी लम्बाई ४ से ७ मिली मीटर चौडाई १ से २ मिलीमीटर होती है । साथ मे दो बीज एक साथ लगे रहते है । इसका वर्ण भूरा या काला भूरा होता है । इसमे एक प्रकार की सुगध होती है ।

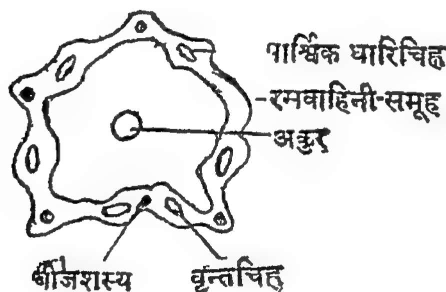
इसके ऊपर चार या पाच रेखाये जो पतली होती हैं, लम्बाई की दिशा मे पाई जाती है। इनका वर्ण पीत व भूरा होता है। ऊपर की तरफ चार और नीचे दो रेखाये रहती है। ऊपर के आवरण को हटाने पर नीचे बादामी वर्ण का बीज शस्य दिखाई पडता है। वृन्त की तरफ भ्रूण का छोटा अश रहता है। इसमे एक प्रकार का सुगधित तैल पाया जाता है।



चित्र १४९

छेदन : अनुलम्ब छेद लेने पर ऊपर फलावरण भूरे रङ्ग का मिलता है। उसके नीचे बीज शस्य होता है। बीच मे कटा हुआ भ्रूण का भाग दिखाई पडता है।

अनुलम्ब छेद मे यही द्रव्य मिलते है।



चित्र १५०—व्यत्यस्तच्छेद

परिमाण :

विलेयता : यह वारि तैल व घृत मे ईषत् घुलनशील होता है।

वर्ण : प्राकृत वर्ण काला, भूरा, कषेभंगे : श्यामाभ।

क्वाथ : पीताभ

घृत : पीताभ

तैल : पीतकृष्णाभ

ज्वाला : पीतरक्त
गंध परिज्ञान : इसमें एक प्रकार का सुगन्धित गन्ध मिलता है ।
शब्द : यह भंगुर होता है ।
स्पर्श परीक्षा : स्पर्श मे यह रूक्ष, खर व लघुहोता है ।
रस परीक्षा : प्रायशः कटुतिक्त होने से यह आग्नेय वर्ग का है ।
गण विनिश्चय : कटुतिक्त रस होने के कारण यह आग्नेय है ।

बिभीतक या बहेड़ा

नाम : बहेडा या बिभीतक Terminalia Belarica.
गण : ज्वरहर विरेचनोपग च० ।
मुस्तादि व त्रिफला सु० ।
नै० वर्ग : हरीतक्यादि । कन्ब्रीटेसी (Combritaceae)

परिचय : यह वृक्ष जातीय होता है, जिसकी ऊँचाई ३० से ४० फीट तक होती है । इसके फल को वहेडा कहते हैं । यह फल धूसर वर्ण का गोल होता है । हरा रहने पर यह गोल रहता है । शुष्क हो जाने पर इस पर उभार व खात दिखाई देते है । इस कारण यह स्पर्श मे खुरदरा होता है । फल की लम्बाई लगभग डेढ इंच, मोटाई एक इञ्च, परिणाह २ इंच के वरावर होता है । फल वृन्त जहाँ लगता है वहाँ वृंत की तरह ऊँचाउभार दिखाई देता है । वहाँ कुछ नोकदार होता है । फल के ऊपरी भाग पर वृंत के ठीक विपरीत स्थान पर कुछ दबा हुआ होता है । फल स्पर्श मे कठिन होता है । आर्द्र फल कुछ मृदु होते हैं । इस पर धूसर वर्ण की कला लगी होती है । आसानी से इसे खुरच कर अलग किया जा सकता है । इसके नीचे के भाग पर श्याव रक्त वर्ण का कणदार भाग गूदे का मिलता है । इसके नीचे फल की गुठली होती है, जिसका वर्ण पीला होता है । यह कठिन अण्डाकार व दृढ होती है । इस पर ६ रेखाये दृष्टिगोचर होती हैं ।

छेद लेने पर : चौडाई मे छेद लेने पर निम्न भाग स्पष्ट दिखाई पडता है ।

१ : ऊपर पतला कला सदृश आवरण फल पर होता है। यह वाह्यावरण है ।
२ : इसके नीचे मासल भाग दो सूत मोटा श्याव व रक्तवर्ण का होता है । यह मेसोकार्प कहलाता है ।

३ : इसके नीचे अष्ठि का भाग कठिन पीत वर्ण का होता है जो दृढ, मोटा व कठिन होता है और बीज को ढके रहता है।

४ : बीज के ऊपर एक तनुकला चमकदार पीत वर्ण की होती है।

५ · बीज : अष्ठि के नीचे पीताभ ऊपर से व भीतर श्वेत वर्ण का बीज होता है।

अनुलम्बच्छेद : इसमे भी वही भाग दिखाई देते हैं जो कि व्यत्यस्त च्छेद लेने पर दिखाई पडते हैं।

बीज : बीज के ऊपर की कला हटा देने पर नीचे का द्विदलीय भाग गर्भ भोज्य दिखाई पडता है। इसके भीतर अङ्कुर व भ्रूण का भाग रहता है।

वर्ण · ऊपर से प्राकृतिक वर्ण धूसर होता है।

कर्षे : कृष्णाभ रक्त।

भंगे : कृष्ण पीत।

चूर्ण : भूरा।

क्वाथ : गहरा भूरे कपाय वर्ण का।

तैल व घृत में : पीत। ज्वाला का वर्ण रक्त।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईपत् विलेय है।

रस : प्रधान रस कपाय और अनुरस मधुर सा है।

गंध : मृदु, सुगंध।

स्पर्श परीक्षा : स्पर्श मे यह शीत कठिन, खर, रूक्ष, लघु होता है। आर्द्र फल गुरु होता है।

शब्द परीक्षा : द्रव्य गत शब्द गुठली मे हिलाने पर कुछ आवाज होती-सी है। यह अभंगुर है।

वर्ग : प्रायशः कपाय होने से वायव्य वर्ग का है।

हरीतकी या हरड़ विवरण (Terminalia chebula.)

नाम : हरीतकी। अभया।

चरक : प्रजा स्थापन, ज्वरघ्न। कुष्ठघ्न। कासघ्न। अर्शोघ्न।

सुश्रुत : त्रिफला, परुपकादि, आमलक्यादि। त्रिवृतादि।

प्राकृत वर्ग · हरीतक्यादि, कम्ब्रीटेसी। (Combritaceae)

विवरण : हरीतकी के फल दो प्रकार से काम मे आते है। हरे व पक्क।

हरे कच्चे फलो को तोडकर जब वे छोटे होते है एकत्र करके सुखा लेते है। इन्हे बाल हरीतकी या काबली एरड कहते है। जो बड़े व पकने पर सुखाये जाते हैं, उन्हे हरड या हरीतकी कहते है। बाल हरीतकी का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

यह फल छोटे व यव के आकार के है। इस पर झुरियां पडी हुई है। यह स्पर्श मे कठिन व काले वर्ण के और रूक्ष हैं। इनकी लम्बाई एक इन्च के बराबर होती है। चौडाई आधी इन्च से कुछ कम होती है। शुष्कावस्था मे ये कोई चपटे होते है। आर्द्रावस्था मे यह गोल होते है। सूख जाने पर इस पर पॉच रेखाये दृष्टिगोचर होती है। ऊपर को नोकदार व आगे के भाग मे गोल व स्थूल होती है। इसमे पॉच उभार हैं। दो उभारो के बीच मे एक गहरी रेखा दबी हुई है। इसमे वृंत का अवशिष्ट भाग दिखाई पडता है। यह नुकीले भाग पर लगा होता है। यह कठिन है। चाकू से काटने पर भीतर भी काली है।

छेदन : इसके व्यत्यस्त काट लेने पर इसके ऊपर एक आवरण मिलता है। जो पतला होता है। इसके नीचे फल शस्य का काला कुछ भूरा भाग है, जो मांसल है। इसके नीचे अष्टि का पतला भाग है, जो पीले रंग का है। यह पतला और हल्का है। परिपुष्ट न होने से यह पतला रह गया है।

इसके नीचे के भाग पर मीगी का छोटा-सा अंश लगा हुआ है।

अनुलम्ब काट : इसमे भी वही अंश मिलते है।

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण कृष्ण है। कषे, भंगे चूर्ण मे कृष्ण है। क्वाथ का वर्ण रक्ताभ है।

विलेयता : वारि मे कुछ घुलनशील है।

रस : रस मे यह प्रायश. कषाय ओर अनुरस मे यह अम्ल व तिक्त है।

गंध परीक्षा ' मृदु सुगन्ध।

स्पर्श परीक्षा : कठिन खर गुरु है।

शब्द परीक्षा : अभंगुर।

वर्ग : प्रायश' कपाय होने से यह वायव्य वर्ग का है।

काकड़ा सिगी (Rhur succedenia)

नाम : कर्कट शृङ्गी। काकडा सिगी।

गण : चरक : कासहर। हिक्का निग्रहण।

सुश्रुत : काकोल्यादि गण।

प्राकृ० वर्ग : आम्र कुल । एनाकार्डिएसी (Anacardeaceae)

आकृति विज्ञान : यह काकडा सिगी जिसे कक्कर या काकर कहते है उस वृक्ष का फल है। वृक्ष की शाखाओ पर या पत्र वृंतो पर एक प्रकार के कीटो द्वारा यह शृगाकार कोष निर्मित हो जाते है । इसकी लम्बाई ४ इञ्च और चौडाई एक इञ्च तक होती है। यह फल भीतर से केकड़े के सीग की तरह आकार वाला होता है अतः इसे काकडा सिगी कहते है। यह चपटा नलिकाकार भीतर से पोला होता है। इसका वाह्य वर्ण रक्ताभ धूसर होता है इसके ऊपर अनुलम्ब दिशा मे वहुत सी रेखाये पाई जाती है। इस कारण यह स्पर्श मे खर होता है। इसमे एक ओर स्थूल भाग होता है। वहा पर इसमे छिद्र होता है। दूसरी तरफ यह नोकीला होता है।

यह एपिस नामक एक मक्खी जातीय कीट के द्वारा कृत्रिम फलाकृति का द्रव्य है। जब उक्त कृमि वृक्ष की शाखा या पत्र वृन्त पर बैठता है तब तो उसके दंश से एक, प्रकार का कषाय रसवाला स्राव निकलता है। धीरे-धीरे इसका आकार एक फल की तरह हो जाता है। भीतर इसके धूलि की तरह एक प्रकार का कीट का अवशेप भाग मिलता है।

व्यत्यस्तच्छेद : इसमे मुख्यतया दो भाग मिलते है।

बाह्य भाग : फल के बाहर का आवरण पतला धूसर वर्ण का होता है, जो फल के चारो ओर रहता है।

आभ्यतर भाग : यह धूसर वर्ण का दो मिलीमीटर मोटा त्वचा की तरह का वस्तु होता है।

केन्द्रीय भाग : इसके भीतर का भाग रिक्त होता है। कीट का अवशिष्ट भाग इसमे मिलता है।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृतिक वर्ण रक्त व धूसर वर्ण का होता है।

कपे । भगे व चूर्ण का वर्ण धूसर।

क्वाथ : रक्त धूसर ।

तेल : पीत धूसर। घृत : धूसर।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईषत्।

रस परीक्षा : रस मे कषाय ।

गंध परीक्षा : मृदु सुगंध ।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष, लघु ।

वर्ग : प्रायशः कषाय होने से यह वायव्य द्रव्य है।

काली मिर्च का विवरण (Piper Niger)

नाम : मरिच, मिर्च। काली मिर्च।

गण : चरक शूल प्रशमन, दीपनीय, कृमिघ्न, शिरोविरेचन।

सुश्रुत : पिप्पल्यादि, त्र्यूषणादि।

वर्ग : पिप्पली कुल। पाईपरेसी। (Piparaceae)

आकृति विवरण : काली मिर्च एक प्रकार की लता से प्राप्त होने वाला एक फल है जो कि आकृति मे वृत्ताकार, श्याम वर्ण का होता है। ताजा फल हरे वर्ण का तथा शुष्क हो जाने पर यह काला होता है। जब यह पुष्ट होकर हरा ही रहता है तब ही इस को तोड कर सुखा देते हैं। आर्दावस्था मे यह पूर्ण वृत्त होता है। सूख जाने पर इसके ऊपर जालीदार झुरिया पड जाती है। वृंत की जगह पर इसके चार उभार होते है। ऊपर के भाग पर स्त्रीपुष्पावशिष्ट भाग रहता है। इसका व्यास तीन मिलीमीटर होता है। परिधि पाँच मिलीमीटर होती है। वृन्त की जगह पर एक चिह्न होता है। ऊपर एक उभार सा उठा होता है। कच्चे फल सुखाने पर अधिक तीक्ष्ण होते हैं। पक्व फल का वर्ण भूरा होता है। बाजार मे इसे रंग करके काला बना लेते है। छोटे फल अधिक कटु और तीक्ष्ण होते है। आर्द्र मरिच मे का ऊपर का भाग सरलता से हटा कर अलग कर सकते है। ऊपर की त्वचा के हट जाने के बाद इसमे का भाग श्वेत वर्ण का दिखाई देता है। जो स्पर्श मे कठिन होता है।

छेदन : व्यत्यस्तच्छेद लेने पर इसमे निम्न लिखित भाग दिखाई पडते हैं।

१ : ऊथर का फलावरण या पेरीकार्प।

२ : उसके नीचे त्वचाका दूसरा स्तर दिखाई देता है। जो शिराजालपूर्ण होता है।

३ : त्वचा के बाद नीचे अष्ठिका भाग मिलता है। इसे टेस्टा कहते है।

४ : अष्ठि के भीतर मज्जा का भाग होता है, जो अष्ठि के पार्श्व मे गहरे वर्ण का और बाद मे यह नीचे जाकर पीले वर्ण का दिखाई पडता है।

५ : इसका केन्द्रिय भाग रिक्त होता है।

अनुलम्ब च्छेदन :

१ : अनुलम्ब काट मे इसमे पहले त्वगीय भाग का अंग मिलता है।

२ : नीचे त्वगीय भाग का दूसरा भाग मिलता है।

नीचे अष्ठि का भाग होता है।

४ : अष्ठि के नीचे जो गहरा भाग होता है उसे बाहरी भाग या आउटर पेरीस्पर्म कहते हैं ।

इसके नीचे का भाग जो पीले रंग का होता है वह आभ्यंतर मज्जा या इनर पेरी स्पर्श होता है ।

इसके बाद रिक्त भाग होता है ।

५ : स्त्री पुष्पावशिष्ट भाग की तरफ अष्ठि के नीचे के भाग पर भ्रूण का भाग होता है । भ्रूण के इतस्तत : गर्भ भोज्य का छोटा सा अंश होता है ।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृतिक वर्ण भूरा होता है । कच्चे काट कर सुखाने पर वह काला हो जाता है ।

कर्पे कृष्ण धूसर : भगे श्वेत ।

चूर्ण धूसर । क्वाथ रक्ताभ पीत ।

तैल पीत । घृत पीत ।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईषत् विलेय है ।

रस परीक्षा : स्वाद मे कटु ।

गंध : तीक्ष्ण । सुगंध धूपन मे उग्र ।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, रूक्ष, खर, लघु ।

वर्ग : प्रायश. कटु होने से आग्नेय है ।

त्वक् परीक्षा विज्ञान :

द्रव्य परीक्षा करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बाजार मे मिलने वाली छालो मे हमेशा मूल की छाल, शाखा की छाल और काड की भी छाल परीक्षार्थ मिलती है । अतः परीक्षक को हमेशा ही त्वगीय सब अवयव मिलेगे यह सभव नही है । यथाः

उपत्वक् : ऊपर का छाल ।

प्रधान त्वक् : जिसमे कई भाग मिश्रित रहता है । यथा :

कार्क : (Cork)

फेलोजेन : (Phelogen)

फेलोडर्म : (Pheloderm)

कोरटेक्स : (Cortax)

फ्लोयम : (Phloem)

अतः जब भी कोई छाल परीक्षार्थ आ जाय तो यह ध्यान पूर्वक देखना चाहिए कि कौन कौन भाग इसमे मौजूद है . अतः निम्न बाते परीक्षा के पश्चात् लिखना चाहिए ।

१ : आकृति : इसमे आकार-प्रकार, लम्बाई, चौडाई मोटाई, उस नमूने का लिखना चाहिए जो नमूना सामने दिया गया हो।

२ : आकृति मे यह किस प्रकार के आकार का यथा : वोरी वंडल या चिपटे टुकडो से मिला यह भी नोट करना चाहिए, जो बाजारो मे मिलता है।

३ : पृष्ठ : त्वचा के दोनो पृष्ठो का विवरण देना चाहिए। जिसमे त्वचा का वाहरी शुष्क भाग उपस्थित है अथवा नही। जो है उसका क्या स्वरूप है।

४ : वर्ण : बाहरी और भीतरी दोनो तरफ के त्वचा का वर्ण लिखना चाहिए।

भंगे : तोडने पर इसकी टूट किस प्रकार की होती है। टूटे हुवे भाग पर का सतह का स्वरूप कैसा है। चिकना, धारदार, अथवा यह विपम है। या श्रृग की तरह कडा है।

रस : इसका रस क्या है।
गंध : वस्तु का गंध क्या है।
विचित्रता . इसमे क्या विचित्रता है।
गण . इसका गण क्या है।

रायायनिक संगठन : संगठन मे प्राप्त होनेवालीवस्तु : कोई द्रव्य रासायनिक परीक्षण मे मिलते हो उनका भी नाम व प्रकार तथा विधि परीक्षा की देनी चाहिए।

त्वक् को तैयार करने की विधि

१ : प्राय : प्रत्येक द्रव्य को १२ से १८ घण्टे जल मे भिगोकर तब उसका च्छेद लेकर के परीक्षा करना चाहिए।

२ : कठिन छालो मे २४ से ३६ घंटे तक पानी मे भिगोना पडता है। अधिक सूत्र वाली छालो को देर तक भिगोने पर ही अच्छा छेदन करने की सुविधा मिलती है।

३ : आवश्यकतानुसार रजक द्रव्यो का भी प्रयोग किया जा सकता है।

४ : चौड़ाई और लम्बाई दोनो प्रकार के च्छेदन करके तब विवरण ठीक दिखाई पडता है।

५ : कोई विशेषता हो उसे भी नोट कर के रखना चाहिए।

अशोक त्वक्परीक्षा

ज्ञातव्य : अशोक की शुष्क त्वचा को लीजिए उसके वाह्य व आभ्यंतर भागो की रचना व स्थिति का अध्ययन करिए और आकार को नोट करिए। ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई त्वक् खंडों का निरीक्षण करिए।

२ : इसके ऊपरी स्तर का फटा व रूक्ष कृष्ण श्वेत भाग की वनावट देख कर उसे चित्रित करिए।

३ : ऊपर के स्तर को खुरच कर या तोडकर उसकी भीतरी स्थिति का अवलोकन करिए।

आकृति : आकृति परिज्ञान के वाद उसके रसका ज्ञान जिह्वा पर रख करके प्राप्त करिए।

वर्ण व गंध : इसके चूर्ण का वर्ण इसके क्वाथ का वर्ण नोट करिए। गंध परिज्ञान के लिए चूर्णका अंश लेकर पानी के साथ मिलाकर सूंघिए। गंध को नोट करिए।

शब्द व स्पर्श : स्पर्श करके इसके गुणो को नोट करिए।

इस प्रकार इसके पचेन्द्रिय विवरण को नोट करके इसका विवरण तैयार करिए।

अशोक की त्वचा : वार्कआफ सरेका इन्डिका
(Bark of Sareka Indica)

नाम : अशोक त्वक्।

वर्ग : शिम्वी कुल : सीजल पिनिएसी।

आकृति विज्ञान : अशोक की त्वचा पतली नलिकाकार होती है। इसका वाह्य भाग हल्की हरितआभायुक्त धूसर वर्ण का होता है। ऊपरी भाग पर अनेक गर्त व उत्सेध पाये जाते है। आभ्यंतरीय त्वक्भाग ऊपर की अपेक्षा समतल व चिकना होता है। इसका वर्ण रक्त वर्ण का होता है।

छेदन : अनुलम्व छेद लेने पर इसमे तीन स्तर दिखाई पडते है। वाह्य मध्यस्थ व आभ्यतर।

१ : वाहरी भाग श्याम धूसर वर्ण का होता है।

२ : मध्यस्थ भाग सौत्रिक तंतुओ से वना हुआ दृढस्तर होता है।

३ : आभ्यंतर स्तर मे अनुलम्व मे स्थित सूत्र दिखाई पडते हैं।

अनुलम्व छेद : इसमे भी वही तीन स्तर दिखाई पडते है।

परिमाण : त्वक् खड को माप करके उसकी लम्बाई, चोटाई व ऊँचाई का विवरण दीजिए।

वर्णपरिज्ञान : प्राकृत वर्ण रक्ताभ धूसर। कपे व भगे, रक्ताभ धूसर, चूर्ण, रक्त श्याम, क्वाथ, रक्त वर्ण। तैल व धृत, पीताभ रक्त, ज्वाला रक्त।

रसपरीक्षा : प्रायशः कषाय, अनुरस ईषत्तिक्त।

गंध : मृदु सुगध, आर्द्र दुर्गन्ध युक्त।

स्पर्श : कठिन, रुक्ष, व लघु।

शब्द : अभंगुर भग्न करने पर कट कट शब्द।

गण : प्रायश. कषायत्वात् ईषत् तिक्तत्वात् वायव्यः।

अर्जुन त्वक् सम्बन्धी आवश्यक विवरण

विधि :

१ · अर्जुनत्वक् का एक खण्ड लीजिये, उसके वाह्य स्तर का अवलोकन करिये, एकाधिक छाल को उठाकर देखिये। और अपना विचार वनाइये।

ऊपर श्वेत वर्ण का चटखे हुए स्थान पर काले व भूरे रग को नोट करिये।

२ ऊपर के स्तर को हटा कर नीचे का भाग अवलोकन करिये।

३ : नीचे की रचना विशेष को देखकर चित्र वना कर उसे नोट करिये।

४ : त्वक् खण्ड की लम्वाई चौडाई नोट करिये। इसे तोडकर भंग की स्थिति का स्वरूप नोट कर लिखिए।

५ : इसके चूर्ण का स्वाद लीजिए। प्रधान रस और अनुरस को नोट करिये।

६ : जल मे भिगे भाग को काट कर उसके च्छेद का रूपाकन करिये। चौडाई मे कटे हुए भाग का रूप अवलोकन करिये। और उसके स्तरो को नोट करिये।

७ : त्वक् चूर्ण को एक टेस्ट ट्यूब मे लेकर सुरा प्रदीप पर क्वथित करिये। फिर व्लाटिंग पेपर से इसे छान कर वर्ण नोट करिये। इसी प्रकार तैल, घृत व सुरा मे भी डालकर इसका वर्ण लिखिये।

८ : ज्वाला पर जलाकर उसका वर्ण नोट करिये।

९ : चूर्ण को पानी मे मिला कर उसका गध देखिये और नोट करिये।

१० : अग्नि मे डालकर उसका गध लीजिये।

११ . त्वचा को लेकर उसका स्पर्श करिये और वह मृदु है अथवा कठिन है रूक्ष, खर, सान्द्रगुरु, लघु या कैसा है यह नोट करिये और लिखिये।

१२ : शब्द ज्ञानार्थ द्रव्य गत कोई शब्द हो उसे नोट करिये। न होने पर उसे प्रदीप पर जलाइये कोई शब्द मिलता हो उसे नोट करिये।

इस प्रकार हर एक वस्तु की परीक्षा करके आप पूरी परीक्षा का सारा नोट करिये।

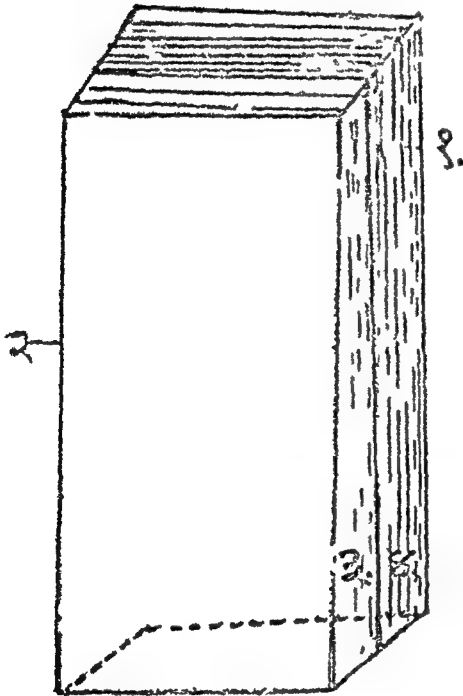
अर्जुन त्वक् की परीक्षा (Terminalia Arjuna)

नाम : अर्जुन त्वक्।

वर्ग : हरीतकी वर्ग कम्ब्रिटेसी (Comb-ritaceae)

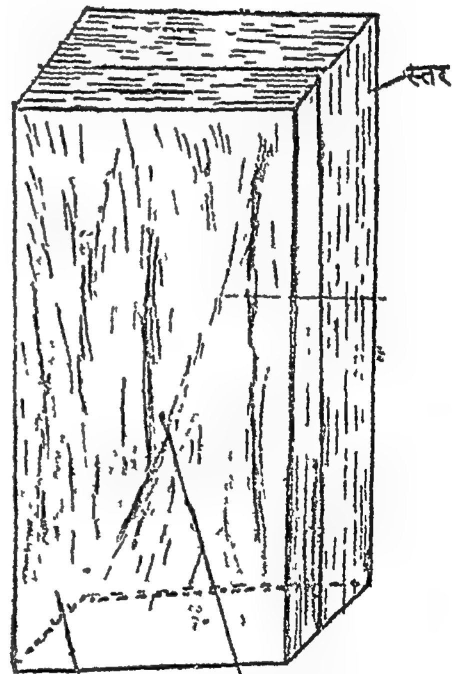
चरक : कषाय स्कन्ध, उदर्द प्रशमन।

सुश्रुत : न्यग्रोधादि गण, सालसारादि गण।



१. स्तर २. बाह्यत्वक् का दृश्य
३. प्रथम स्तर भेद
४. द्वितीय स्तर क्रम किरणवत रचना

चित्र १५१



चित्र १५२

आकृति विज्ञान : अर्जुन की त्वचा का वर्ण ऊपर से श्याव व रक्त वर्ण की होती है। इसके हटा देने पर श्वेत वर्ण की त्वचा मिलती है। और यही स्थायी रहती है। सबसे ऊपर की त्वचा अपने आप अलग हो जाती है। नीचे

की हल्के रक्त वर्ण की ऋजुरेखा द्वारा स्तरबद्ध होती है। आर्द्र करके देखने पर पूरी त्वचा दो भागो मे विभक्त दिखाई पडती है। ऊर्ध्वस्तर किञ्चित् घन रक्त वर्ण की और निम्न स्तर किंचित् अल्प रक्त वर्ण का होता है। इनमे कई स्तर दिखलाई पडते है।

छेदन परीक्षा : ताल यन्त्र द्वारा देखने पर लम्बाई की दिशा मे सौत्रिक संगठन होने से कई स्तर दृष्टिगोचर होते हैं। इनकी संख्या १६ से १७ तक मोटी त्वचा मे दिखाई पडते है।

इसके स्तर श्वेत व भूरे रंग के दिखाई पडते हैं। श्वेत स्तर मे सौत्रिक अंश अधिक और भूरे स्तर मे लालिमा लिए हुए द्रव्य अधिक पाये जाते है।

वर्ण : मूल वर्ण, लालिमा लिए हुए भूरा दिखाई देता है।

चूर्ण : रक्ताभ···क्वाथ रक्ताभ···घृत व तैल, गुलाबी. ज्वाला रक्त पीताभ:

विलेयता : वारि मे अधिक विलेय है। उष्ण वारि मे शीत से भी अधिक विलेय है।

घृत व तैल मे ईषद् विलेय है।

गंध : मृदुगंध···सुगंध ' अग्नि मे डालने पर धूप की तरह सुगन्धित।

रस : प्रायश', कषाय।

स्पर्श : कठिन, खर, गुरु।

शब्द : भग्न कालीन, चट-चट, अभंगुर।

गण : प्रायशः कषाय व ईषत्तिक्त होने से यह वायव्य गण का है।

नोट : परीक्षा नली मे शुष्क चूर्ण डालकर ज्वाला मे रखने पर पहले पीत धूम निकलता है। यह ज्वलनशील होता है। ज्वलन के बाद इसमे पीत वर्ण के तैल बिन्दु दिखाई पडते है। यह अर्जुन त्वक् के भीतर के सुगधित तैल की स्थिति के निदर्शक है।

लोध्र त्वक् का विवरण (Symplocose Racemosa)

नाम : पठानी लोध।

वर्ग : लोध्रादि : सिम्लोकेसी : (Symplocaceae)

चरक : शोणितास्थापने, संधानीय, पुरीष संग्रहणीय, कषायस्कन्ध।

सुश्रुत : लोध्रादि, न्यग्रोधादि।

आकृति विज्ञान : लोध्र का त्वक् चपटा व कुछ मोटा होता है। इसका बाह्य भाग ऊपर से धूसर वर्ण का होता है। यह श्लक्ष्ण भी होता है। आभ्यन्तर भाग खुरदरा होता है। इन पर रेखाये ऊपर से नीचे तक जाती हुई दृष्टिगोचर होती है। बाहरी त्वचा सरलता से अलग हो जा सकती है। बाह्य स्तर को पृथक करने पर नीचे मृदु स्तर वाली रचना मिलती है। मध्य व आभ्यन्तर स्तर की रचनाये भिन्न-भिन्न दिखाई पडती है। मध्य स्तर मे रेखायें नही हैं और यह दृढ संहत रचना का है।

छेदन :
वर्ण : प्राकृत वर्ण : कपिश धूसर।
कषे : अरुण पाडुर।
भगे : बाह्य रक्त वर्ण आभ्यन्तर वर्ण श्वेत।
क्वाथे : रक्त पीत।
चूर्ण : अरुण वर्ण।
वियलेता : वारि : तैल, घृत की अपेक्षा अधिक घुलनशील।
ज्वाला : आरक्त पीत।
रस : प्रधान रस कपाय। अनुरस : तिक्त।
गंध : मृदु।
स्पर्श परीक्षा : लघु, मृदु, रूक्ष।
शब्द परीक्षा : भंगुर।
गण विनिश्चय : कषाय रसप्रधान होने से वायव्य गुण प्रधान है।

पाटला त्वक् : स्टेरियो स्परमम् :
(Sterio Spermum)

नाम : पाटला। (Suaveolens)
वर्ग : श्योनाकादि वर्ग (Bignoneaccace)
चरक : शोथहर।
सुश्रुत : बृहत् पचमूल, अधो भागहर, आरग्वधादि।

आकृति विज्ञान : पाटला का त्वक् छोटे-छोटे टुकडो मे चपटे रूप मे मिलता है। यह चारो तरफ से उन्नतोदर होता है। मध्य का भाग कुछ नतोदर होता है। बाहरी ऊपरी पृष्ठ रूक्ष, खुरदरा तथा अनेक धारियो से युक्त होता है। कही-कही ऊपरी स्तर हटाने पर नीचे का भाग स्पष्ट दिखाई पडता है। इस त्वक्

के अनियमित किनारे है। कोई किनारा मोटा कोई पतला-सा दिखाई देता है।

अधःपृष्ठ : यह पृष्ठ काष्टमय है। तथा उस पृष्ठ भाग का वर्ण ऊपरी पृष्ठ से कृष्ण वर्ण का है।

सच्छेदन परीक्षा : अनुप्रस्थ च्छेदन करने पर तीन प्रधान भाग दिखाई पडते हैं।

बाह्य त्वक् : यह धूसर वर्ण की पतली रचना है और ऊपरी भाग पर व्याप्त है।

आभ्यंतर त्वक : यह भाग अधिक मोटा है। तथा कुछ कृष्ण वर्ण का है। यह ७ या ८ स्तरो मे विभक्त है। यह स्तरे दो भागो से बनी हुई है। यथा : सौत्रिक ततुमय भाग व असौत्रिक तुंतुमय भाग। पहली किंचित पारदर्शक और पीताभ है इस प्रकार ८ व ९ स्तरे हैं।

मध्य भाग : यह काण्ठमय है। और तन्तुओ से युक्त है। यह भाग अधिक मोटा नही है।

अनुलम्बच्छेद : इसमे भी ऊपर वाले तीन ही स्तर हैं।

परिमाण .

वर्ण : प्राकृत धूसर।

कपे : धूसर।

भगे : धूसर।

चूर्ण : धूसर।

क्वाथ : ईषद्रक्त।

तैल व घृत : ईपद्रक्त पीत।

ज्वाला : रक्त पीत।

विलेयता . वारि, तैल, घृत, ईपत् घुलनशील।

रस : प्रधान रस तिक्त।

अनुरस : मधुर, कपाय।

गंध : मृदुगधी।

धूपन : उग्र।

स्पर्श : कठिन, खर रुक्ष लघु।

शब्द : भग्नकालीन, चट् भगुर।

गण विनिश्चय : तिक्त प्रधान रसत्वात् तथा ईपत् कपायानुरसत्वात् तैजसम्।

श्योनाक त्वक् : ओरोक्साइलम् इंडिकम्
(Oroxylum Indicum)

नाम : श्योनाक, अरलु, शोणपुष्प ।

वर्ग : श्योनाकादि, बिगनोनिएसी (Bignoniaceae)

चरक : शोथहर, पुरीष संग्रहणीय, शीत प्रशमन, अनुवासनोपग, कषायस्कध ।

सुश्रुत : बृहत पंचमूल, अम्बष्ठकादि ।

आकृति विज्ञान : श्योनाक का त्वक् अनियमित छोटे-वडे टुकडो मे बाजार मे मिलता है कुछ त्वक् मोटी भी मिलती है जब कि कुछ पतली भी मिलती है । इनका ऊपरी भाग रूक्ष अनियमित उठे हुए उभारो से युक्त होता है । ऊपर की त्वचा का वर्ण कृष्णाभ पीत-सा है । इस पर कई अनियमित दरारे बनी होती है । किनारा विषम चपटा टूटा हुआ होने के कारण पतला दिखाई देता है ।

अधस्त्वक् ऊपरी विभाग की अपेक्षा कठिन तथा श्लक्ष्ण होता है । कही-कही यह काष्ठांश से युक्त होता है । इसमे सूत्र लम्बाई की दिशा मे पाये जाते है ।

छेदन : अनुप्रस्थ रूप मे काटकर देखने मे तीन प्रधान भाग दिखाई पडते है ।

१ : बाह्य त्वक् : यह भाग काफी मोटा होता है । तथा कुछ लालिमा लिए हुए होता है । इसकी रचना दानेदार प्रतीत होती है । बहुत ध्यान से देखने पर पतली धारिया भी दिखाई पडती है । यह भाग दो अन्य स्तरो से मोटा होता है ।

मध्य स्तर : यह भाग पतला या तन्तुप्रधान होता है । तोडने पर सरलता से नही टूटता ।

अन्तः स्तर : यह पतला तन्तुमय दृढ होता है ।

अनुलम्ब च्छेद ' इसमे भी वही स्तर दिखाई पडते है ।

भार : आयाम व विस्तार ·····।

वर्ण : प्राकृत पीताभ धूसर ।

कपे भंगे व चूर्णे : पीताभ धूसर ।

क्वाथ : रक्त, तैल व घृते पीताभ ।

ज्वाला : रक्ताभ पीत ।

विलेयता : वारि तैल व घृते ईषत् ।

गंध : शुष्क, मृदु, दुर्गंध, अवसादक ।

धूपन : अहृद्य।
स्पर्श : कठिन, खर, रुक्ष, लघु।
शब्द : भग्नकालीन चट, अभगुर।
रस : प्रायशः तिक्त, अनुरस कषाय।
गुण : प्रायशः तिक्त व कषाय होने से यह आग्नेय है।
नोट :—इसको प्रयोग मे देने से पूर्व इसको १= घंटे पानी मे भिगो रखना चाहिये।
२ : छेद लेने के लिए विशेप सावधानी की आवश्यकता होती है।
३ : गंध लेने के लिए पहले इसके चूर्ण को थोडी पानी मे मिला कर के तब उसका गंध लेना चाहिए।

बकुल त्वक् : माइमोसा एलेंगी
(Mimosops elengi)

नाम : बकुल।
वर्ग : मधूकादि (Sapotaceae)
चरक : कषाय स्कंध।
सुश्रुत : कषाय रस वर्ग।

आकृति विज्ञान : बकुल त्वक् का ऊपरी भाग कठिन, कर्कश, रुक्ष और फटा हुआ होता है। इसके ऊपर कटे हुए छोटे-छोटे टुकड़े दिखाई पडते है। इनकी ऊँचाई, निचाई, मोटाई सब अनियमित होती है। इन फटे टुकडो मे कई स्तरे दिखाई पडती है। फटे जगह पर गहरी-गहरी सीतायें पडी हुई है। आभ्यंतर भाग मे तन्तुसंयोग लम्बाई मे हैं।

बाह्य त्वक् : यह विषम भाव से निर्मित तथा स्थूल है। फटे हुए स्तर मे कई स्तरे दिखाई देती है। इसे हटा दे तो निम्न भाग चिकना मिलता है। यह आभ्यतर स्तर से सरलता से अलग हो जाते है।

आभ्यंतर स्तर : यह अपेक्षाकृत कठिन और तन्तु संयोग से बना हुआ है। इनकी स्थिति वक्राकार होती है। इसमे कई स्तरे होती हैं। इसका ऊपरी भाग सम हुआ करता है।

परिमाण :
वर्ण : कृष्ण व लाल। कषे कषाय वर्ण-भगे ईषत् रक्तवर्ण।
चूर्ण : धूसर लाल।

क्वाथ : लाल तैल व घृत ईषत्, लाल ।

ज्वाला : पीताभ ।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईषत् लाल ।

रस : प्रायश. कषाय तिक्त अनुरस ।

गंध : मृदु सुगंध ।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रुक्ष, लघु ।

शब्द : ज्वलनकालीन, कुछ नही, अभंगुर ।

गण : कषायप्राय होने से व अनुरस तिक्त होने से वाग्रव्य है ।

काचनार त्वक्, बउहिनिया वैरिएगेटा
(Bauhinia Variegata)

नाम : कांचनार ।

वर्ग : शिम्बिकुल । उपकुल, पूति करंजादि, (Leguminosae-Caesal Piniaceae)

चरक : वमनोपग ।

सुश्रुत : ऊर्ध्वभागहर, कषायवर्ग ।

आकृति विज्ञान : काचनार की त्वचा नलिकाकार अर्धगोल और लम्बी होती है । इसका बाहरी भाग खुरदरा तथा किंचित् अनियमित दानेदार उभारो से युक्त होता है । इन उभारो का वर्ण रक्त और क्वचित काला दिखाई पडता है । उपरितन त्वचा का भाग ईषत् पीत श्वेत-सा दिखाई पडता है ।

अधःपृष्ठ : नतोदर अर्धवृत्ताकार वा पृष्ठ की अपेक्षा चिकना तथा रंग में श्वेत धूसराभ दिखाई पडता है । इसमे तंतु लम्बाई की दिशा मे रहते हैं । उतारने पर सारा का सारा छिल्का एक स्तर मे निकल आता है । अध.पृष्ठ में त्वगावरण हटा देने पर नीचे से रक्ताभ भाग दिखाई पडता है । इस आवरण में चार या पॉच स्तर एक ही मे चिपके हुये रहते हैं ।

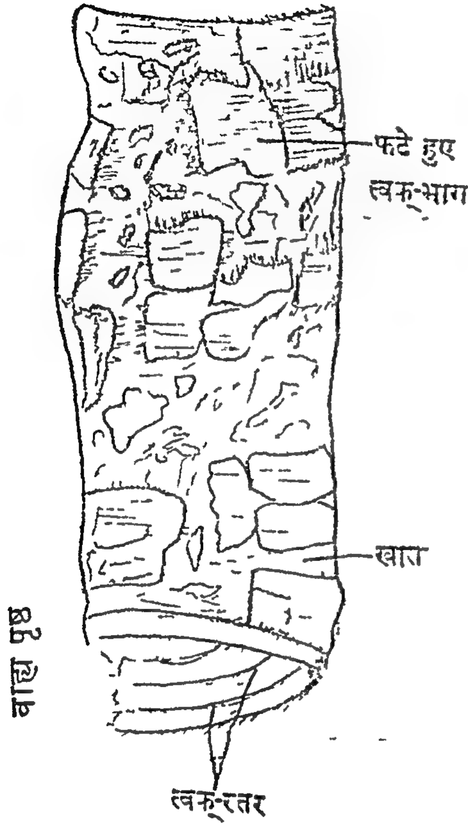
किनारे : दोनो किनारो से देखने पर तन्तु दिखाई पड़ते है । यह दृढ और कई स्तरो मे रहते हैं । इनके ऊपर मोटी-सी त्वचा का भाग दिखाई पडता है । इनमे तन्तु का भाग परिलक्षित नही होता ।

यान्त्रिक परीक्षा : अनुलम्ब च्छेद ।

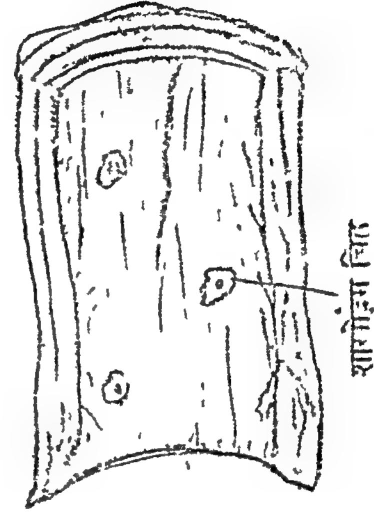
१ : बाह्य भाग कत्थई वर्ण का खुरदरा दिखाई पडता है ।

२ : त्वचा के हटा देने पर नीचे काष्ठ का भाग दिखाई पडता है । इसमे

प्रथम ऊपर का रजित भाग रहता है। तत्पश्चात अल्प रजित भाग होता है। इसमे अनुप्रस्थ आवर्त दिखाई पडते है।



चित्र १५३



चित्र १५४

अनुलम्ब च्छेद : आर्द्र त्वक् मे बाह्य भाग घना काला या कत्थई वर्ण का दिखाई पडता है। अन्तस्त्वक् कई भागो मे विभक्त दिखाई देती है। इसमे पतली-पतली लम्बी धारियाँ होती है। यही धारियाँ स्तर का स्वरूप बनाती है। इनका गिनना सरल नही ज्ञात होता।

परिमाण :

वर्ण : प्राकृतिक, कत्थई वर्ण।

कपे, भंगे, चूर्णे : कत्थई वर्ण का।

क्वाथ : रक्त।

तैल व घृते : पीताभ रक्त।

ज्वालायाम् : रक्त पीत।

विलेयता : वारि मे तैल व घृत की अपेक्षा अधिक घुलनशील है।

रस : प्रधान रस, कषाय, अनुरस, तिक्त।

गन्ध : शुष्क, मृदु सुगंधित ।

धूपन : उग्र ।

स्पर्श : कठिन खर, रुक्ष, लघु ।

शब्द : भग्नकालीन, चट, अभगुर ।

गण : प्रायशः कषाय व ईषत् तिक्त होने से यह वायव्य वर्ग का है ।

कुटज त्वक् : होलोरिना एंटि डाइसेंट्रिका

नाम : कुटज त्वक् ।

वर्ग : चरक-वमन-अर्शोघ्न ।

सु० : हरिद्रादि-बृहत्यादि-कुल-कुटजादि ।

नाम : कुटज की छाल का त्वक् पतला नलिकाकार, चौकोर या लम्बा होता है। बाहर का भाग उन्नतोदर और भीतर का भाग नतोदर होता है। इसका बाहरी स्तर हरित पीत श्वेत वर्ण का होता है। इस पर छोटे-छोटे दानेदार उभार होते है। जिसके कारण यह रुक्ष प्रतीत होता है। कही-कही पर यह फटी हुई भी होती है। इसमे चौड़ाई पर धारिया भी है। अन्दर का भाग रक्ताभ होता है। यह सूत्रो से निर्मित होता है।

छेदन : व्यत्यस्त छेद लेने पर इसमे तीन स्तर दिखाई पडते है।

बाह्य स्तर : यह हरित पीत श्वेत वर्ण का होता है। इसकी मोटाई लगभग ०५ इंच चौडा होता है। यह दानेदार और रूक्ष होता है।

मध्य स्तर : यह रक्ताभ होता है। इसकी मोटाई लगभग ·१५ इञ्च होती है। इसमे सूत्र कम पाये जाते हैं।

अन्तः स्तर : यह लम्बे-लम्वे सूत्रो से वना है, जो श्वेताभ होते है। यह लगभग ·१ इञ्च मोटा है।

परिमाण :

वर्ण परिज्ञान : वाह्य श्वेत हरित पीत मिश्रित। आभ्यंतर रक्ताभ।

कषे, भंगे, चूर्णे : रक्ताभ।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईषत् घुलनशील।

रस परीक्षा : प्रायशः तिक्त।

गंध परीक्षा : मृदु सुगंध।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रुक्ष, लघु।

शब्द परीक्षा : अभगुर।

गण विनिश्चय : तिक्त रस प्रधान होने से यह आग्नेय वर्ग का है।

रोहितक त्वक् की परीक्षा : टेकोमेला अनडुलाटा

नाम : रोहितक का काड त्वक।

वर्ग : श्योनाक कुल। बिगनोनिएसी।

आकृति विज्ञान . रोहितक का काड त्वक् ऊपर से फटा हुआ होता है। इस पर कृष्ण वर्ण के छोटे-छोटे धब्बे होते हैं जो कि दानेदार उभार की तरह दिखाई पडते है। यह बाहर की तरफ उन्नतोदर और भीतर की तरफ नतोदर होता है। बाह्य स्तर विषम वर्ण का कही पर कृष्ण, कही पर श्वेत वर्ण के मिश्रण से बना होता है। आभ्यंतर वर्ण रक्ताभ होता है। आभ्यंतर रचना के दर्शनार्थ छेद लेनेपर इसमे तीन स्तर दिखाई देते है।

प्रथम स्तर : यह स्फुटित तथा विषम वर्ण का होता है यह लगभग १ इञ्च मोटा होता है।

द्वितीय स्तर : यह ·२ इञ्च चौडा तथा गोलाई मे बहुत से स्तरो से बना होता है। प्रत्येक स्तर मे सूत्रो की रचना पाई जाती है। जिसमे कुछ एक दूसरे को क्रास करती हुई भी पाई जाती है। इसका वर्ण रक्तताभ होता है।

तृतीय स्तर : इसका अन्तः स्तर रक्ताभ होता है। इसमे सूत्र सीधे तथा लम्बे होते है। इस पर शाखा निकलने का कोई चिह्न नही होता।

परिमाण :

वर्ण परिज्ञान : बाह्य वर्ण विवर्ण, कृष्ण श्वेत मिश्रित। आभ्यंतर का वर्ण रक्ताभ।

कपे, भंगे व चूर्णे : रक्ताभ।

क्वाथ : रक्त वर्ण।

घृत व तैल में : किंचित रक्ताभ।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि मे तैल व घृत की अपेक्षा अधिक घुलनशील है।

रस परीक्षा : प्रायश तिक्त, अनुरस कषाय।

गध परीक्षा : मृदु सुगन्धित।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष और लघु होता है।

शब्द परीक्षा : अभंगुर ज्वलनकालीन कोई शब्द नही होता।

गण विनिश्चय : प्रायश. तिक्त और ईषत् कषाय होने से यह आग्नेय वर्ग का है।

कटफल त्वक् की परीक्षा : माइरिका नागी

नाम : कटफल त्वक्।

वर्ग : कटफलादि वर्ग।

चरक : संधानीय-शुक्रशोधने-वेदनास्थापन ।

सुश्रुत : लोध्रादि-सुरसादि ।

आकृति विज्ञान : कटफल का त्वक् मोटा, चपटा, सारमय होता है। बाहर की तरफ उन्नतोदर तथा भीतर की तरफ यह नतोदर होता है। बाह्य स्तर विषम आकृति का तथा फटा हुआ होता है। यह उपर से खुरदरा होता है। बाह्य स्तर का वर्ण श्वेत, हरित पीत आदि वर्ण का मिश्रित होता है। नीचे का स्तर घन रक्ताभ मोटा है। सबसे नीचे का स्तर कृष्णाभ तथा सूत्रमय रचना का है।

छेदन : व्यत्यस्त छेद लेने पर इसमे तीन स्तर दिखाई पडते है।

१ : बाह्य स्तर : विषम वर्ण का खुरदरा और फटा हुआ होता है। इसकी मोटाई ·१ इञ्च की होती है।

२ : मध्य स्तर : यह रक्ताभ मोटाई मे आधा इञ्च तक होता है। यह सारमय तथा दृढ होता है।

३ : अन्तः स्तर : यह लगभग ·०५ इञ्च मोटा होता है तथा कृष्णाभ है। इसमे सूत्र अधिक है। इसका संगठन लम्बाई मे है।

परिमाण : त्वक् खंड का भार १२० ग्रेन, आयाम डेढ इञ्च, विस्तार १ इञ्च उत्सेध ·४ इञ्च है।

वर्ण : बाह्य स्तर विषम वर्ण श्वेत हरित, पीत, मिश्रित ।

कर्षे : रक्त ।

भंगे : रक्ताभ ।

चूर्ण : रक्ताभ ।

क्वाथ : रक्त वर्ण ।

तैल व घृत : ईषत् रक्ताभ ।

ज्वाला : रक्ताभ ।

विलेयता : वारि तैल व घृत मे ईषत् विलेय ।

रस परीक्षा : प्रायश: कषाय ईषत् कटु ।

गंध परीक्षा : उग्र, ग्लानिकर ।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष व लघु ।

शब्द परीक्षा : अभंगुर ।

गण विनिश्चय : प्रायशः कषाय होने से यह वायव्य वर्ग का है।

बबूल त्वक् की परीक्षा : अकेशिया अरेबिका

नाम : बबूल की छाल।

वर्ग : बबूलादि वर्ग।

प्राकृतिक विज्ञान : बबूल का त्वक् अर्द्ध वृत्ताकार नलिकाकृति होता है। बाह्य स्तर खुरदरा फटा हुआ तथा वर्ण मे कृष्णाभ होता है। इसके नीचे का स्तर रक्ताभ होता है। त्वक् लम्बे चपटे है, उन पर शाखाओ के निकलने के चिह्न वर्तमान है। नीचे का स्तर पीताभ और सौत्रिक तन्तुओ का बना हुआ है।

छेदन : छेदन करने पर तीन स्तर दिखाई पडते है यथा :

१ : बाह्य स्तर : कृष्णाभ तथा फटा हुआ है। यह लगभग १ इञ्च चौडा है। यह खुरदरा तथा कठिन है।

२ : मध्य स्तर : लगलग ·१ इञ्च चौडा है तथा रक्ताभ है। कषाय रस इसी भाग मे अधिक होता है।

३ : आभ्यतर स्तर : सबसे नीचे का भाग रक्त पीताभ सौत्रिक तन्तुओ का बना हुआ होता है।

परिमाण :

वर्ण परिज्ञान ' बाह्य कृष्णाभ : आभ्यंतर रक्ताभ।

कर्पे भंग : रक्ताभ।

चूर्ण : रक्ताभ।

क्वाथ : रक्ताभ।

तैल घृत : पीताभ।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि मे ईषत् विलेय है।

रस परीक्षा . कषाय रस।

गंध : मृदु सुगध।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष, लघु।

शब्द परीक्षा : अभंगुर।

गण विनिश्चय : प्रायशः कषाय रस होने से यह वायव्य गण का है।

वरुण त्वक् की परीक्षा : क्रेटिवा रेलिजिओसा

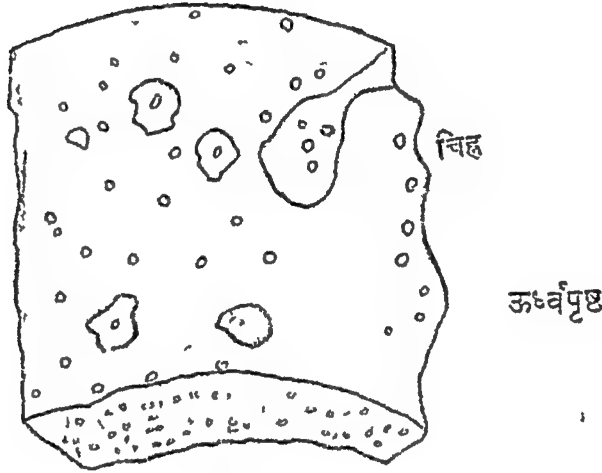
नाम : वरुण त्वक्।

वर्ग : वरुण कुल।

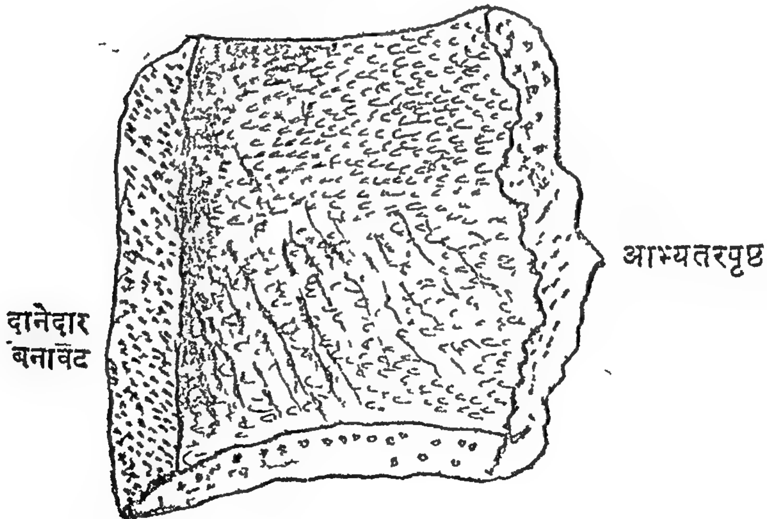
चरक : अश्मरीहर बीज।

सुश्रुत : वरुणादि, वाताश्मरी नाशन, कफा श्मरी नाशन।

आकृति विज्ञान : वरुण का त्वक् शुष्क, कठिन, सारमय व रूक्ष होता है। उसका ऊपरी भाग उन्नतोदर व भीतरी भाग नतोदर होता है। ऊपरी वर्ण हरित पीत तथा श्वेत मिश्रित होता है। स्तर पर बहुत से विषम उत्सेध है।



चित्र १५५



चित्र १५६

पूरे स्तर पर श्वेत चिह्न होते है। आभ्यंतर स्तर पीताभ श्वेत वर्ण का है। यह काष्ठमय व स्टार्च के दानो से भरा होता है। इसके कारण यह रूक्ष स्पर्श होत है।

अनुच्छेद लेने पर उसमे तीन स्तर दिखाई पडते है।

१ : बाह्य स्तर : अति तनुवर्ण मे हरित पीत श्वेत वर्ण का है। इस पर छोटे-छोटे श्वेत दाने है।

२ : मध्य स्तर : यह लगभग ·२ इन्च मोटा होता है। यह लम्बे-लम्बे सूत्रो से बना है। इसमे स्टार्च के दाने भरे होते है।

३ : अन्तः स्तर : यह सबसे नीचे का भाग है और पीताभ श्वेत होता है।

परिमाण :
वर्ण परिज्ञान : बाह्य वर्ण पीत हरित श्वेत।
कपे भगे चूर्णे : पीताभ।
क्वाथ : पीताभ।
तैल घृत : पीताभ।
ज्वाला : रक्ताभ।
विलेयता : वारि, तैल व घृत मे ईषत् विलेय है।
रस परीक्षा : प्रधान रस कषाय, अनुरस कुछ मधुर।
गध परीक्षा : मृदुगंध, सुगध। आर्द्रदुर्गंध मय।
स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष व लघु।
शब्द परीक्षा : अभंगुर।
गण विनिश्चय : प्रायशः कषाय रस होने से वायव्व है।

उदुम्बर त्वक परीक्षा : फाइकस ग्लेमुराटा
(Ficus Glamurata)

नाम : उदुम्वर त्वक्।
वर्ग : वटकुल, अर्टीकेसी। (Articaceae)
चरक : मूत्र संग्रहणीय, कषाय व स्कध।
सुश्रुत : न्यग्रोधादि।
भाव प्रकाश : क्षीरी वृक्ष, पच वल्कल।

आकृति विज्ञान : उदुम्वर त्वक् का भाग छोटे-छोटे चपटे टुकडो के रुप मे मिलता है। ऊपर को यह उन्नतोदर होता है। वाहर का वर्ण श्वेताभ है। इसके ऊपरी पृष्ठ पर छोटे-छोटे दरार व उन्नत रेखाओ के होने से यह खर स्पर्श जान पडता है। ऊपरी त्वक् के हट जाने से नीचे रक्त वर्ण का दिखाई देता है। ऊपरी त्वक् वहुत पतला होता है। नीचे का भाग तन्तुओं से युक्त होता है। इसका वर्ण कुछ लाल कपाय वर्ण का है। उसके नीचे काष्ठ का भाग है।

परिच्छेद : व्यत्यस्त छेद लेने पर इसमे तीन स्तर दिखाई पडते हैं।

१ : बाह्य स्तर : बहुत पतला श्वेत धूसर वर्ण का है और सरलता से उतारा जा सकता है।

२ : मध्य स्तर : मध्य स्तर यह मोटी, हल्की कई धारियो से युक्त होने से कई स्तरो मे विभक्त दिखाई पडता है।

अंतःस्तर : यह काष्ठमय भाग तन्तु निर्मित भाग है।

परिमाण :

वर्ण परिज्ञान : प्राकृत वर्ण धूसर।

कपे भंगे चूर्णे : रक्ताभ।

क्वाथ : रक्त।

तैल व घृत : रक्ताभ।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि, तैल घृत मे ईषत् विलेय है।

रस परीक्षा : प्रायशः कषाय ईषत् मधुर।

गंध परीक्षा : मृदु गंध।

स्पर्श परीक्षा : स्पर्श मे यह कठिन, खर, रुक्ष व लघु।

शब्द परीक्षा : अभंगुर।

गण विनिश्चय : प्रायश. कषाय रसत्वात यह वायव्य वर्ग का है।

बिल्व त्वक् : बार्क आफ ईगल मारमेलो
(Eagle Marmalo)

नाम : बिल्व, शाडिल्य शैलूष।

वर्ग : जम्बीरादि। रुटेसी (Rutaceae)

चरक : शोथहर, अर्शघ्न, आस्थापनोपग, अनुवासनोपग।

सुश्रुत : बृहद पंचमूल, वरुणादि, अम्बष्ठादि।

आकृति विज्ञान : वेल की छाल कठिन काष्ठमय तथा चपटी होती है। इसका बाह्य स्तर रूक्ष और स्फुटित होता है। यह वर्ण मे पीताभ होता है। किन्तु कही-कही इस पर हरित व कृष्ण धब्बे रहते है। इसको तोडने पर चूर्ण-सा निकलता है। आभ्यंतर भाग सौत्रिक तन्तुओ से निर्मित होता है। व्यत्यस्त छेद लेने पर इसमे तीन स्तर दिखाई पड़ते है।

१ : बाह्य स्तर : यह श्वेत पीताभ होता है। कही-कही पर हरित कृष्ण

धब्बे रहते है। यह स्फुटित और स्पर्श मे खर होता है। लगभग १ इञ्च मोटा होता है।

२ : मध्य स्तर : यह श्वेताभ कठिन होता है। लगभग २ इञ्च मोटा होता है। यह लम्बे-लम्बे सूत्रो से बना है। जिसके बीच दानेदार पदार्थ भरे रहते है।

३ : अन्तः स्तर : यह लम्बे-लम्बे सूत्रो से बना हुवा है। तथा इसमे पतले-पतले अनेक स्तर है। यह पीताभ श्वेत होता है।

परिमाण :
वर्ण परिज्ञान : बाह्यभाग श्वेत कृष्ण पीत वर्ण। आभ्यन्तर भाग श्वेत पीत।
भग्न, कल्प : पीताभ।
चूर्ण : पीत।
क्वाथ : पीत।
तैल व घृत : पीताभ।
ज्वाला : रक्ताभ।
विलेयता : वारि मे अधिक, तेल व घृत मे ईषत् विलेय।
रस परीक्षा : प्रायशः कषाय ईषत् तिक्त।
गध परीक्षा : मृदु गध व सुगधित।
स्पर्श परीक्षा : कठिन, रूक्ष, खर व लघु।
शब्द परीक्षा : अभंगुर।
गुण विनिश्चय : प्रायशः कषाय रस होने से वायव्य है।

अग्निमंथ परीक्षा : क्लेरोडेंड्रन फ्लोमिडिस
(Clerodendron phomidis)

नाम : अग्निमथ गनियार।
वर्ग : निगुडी कुल। वर्विनेशी (Verbinaceae)
चरक : शोथहर, शीतप्रशमन, अनुवासनोपग।
सुश्रुत : बृहत पंचमूल, वातप्रशमन, वीर तर्वादि, वरुणादि।

आकृति विज्ञान : अरणी का त्वक् विषमाकृति का कठिन काड त्वक् होता है। इसका वाह्य भाग उन्नतोदर और आभ्यंतर भाग नतोदर होता है। बाह्य भाग का वर्ण श्वेताभ होता है और कही-कही पर कृष्ण वर्ण के चिह्न होते है। यह रुक्ष और मृदु होता है। कही-कही पर फटा हुआ होता है।

व्यत्यस्त छेद : इसके छेद लेने पर तीन स्तर दिखाई पडते है।

१ : बाह्य स्तर : यह पतला, मृदुस्फुटित तथा श्वेताभ होता है इसको नखो से तोड़ने पर सरलता मे टूट जाता है।

२ : मध्य स्तर : यह श्वेताभ और लगभग ·१ इञ्च मोटा होता है।

३ : अन्त: स्तर : यह कृष्णाभ तथा ·१५ इञ्च मोटा होता है। इसमे लम्बे-लम्बे सूत्र अधिक मात्रा मे पाये जाते है। अनुलम्ब छेद मे भी यही विवरण मिलता है।

द्रव्य परिमाण :
वर्ण परिज्ञान : बाह्य वर्ण श्वेताभ व आभ्यतर कृष्ण रक्ताभ।
कपे : श्वेताभ।
भंगे चूर्ण : कृष्णाभ।
क्वाथ : ईपद्रक्त।
तैल व घृत : पीताभ।
ज्वाला : रक्ताभ।
विलेयेता : वारि, तेल व घृत मे ईषत् घुलनशील।
रस परीक्षा : प्रायश: कषाय ईपत्तिक्त।
गंध परीक्षा : मृदु सुगंध।
स्पर्श परीक्षा : कठिन, रूक्ष, खर व लघु।
शब्द परीक्षा : अभगुर।
गण परीक्षा : कपाय रस प्रधान होने से वायव्य है।

भारंगी त्वक् परीक्षा : क्लेरोडेड्रन सेरेटम
(Clerodendron Saretum)

नाम : भारंगी त्वक्।
वर्ग : निर्गुंडी वर्ग। वर्बीनेसी।
सुश्रुत : पिप्पल्यादि वर्ग।

आकृति विज्ञान यह कठिन, चपटा और विषमाकृति का होता है। बाह्य भाग उन्नतोदर, आभ्यतर भाग नतोदर होता है। इसका ऊपरी वर्ण धूसर वर्ण का होता है। स्पर्श मे यह रूक्ष होता है। आभ्यंतर भाग पीत श्वेत होता है। इसमे सौत्रिक भाग अधिक होते है।

व्यत्यस्त छेद करने पर इसमे तीन भाग दिखाई पड़ते है।

१ : वाह्य स्तर : यह धूसर वर्ण का तथा रूक्ष होता है। लगभग ·१५ इञ्च मोटा होता है। इसमे सूत्रो की रचना नही होती।

२ : मध्य स्तर : यह लगभग ·१ इञ्च मोटा है। इसमे सौत्रिक रचना कम होती है। यह श्वेताभ पीत है।

३ : अन्तःस्तर : यह सूत्रो का वना हुवा श्वेत वर्ण का स्तर है। यह करीब ·०१ इञ्च मोटा है। स्पर्श मे रूक्ष है।

परिमाण : त्वक् खंड की लम्बाई डेढ इञ्च और मोटाई ·३ इञ्च होती है।

वर्ण परिज्ञान : वाह्य स्तर धूसर आभ्यंतर श्वेताभ।

कपे, भंगे, चूर्णे : श्वेताभ।

क्वाथ : पीत।

तैल : पीताभ।

घृत : श्वेताभ।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि, तैल व घृत मे अल्प विलेय।

रस परीक्षा : प्रधान रस मधुर अनुरस तिक्त और कषाय।

गंध परीक्षा : मृदुव सुगंध।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष व लघु।

शब्द परीक्षा : अभगुर।

गण विनिश्चय : प्रायश मधुर व ईषत् कषाय तिक्त होने से यह पार्थिव वर्ग का है।

दालचीनी : सिनेमोमिकोर्टेक्स (Cinamomi)

नाम : गुडत्वक्, त्वक्, दारुसिता।

वर्ग : कर्पूर कुल लारेसी (Laraceae)

गण : चातुर्जात।

चरक : मुखशुद्धिकर गण।

इतिहास : दालचीनी भारतीय चिकित्सको को अच्छी तरह ज्ञात था। चरक और सुश्रुत सबने इसका विवरण दिया है। यह भारतीय द्रव्य है। ईस्वीय सन् से कई हजार वर्ष पूर्व इसका ज्ञान था। कहा जाता है कि चीन वाले तज का ज्ञान तो रखते थे परन्तु उन्हे दालचीनी का ज्ञान न था। लंका पर पहले १५२६ ईस्वीय मे पुर्तगीज और डच १६५६ मे और ब्रिटिश १७९६ मे अपना

शासन किये और तब से इसका ज्ञान पश्चिमी संसार को हुआ। १७७० मे डचों ने अपनी तरफ से खेती करना प्रारम्भ किया। भारतीय दालचीनी का व्यापार पहले से ही डचो के हाथ मे था। किन्तु बाद मे इसका विकास हुआ।

परिचय : दालचीनी एक प्रकार के वृक्ष की छाल है और स्वाद मे यह मधुर होती है। अतः इसका नाम दारुसिता रखा था। यह दालचीनी के वृक्ष की छाल है। इमे व्यापार मे सिलोनी दालचीनी या जहाजी दालचीनी कहते है। दक्षिणी भारत व सिलोन मे इसके वृक्ष चिरकाल से पाये जाते हैं। इसकी खेती दक्षिण भारत, लंका व जमैका, ब्राजील इत्यादि देशो मे होती है। इसमे लंका की उत्तम होती है। ब्रिटिश त्वक् भी उत्तम मानी जाती है। और बाजार मे अधिक पाई जाती हे।

खेती व संग्रह :

दालचीनी की खेती सिलोन मे होती हे। इस निमित्त १६००० एकड भूमि पर इसके बाग लगाये गये है। दक्षिण भारत मे इसकी खेती के लिये थोडी सी भूमि का प्रयोग होता है इसका स्थान वहाँ होता है जहाँ पर कम से कम ७५ से १२५ इन्च जल बरसता हो। भूमि भी उर्वर चाहिये जो भारी न होकर लघु गुण की हो। इसके निमित्त भूमि मे छिद्र करके ६ से १० फीट की दूरी पर बीज लगाये जाने है। दूसरे या तीसरे वर्ष मे यह झाडी की तरह फैल जाते है। इसमे ५ मे सात शाखाये होती है। सीधी शाखाओ को छोड करके बाकी को काट देते है। फिर कुछ मास छोड देते है तब यह मोटे और लम्बे हो जाते है और इसको काटने का समय आ जाता है। प्राय. भारी वर्षा के बाद इसको काट लेते हैं। शाखाओ को काट कर छाल तत्काल निकाल लेते है। अक्टूबर से दिसम्बर तक काटने का अच्छा काल माना जाता है। प्रति एकड ५० पौंड दाल्चीन सूखने पर मिलती है।

आकृति : दालचीनी चूंकि छाल होती है अत' इसका रूढि नाम त्वक् ही है। यह पतले और मोटे छालो के रूप मे पृथक कर लिये जाते है। अच्छी दालचीनी की मोटाई ५ मिली मीटर होना चाहिये। इसका बाह्य भाग पीले भूरे रग का होता है। यह चमकदार बीच-बीच मे छिद्रदार और अन्य चिह्नो से युक्त होता है। भीतरी स्तर गहरे लाल रग के होते है। सूखने पर यह सरलता से टूट जाती है। इसमे एक सुगध भी आती है।

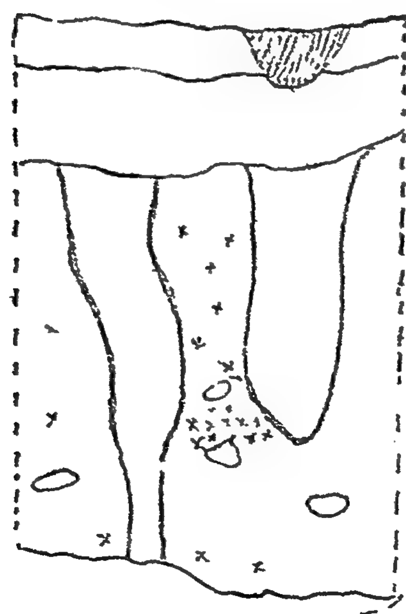
दालचीनी के भेद :

पश्चिमी द्वीप समूहो मे भी इसकी खेती होती है। फ्रेंच गायना, ब्राजिल व अन्य स्थानो मे भी खेती होती है। इनका संग्रह शाखाओ के अधिक रूढ हो जाने पर संग्रह करते है। अत सिलोनी दालचीनी से हीन गुण के होते है। त्वचा मोटी, रूखी और हल्के पीले रंग की होती है।

जगली दालचीनी : यह गहरे भूरे रङ्ग की होती है। तज की छाल से मिलती-जुलती होती है। ऐसे ही सैगोन की दालचीनी होती है। जावा मे भी खेती होती है परन्तु सिलोन की सबसे उत्तम मानी गई है।



चित्र १५७—दालचीनी वा त्वगावरणपूर्ण



चित्र १५८—त्वक् का व्यत्यस्तच्छेद

संगठन : इसमे उडनशील तैल ८ से १·४ प्रतिशत व स्निग्ध म्यूसिलेज कैलसियम आक्जलेट स्टार्च का भाग होता है। इसमे ६ से १० प्रतिशत तैल का अंश होता है।

वर्ण : बाहर से पीले रङ्ग का श्लक्ष्ण और छिद्र युक्त होता है। भीतर से लाल वर्ण का गहरे रङ्ग का होता है।

कपे व भंगे : पीत रक्त।

जल में : पीत वर्ण का।

तैल व घृत . पीत वर्ण का होता है।

गंध : सुगंधित मसालो की तरह।

रस : मधुर व ईषत् तिक्त।

शब्द : भंग करने पर चट से शब्द होता है। यह भगुर है।

स्पर्श : स्पर्श मे यह ऊपर व नीचे भी श्लक्ष्ण लघु-स्निग्ध ज्ञात होती है।

गण : प्रायश मधुर होने से यह पार्थिव वर्ग का है।

मिश्रण : इसमे तज के छाल जो इसके समान पतले होते है या जंगली त्वक् के छाल मिला देते है। दालचीनी के वर्ग के कई पौधे मिलते है जिनकी छाल मे सुगन्ध नही होती। व्यापारी वर्ग इसमे तत्सम छालो को मिला कर रङ्ग कर देते है और गंधार्थ दालचीनी का तेल लगा देते है। भारत व सिलोन मे इसकी कई जातिया हीन गुण वाली होती है उनके त्वक् का भाग मिलाकर के व्यापारी वर्ग मिलावट करते है।

पचांग का विवरण लेखन

स्वर्ण क्षीरी का पंचांग :

नाम : स्वर्ण क्षीरी, हेमक्षीरी।

वर्ग : अहिफेनादि वर्ग, पापाथेरेसी।

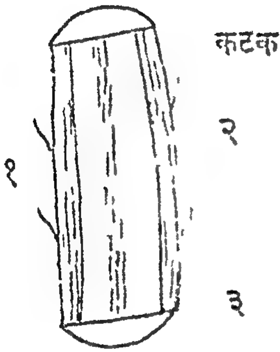
चरक : भेदनीय।

सुश्रुत : अधोभागहर, श्यामादि गण, व्रण शोधन।

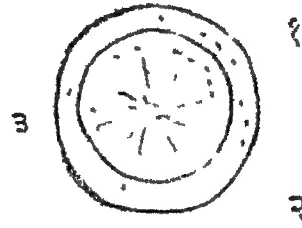
आकृति विज्ञान : यह एक कंटकयुक्त क्षुप है जो चार फीट तक ऊँचा होता है। क्षुप के समग्र भाग पर काटे होते है। मूल से शिखर तक के किसी भाग को काटने पर या तोड डालने पर पीत वर्ण का क्षीर निकलता है। इसकी गंध विशिष्ट होती है। समग्र क्षुप पर एक श्वेत प्रकार का रज लगा होता है जिसे हटा देने पर नीचे का हरा वर्ण दिखाई पडता है। पत्र उत्कर्तित किनारी से युक्त लम्बे व कंटकाकीर्ण होते हैं। पुष्प पीले व फल शिम्बी युक्त कंटकाकीर्ण होते है विशेष विवरण नीचे है यथा :

मूल : मोटे क्षुप की मूल अंगुष्ठ प्रमाण होती है। वर्ण हल्का मटमैला भूरे

रग का होता है इनका आकार नलिकाकार ऊपर से नीचे क्रमश पतला होता जाता है। इस मे उपमूले कम होती है। मूल स्तर भाग स्नायुक्त और आसानी से हटाये जा सकते है। वर्ण पीत होता है। बीच का मूल का काष्ठीय भाग श्वेत वर्ण कठिन और छेद लेने पर नलिका चक्राकार उग गंधयुक्त होता है। स्वाद मे यह तिक्त होता है। काष्ठ मे तीन भाग स्पष्ट दिखाई पड़ते है यथा :



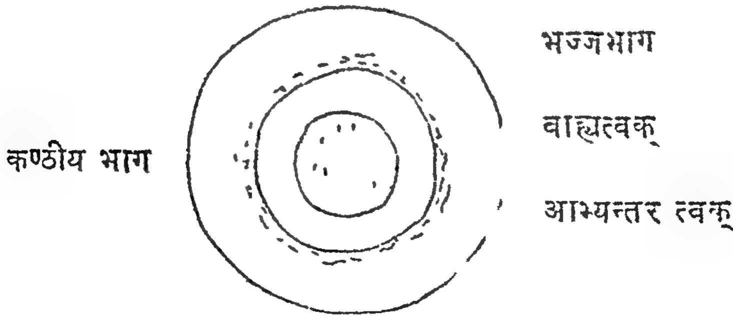
चित्र १५९



चित्र १६०

१ : बाह्यभाग . बाहरी श्वेत भाग कठिन सोत्रिक होते है।
२ : मध्य भाग : मृदु कुछ सूत्रो से बना होता है।
३ : आभ्यतर भाग . बीच का भाग मज्जायुक्त मृदु होता है।

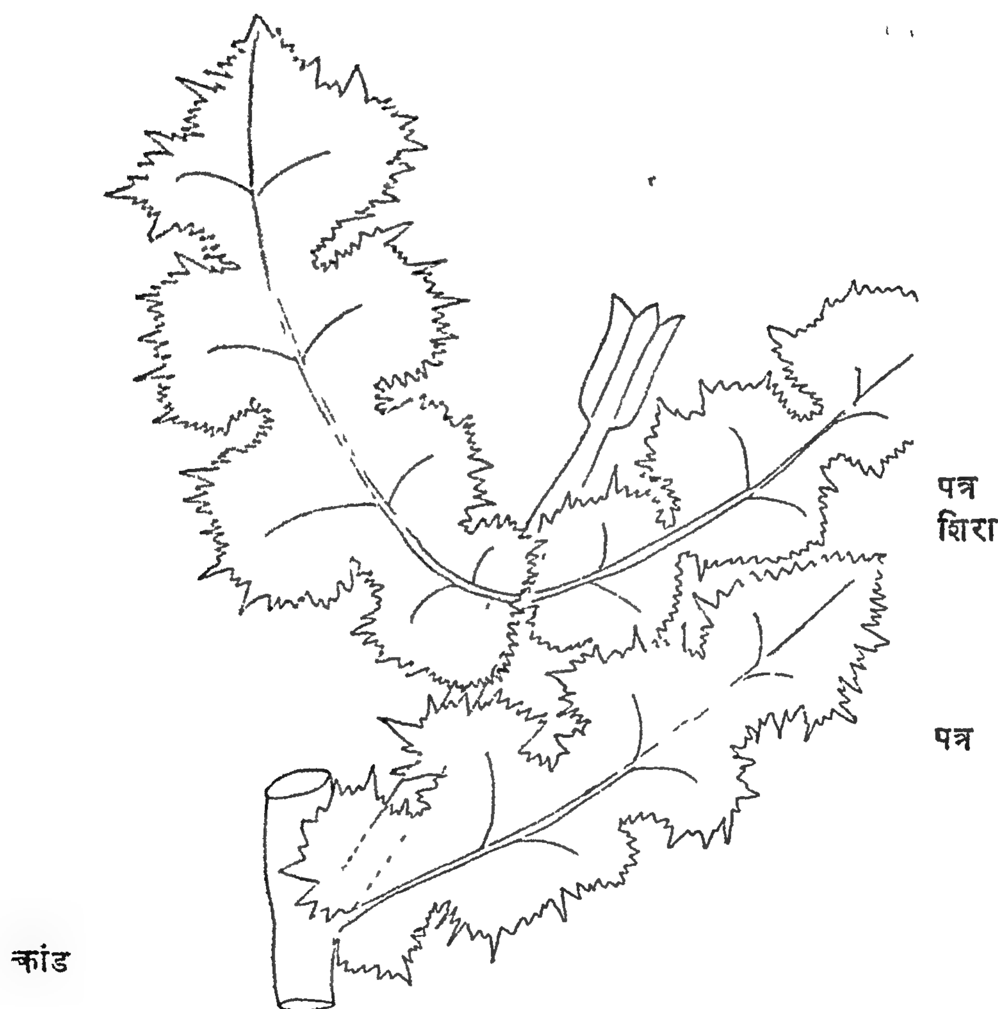
कांड व शाखाये . नलिकाकार वृत्त, कटकयुक्त अगुलिवत स्थूल व मृदु होता है। शाखाये कम होती है। एक-एक मे दो-दो होती है इन पर पानुवत



चित्र १६१—शाखा का छेद

श्वेत भाग लगा होता है। इस कारण वर्ण श्वेत दिखाई पडता है। इसके हटाने पर हरा वर्ण दिखाई देता है। ऊपर का काण्ड त्वक् मृदु व तनु होता है। इसके नीचे कुछ सौत्रिक भागयुक्त हरित वर्ण का मृदु घन भाग होता है।

पत्र : पत्र लम्बे ६ से आठ इञ्च तक होते हैं जो किनारो पर कर्तित होते है। यह एकांतरित लगे होते है। पत्र वृन्तरहित होता है यह पत्रनिवेश स्थल पर एक चौड़ा आवरण बनाता है। पत्र मे मध्यवर्ती शिरा शाखा पर नीचे तक जाकर लगी रहती है। पत्र की किनारी कटी हुई कोणीय और प्रत्येक कोण पर एक एक कंटक होते है। पत्र पृष्ठ पर पत्र की शिरायें उभरी हुई कंटकयुक्त होती हैं। यह ८ इञ्च तक लम्बा ६ से ढाई इञ्च चौडा और स्थूल होता है। पत्र पर भी श्वेत रज लगा होने से यह श्वेत दिखाई पडता है। गंध उग्र, स्वाद तिक्त होता है।



चित्र १६२—स्वर्णक्षीरी काडक्रम

कंटक : यह मूल काड व पत्र पर लगे होते है। प्रारम्भ मे स्फीत और आगे तीक्ष्ण हो जाते है अग्र भाग मे कटक की तीक्ष्णता कम हो जाती है।

पुष्प : पुष्प शाखाग्र पर एकाकी पीत वर्ण के मृदु सुगंधयुक्त होते हैं।

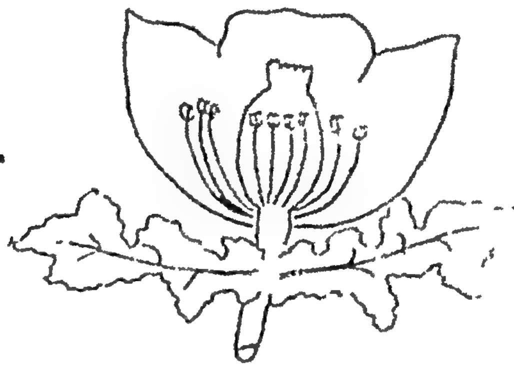
पुष्प वाह्य कोष मे ३ पुष्पदल होते है इनका वर्ण भस्माभ हरित श्वेत वर्ण का कटकयुक्त होता है। इनके गिरते ही पुष्प विकसित हो जाता है। प्रारम्भावस्था मे यह हरित वर्ण का तीन शिखरो वाला कटकयुक्त होता है। प्रत्येक खंड पर एक-एक कटक होते हैं। यह प्रस्फुटित होने पर पत्रवत दिखाई पड़ता है। पश्चात झड जाता है।

आभ्यतर कोष :

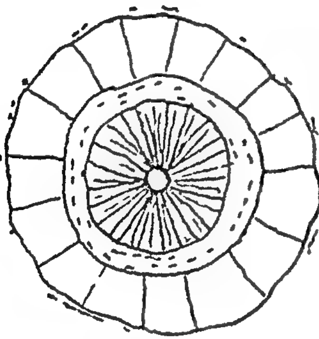
इसके ६ दल होते है मूल भाग सकीर्ण और आगे का भाग चौड़ा होता है। दल श्लक्ष्ण चमकीले मृदु व वर्ण पीत होता है।

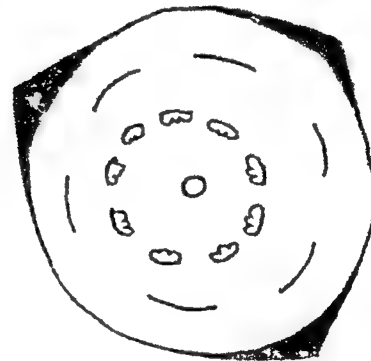


चित्र १६३—वाह्यकोष



चित्र १६४—पुष्पविन्यास क्रम



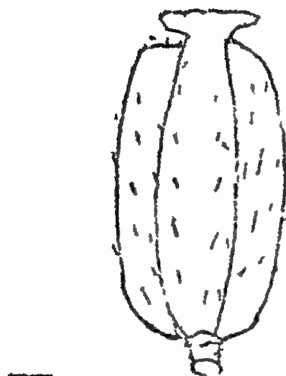


चित्र १६६—स्वर्णक्षीरी को काड रचना चित्र १६५—स्वर्णक्षीरी मे पुष्पविन्यास

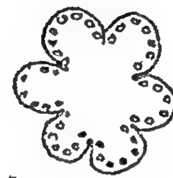
पुकेशर : प्रायः ६० से ७० तक होते है और गर्भाशय के चारो ओर वृन्त से लगे रहते है। इन पर दो-दो पराग कोष लाल वर्ण के लगे होते है। लम्बाई गर्भाशय ग्रीवा तक होती है।

स्त्री केशर : एक गर्भाशय लम्बगोल व कठिन होता है। इस पर मृदु कटक लगे होते हैं इसके अग्र भाग पर योनि क्षत्र ४ व ५ की सख्या मे सलग्न होता है। वर्ण लाल होता है।

फल : यह एक से डेढ इञ्च तक लम्बा, आधे से एक इञ्च तक चौडा होता है। इस पर कंटक होते हैं। इस मे प्राय ६ खड होते है। और संयुक्त होते है। परिपुष्ट होने पर बीज पूर्ण हो जाते है। और परिपक्व होने पर फट जाते है। बीज काले, गोल व बहुसख्यक होते है। स्पर्श मे चिकने चमकदार सर्षप की तरह दिखाई देते है।



चित्र १६७



फल का व्यत्यस्तच्छेद

चित्र १६८

अश्वगंधा के पंचांग का विवरण :

नाम : अश्वगंधा असगंधान, विथानिया सोम्नीफेरा।

वर्ग : कंटकारी वर्ग।

चरक : बल्य, बृहणीय, मधुरस्कंध।

आकृति विज्ञान : यह एक क्षुपजातीय औषधि है। इसकी ऊँचाई ४ से ५ फीट तक होती हे। यह देखने मे सुन्दर हरित वर्ण का और परिपुष्ठ दल वाला क्षुप होता है। इस पर लाल रंग के फल लगते हैं। मूल इसकी काम मे आती है। प्रधान कांड से ऊपर जाकर ४ या ५ तक शाखाये निकल आती हैं। बरसात मे हरा-भरा दिखाई देता है।

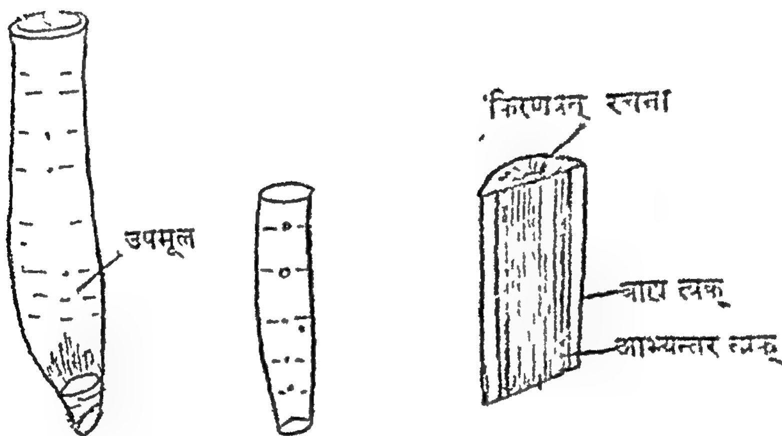
मूल : मूल का वर्ण किंचित लाल व पीले वर्ण का होता है। ऊपर से यह मोटी व नीचे पतली हो जाती है। इस पर पतली-पतली उपमूल की शाखाये दिखाई देती है। मूल मोटाई मे मूली की तरह मोटी होती है। प्रथम वर्ष मे यह मृदु व पश्चात कठिन व सूत्रल हो जाती हैं। इसका बाह्य स्तर : त्वचा बाह्य स्तर पतला व सरलता से नाखून से हटाई जा सकती है। वर्ण लाल होता है। नीचे का वर्ण श्वेत होता है।

आभ्यंतर स्तर : यह मोटी होती है और सरलता से हटाई जा सकती है। वर्ण कुछ कम लाल होता है।

काष्ठ भाग : काष्ठयुक्त अधिक पिच्छ भागों से युक्त होता है। रचना में तन्तु ऊपर से नीचे जाते दिखाई पडते हैं।

शाखा : हरे वर्ण के रोमश होते है। रोम के कारण वर्ण कुछ श्वेत दिखाई पडता है। ऊपर जाकर शाखा कई भागो में विभाजित हो जाती है। उन पर फिर फल लगते है।

व्यतस्त च्छेद : शाखा के छेद लेने पर यह निम्न रूप में दिखाई पडता है। यथा .



काडचिह्न

चित्र १६९—अश्वगंधामूल चित्र १७०

१ . बाह्य स्तर . हरी, श्लक्ष्ण व पतली होती है। और चारो ओर व्याप्त होती है।

२ आभ्यंतर भाग : कुछ श्वेत व हरित वर्ण का होता है व मोटा होता है।

३ : काष्ठीय भाग : बीच का भाग काष्ठयुक्त और कठिन होता है। इसमे छिद्र भी पाये जाते हैं। बीच मे मृदु मज्ज भाग का होता है।

पत्र : काड पर एक पत्र एक स्थान से निकलता है। उसके मूल मे ही उपपत्र भी निकलते हैं जो कि दो से तीन-तीन तक पाये जाते है। पत्र समानान्तर रहते है। इन पत्रो के अक्षि भाग से फल लगते है। इनकी लम्बाई २ से ४ इन्च तक होती है। यह आकार मे गोल व ऊपर कुठित होते है। इसके बीच से मध्य शिरा निकलती है और उसके दोनो ओर अन्य शिराये निकलती है। आभ्यतर पृष्ट बाह्य से अधिक हरा होता है। पत्र के किनारे तरंगायित होते है। आकार लम्ब गोल होता है।

पुष्प : पत्र के कोण से पुष्प निकलते है जो सख्या मे ४ से ५ तक होते है। बाह्य कोष मे ५ पत्रक पाये जाते है। जो किंचित हरित श्वेत होते हैं। आभ्यतर कोष मे ५ पुष्प पत्र होते हैं। इसके बीच मे पुकेशर स्थित होते है इसकी सख्या ५ तक होती है। मे बीच स्त्रीकेशर होता है। वृन्त छोटा-सा होता है।

फल : यह कच्चा रहने पर लाल हरित वर्ण का व पकने पर लाल वर्ण का हो जाता है। आकार मे गोल व मकोय के फल की आकृति का होता है। भीतर बीज व रस भरा होता है। जिस मे छोटे-छोटे बीज रहते है जिनका आकार मरिच के बीज की तरह होता है।

(निर्यास परीक्षा)

हिगु परीक्षा

नाम : हिगु, रामठ।

गण :

चरक : संज्ञा स्थापन, दीपनीय, कटुक स्कंध।

सुश्रुत : पिप्पल्यादि, ऊपकादि।

प्राकृतिक : शतपुष्पादि अम्बेलीफेरी।

आकृति विज्ञान : हिगु एक प्रकार का फेरुला फोयेटीडा नामक वृक्ष से निकलने वाला एक प्रकार का निर्यास है। जिसका वर्ण ईषत् पीत या लाल वर्ण का होता है। जो कि छोटे-छोटे टुकडो मे या जमाये हुये थक्को मे बाजार मे मिलता है। यह चमकदार व सुगन्धित विशिष्ट किस्म के गध से युक्त होता है। यह गोल थक्के दार या चौकोर टुकडो के रूप मे मिलता है। यह एक प्रकार के सूक्ष्म कणो के रूप मे जमा हुआ निर्यास होता है।

स्थान : पूर्वी परसिया, अफगानिस्तान, या बिलूचिस्तान के प्रदेशो से आता है। यह खुरदरा, भंगुर व तोडने पर चमकदार अपारदर्शक या अर्द्ध पारदर्शक भिन्न-भिन्न प्रकार का मिलता है।

स्वाद या रस : इसका रस तीक्ष्णता लिये कटु व तिक्त होता है।

गध : तीव्र स्थाई रहने वाला उग्र अहृद्य गध विशेषतः रसोनगंधी होता है।

विलेयता : जल मे पूर्णरूप से घुल जाता है। अलकोहल मे आशिक रूप से घुलता है। यह तैल व घृत मे भी घुल जाता है।

संगठन : इसमे सुगंधित उडनशील तैल ७ से १७ प्रतिशत व निर्यास मे रालजातीय पदार्थ विशेष मात्रा मे रहता है।

परीक्षा ·

१ · ताजे टूटे हुए टुकडे पर एक बूँद गधक का तेजाब डालिये लाल रग दिखाई पडेगा ।

२ तेजाव पानी से धो डालिये बैंजनी रंग भायलेट कलर दिखाई पडेगा ।

३ नये तोड़े टुकडे पर शोरे का तेजाव ५० प्रति० डालिये हरा रंग दिखाई पडेगा ।

४ २।१० ग्रेन चूर्ण ५ प्रतिशत अलकोहल मे मिलाकर उबालिये । ठडाकर के उसमे पाच मिली० ग्राम अल्कोहल डालिये और १० प्रतिशत अमोनिया का द्रव डालिये बैंजनी रग मिलेगा ।

५ . २ ग्रेन चूर्ण २ मिलीग्राम नमक के तेजाव मे दो मिनट उबालिये । ठंडा होने पर बरावर पानी मिलाइये । पुन १० प्रतिशत अमोनिया का घोल मिलाइये। तीक्ष्ण बैंजनी रग दिखाई पड़ेगा ।

पुन : पानी मे इसको घोलने पर दूधिया रग बन जाता है ।

६ · तैल व घृत मे डालने पर वर्ण श्वेत बन जाता है ।

७ · हीग को जलाने पर उसके राख से भी हीग की गध आती है ।

हिगु का परिचय

नाम : हिगु, रामठ वाह्लीक, सहस्रवेधी, जतुक आदि ।

गण :

चरक : सज्ञा स्थापन, दीपनीय, कटुक स्कध ।

सुश्रुत : पिप्पल्यादि, ऊपकादि ।

प्राकृतिक वर्ग . शतपुष्पा । अम्वेलीफेरी ।

द्रव्य . यह एक प्रकार के फेरुला फोएटीडा नामक वृक्ष का निर्यास है जो उस पर चीरा लगा कर प्राप्त किया जाता है । हीग की कई जातियाँ होती है । जो कई प्रकार के पेडो से एकत्र किया जाता है । शास्त्रीय नाम से दो प्रकार का हीग का विवरण मिलता है । यथा :

१ . वह्लीक ।

२ रामठ ।

वाह्लीक : वाह्लीक या बलख ईरान का एक प्रसिद्ध स्थान है । इसके आस-पास हीग की कई जातियाँ पाई जाती है । इस स्थान पर फेरुला फोएटीडा रीगल व फेरुला काली वोयस तथा हीग की कई अन्य जातियाँ भी पाई जाती हैं ।

तुर्किस्तान के अन्य कई प्रदेशो मे भी हीग की कई जातिया पाई जाती हैं। इस स्थान से प्राप्त हीग को वाह्लीक और अफगानिस्तान, पाचाल इत्यादि देशो से प्राप्त हीग को रामठ कहते है।

इतिहास : हीग का प्रयोग भारतवर्ष मे कई शताब्दियो से होता चला आ रहा हैं। चरक व सुश्रुत मे इनके प्रयोग का विवरण मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि इसका प्रयोग भारतीय चिकित्सक ईसा के कई शताव्दी पूर्व से करते चले आ रहे है। भारतीय निघंटुओ मे इसका विवरण विशेष प्रकार का मिलता है। इस प्रकार भारतीय चिकित्सक सहस्रो वर्ष से इसका प्रयोग करते हैं। जब कि यूरोप मे इसका प्रयोग मध्यम युग से ही मिलता है।

इसका कई गणो मे उपयोग किया गया है जैसे ६ संज्ञा स्थापन, दीपनीय, कटुक स्कन्ध, पिप्पल्यादि और ऊपकादि गणो मे इसका प्रयोग मिलता है। इसके नाम मे भी वाह्लीक लिखा होने से यह भी सत्य है कि इसके स्थान का पता था। प्राचीनकाल मे वाह्लीक भारतीय सीमा मे आता था ऐसा पुराणो की कथाओ से ज्ञात होता है।

संग्रह : हीग के पेड़ छोटे कद के कम ऊँचे होते है। यह सात-आठ फीट या १० फीट तक ऊचे-ऊंचे होते हैं। इसके मूल व काड से एक प्रकार की गध निकला करती हे। इसकी जड मोटी और कदाकार होती है। इनका सग्रह वसत ऋतु मे किया जाता है। इस निमित्त वृक्ष के ऊपरी भाग को काट दिया जाता है तव उससे दूध निकल कर सूख जाता है और इनका संग्रह किया जाता है। इसी प्रकार कई वार काट-काट कर इनका सग्रह किया जाता है। हर बार नये स्थान से इसे काटते हे और इसका दूध सग्रह करते है।

प्रथम बार का सग्रह उत्तम समझा जाता है। दूसरी विधि मे केवल काड व मूल पर ही चीरा लगाते है। और नीचे गढा खोद देते है। और दूध बरावर निकल-निकल कर एकत्र होता है। इस प्रकार के हीग मे मिट्टी व ककड का भाग होता है। प्राचीन काल मे वोलन व खैवर दर्रे से होकर इसका व्यापार होता था।

पहचान : हीग दो प्रकार का वाजार मे पाया जाता है। छोटे-छोटे निर्यास के रूप मे व जमे हुए थक्के के रूप मे जो पाच-सात मिलीमीटर के आयताकार रूप मे मिलता है। पहले वार का बनाया या एकत्र किया हुआ हीग श्वेत पीत वर्ण का होता है। अन्तिम बार का पीले रंग का होता है।

हींगु :

यह अपारदर्शक होता है। ग्रिनिथेद का कहना है कि लाल रंग का हीगु फेरुला का और भूरा वर्ण बेरुला का होता हैं। गधकाम्ल मे डालने पर व धो देने पर यह पाटल वर्ण का हो जाता है। ५० प्रतिशत शोरकाम्ल के डालने पर यह हरा रग देता है। हीग तोडने पर कडाई से टूटता हे एमोनिकम के डालने पर यह मृदु हो जाता है। थक्का भी तोडने पर ऐसा ही होता है। किन्तु इसमे ककड पत्थर मिला होता है। बाजारो मे कई प्रकार के नकली व बनावटी हीग मिलते है। लाल, पीले, सफेद आदि। नकली हीग को बनाने के लिए किसी गोद के साथ मिला कर जरा लाल रग देकर मोटे-मोटे थक्के बनाये जाते हैं। इसमे रसोन की सी गंध आती है। जल मे घुलाने पर यह दूधिया रग का हो जाता है। ९० प्रतिशत अलकोहल मे यह घुलनशील है। जलाने पर भस्म जिसमे कम मिलता है वही उत्तम होता है। कई व्यापारियो का मत है कि भस्म अवशिष्ट नही होना चाहिए। परन्तु १५ प्रतिशत तक भस्म का होना हानिकारक नही है।

सगठन :

इसमे एक प्रकार का उडनशील तैल होता है। राल ५० प्रतिशत।

एसोरेजिनल फैरुलेट १६ ५२ प्रतिशत।

फ्री फेरुलिक एसिड १ ३२ प्रतिशत।

ईथर, सोल्यूबल रेजिन १ प्रतिशत। गम व अशुद्धिया ३१ प्रतिशत कुछ गंधक का भाग।

फेरुला गाल बेनम

स्थान : यह एक प्रकार का हीग ही है जो कि फेरुला गाल बेनम से प्राप्त होता है। यह भी हीग के साथ या पृथक ही बेचा जाता है। यह गाल बेनम फुवा के वृक्षो से चीरा लगा करके एकत्र किया जाता है। यह भी नैसर्गिक क्षीर के संग्रह से ही प्राप्त किया जाता है। कुछ लोग इसके पेड पर थोडी-थोडी दूर पर चीरा लगा कर एकत्र करते है। और क्षीर को सुखा लेते है कभी कभी पेड के नीचे गढा खोद कर ऊपर चीरा लगा देते है। और क्षीर सग्रह होने पर इसे एकत्र कर लेते है और सुखा देते हैं।

पहचान :

यह तोडने पर भूरे रग का होता है। यह चीकट व सान्द्र होता है अधिक चिपकता है। यह दबा कर फैलाया जा सकता है। इसमे मिट्टी, फल व त्वक्

मिले होते है। इसको अमोनिया के अल्कोहलिक द्रव मे डालने पर वैजनी रंग का हो जाता है या झाग देता है।

संगठन : इसमे उडनशील तैल ६३ प्रतिशत।
गम व मिट्टी आदि २७ प्रतिशत मिलता है।

गुग्गुलु

वर्ग : वातसंशमन वर्ग।

आकृति विज्ञान : यह बालसमोडेन्ड्रन मुकुलनामक वृक्ष का गोद है। यह निर्यास थक्को मे छोटे या बडे जमाव के रूप मे पाया जाता है। इसका वर्ण पीला स्वर्णाभ कण समूह से पूरित होता है। इसके पेडो के ऊपर चीरा लगाकर प्राप्त किया जाता है। कभी-कभी पेडो के नीचे की जमीन साफ करके इसके काण्ड के ऊपर चीरा लगा देते है फिर इसका निर्यास एकत्र होकर गढो मे सूख जाता है। अत इसमे मिट्टी भी मिली हुई होती है। तोडने पर यह भीतर से रक्त पीत वर्ण का दिखाई पडता है। इसका कोई नियमित आकार नही होता। इसमे पेड की पीली त्वचा, लकडी और कंकड मिले होते है। आर्द्र करने पर यह फूल कर दुग्धाभ हो जाता है। यह रालजातीय अनियमित कणो का संगठित पदार्थ है।

वर्ण परिज्ञान : पीतारुण वर्ण होता है। दबाने या चूर्ण करने पर श्वेत और चूर्ण अधिक इकट्ठा होने पर भी श्वेत वर्ण का दिखाई देता है।

कपे : पीत श्वेत वर्ण का।

दाहे : दग्ध करने पर श्वेत व कृष्ण वर्ण का।

भंगे : पीतारुण वर्ण।

क्वाथ : दुग्धवत श्वेत।

तैल : तैल मे धूम्रवर्ण।

घृत : मे श्याम वर्ण का होता है।

ज्वाला : ज्वाला का वर्ण अधिक श्वेत वर्ण।

घुलनशीलता उष्ण जल मे घुलनशील है। तैल, घृत मे भी घुलनशील है। किन्तु अल्पाश मे।

गंध : प्रकृत वर्ण व गध सुगंधयुक्त, हृद्य गंध देता है।

धूपन करने पर यह सुगंधयुक्त गध बिखेरता है। आग मे रखने पर प्रथम यह पिघलता है। पश्चात धूम गहरे श्वेत वर्ण का देता है। फिर ज्वलित हो जाता है। टेस्ट ट्यूब मे रखकर जलाने पर यह प्रथम श्वेत वर्ण का धूम देता

है अधिक एकत्र होने पर इसमे ज्वाला लगाने पर ज्वलित हो जाता है धूम टेस्ट ट्यूब मे जल कर एक स्थाई लाल रग का तैल विन्दु रूप मे एकत्र हो जाता है।

रस विज्ञान : प्रथम यह मुख रस मे घुलता है। तवतक ईपत् कपाय रस ज्ञात होता है। इसके पश्चात् तिक्त कटुरस व जिह्वा पर चिमि चिमायन प्रगट करता है। अन्त मे तीक्ष्ण असह्य होता है। तिक्त अविक उससे कम और पश्चात किंचित कपाय रस ज्ञात होता है। जव वृक्ष से ताजा निकलता है यह प्रथम मवुर कपाय पश्चात तिक्त कषाय होता है।

स्पर्श विज्ञान : गुग्गुलु के कण जमकर सूखने पर स्पर्श मे कठिन स्निग्ध पिच्छिल सान्द्र तथा भार मे गुरु होता है।

शब्द विज्ञान : ज्वलन काल मे चिरचिराहट पैदा करता है। यह भगुर होता है।

भौतिक गण : प्रायशः तिक्त, कटु और कुछ कपाय होने से यह आग्नेय वर्ग का होता है।

गुगुल का नैसर्गिक वर्ग वरसीरेसी है।

कुमारीसार या एलुवा

प्राप्तिस्थान : एलुवा घृतकुमारी के स्वरस से सगृहीत होता है। इसकी १६० जातिया पाई जाती है। उनमे से अधिकतर उष्ण देशो मे पाई जाती है। विशेपकर भारतवर्ष और अफ्रिका मे। इसकी कुछ जातियाँ यूरोप, पूर्वी व पश्चिमी द्वीप समूहो मे भी पाई जाती है। यह एक प्रकार का विचित्र पौधा है। जो कम पानी के प्रदेशो मे उत्पन्न होता है। इसकी पत्तिया मोटी तथा दृढ और किनारो पर काटो से युक्त होती है। इनमे से कुछ तो वहुत ही छोटी जाती के और कुछ वहुत वड़े आकार के होते है। इनके बीच से एक पुष्पदड निकलता है, जिसके ऊपरी भाग पर पुष्पो का समूह लगा होता है। इसका ऊपरी भाग पुष्प मंजरी का स्वरूप धारण करता है। पुष्पो का वर्ण लाल होता है यह देखने मे वहुत ही सुन्दर दिखाई पड़ता है। कई प्रकार की इसकी जातिया विशेष मिलती है। यथा

१ एलो पेरियाई।

२ : एलो वेरा।

३ एलो चाइनेसिस।

४ एलो फेरोक्स।

५ : एलो अफ्रिकाना।

एलो पेरीयाई : यह बहुवर्षीय क्षुप होता है। काड १५ से २० मीटर ऊँचा, पत्तिया पीत हरित व लाल वर्ण की तीक्ष्णाग्र और कटकयुक्त होती है। पुष्प रक्त और पीत होते है।

एलो वेरा : यह उत्तरी अफ्रिका मे खेती से प्राप्त होता है। काड ३० से ६० से० मी० ऊंचे हरी पत्तियो से युक्त जो १५ से ३० मिली मी० लम्बी होती है। जिसके किनारो पर कटक समकोण रूप मे रहते है। पुष्प पीला होता है।

एलो चाइनेंसिस : वेकर और एग्लर इसे दो का भेद मानते है। इसकी पत्तियाँ वेरा से छोटी होती है। इसका सर्वप्रथम ज्ञान चीन से हुआ था। अतः इसे चाइनेंसिस कहते हैं।

एलो फेरोक्स : यह दक्षिणी अफ्रिका मे अधिक पाया जाता है। यह ८ से १८ फीट ऊंचा होता है। इसके पत्र बहुत घने और पुष्प श्वेत वर्ण के होते है। पत्रो की लम्बाई १५ से १७ से० मी० होती है।

एलो अफ्रिकाना : यह अफ्रिका मे पाये जाते है। इसके क्षुप छोटे पेडो की तरह होते है।

भारतीय एलो : भारतवर्ष मे उपर्युक्त सब किस्मे पाई जाती है। राजस्थान, सौराष्ट्र के भागो मे इनकी उत्पत्ति अधिक होती है। सामान्यतया जहा की भूमि ऊसर हो ऐसे स्थानो मे इसकी प्रचुर मात्रा पाई जाती है। एलो वेरा और चाइनेसिस भी इन्ही स्थानो मे पाये जाते है।

एलो फेरोक्स : भारतवर्ष मे बहुतायत से उन प्रदेशो मे पाया जाता है जहा की भूमि उपजाऊ हो इसकी ऊँचाई ६ व ५ फीट तक होती है और इसके पत्र ३ से लेकर ४ फीट तक लम्बे, नोकदार, किनारो पर मुडे हुए काटो से युक्त गहरे हरे वर्ण के होते हैं। इनके बीच-बीच में सफेद रग की धारियाँ होती है। ये १ से २ इच तक मोटी होती है।

इतिहास : घृतकुमारी भारतवर्ष मे सुपरिचित औषधि है। वेदो के काल मे ही इसका व्यवहार होता है। ईसवीय सन् ५०० वर्ष पूर्व मे इसका व्यवहार औषध रूप मे प्राप्त होता है।

इतिहास : ब्रिटिश फार्माकोपिया मे इसको सबसे पहले १९४८ ईस्वीय मे समाविष्ट किया गया था। कहानियो से द्वारा ऐसा जान पडता है कि इसका ज्ञान निग्रो लोगो को ईस्वीय सन् से चार शताब्दी पूर्व ज्ञात था और सिकन्दर महान ने इसे पूर्व के देशो से लाकर अपने यहाँ लगवाया था। और उसकी खेती भी की जाती थी। दशवी शताब्दी मे इसका ज्ञान इग्लैड मे हुआ था। इस्ट इण्डिया

कम्पनी के रिकर्ड मे ऐसा ज्ञात होता है कि १७वीं शताब्दी में इसका व्यापार किया जाता था।

संग्रह विधि : यद्यपि इनकी पत्तियो का प्रयोग औषधार्थ हुआ था। ताजी औषधि ही काम मे लाई जाती थी। किन्तु उसके व्यापारिक क्रम के लिए इसको सुखाकर सग्रह किया जाता है। जिसे मुसब्बर या एलुवा के नाम से पुकारा जाता है। सबसे पहले इसको अरबी व्यापारियो ने लालसमुद्र के रास्ते जजीबार और बबई मे पहुँचाया था। इसका व्यापार बड़े-बड़े पीपो मे अथवा चर्म के थैलो मे होता था। यह उस समय भी गीला रहता था और पुन. सुखा कर काम मे लाते थे। इसमे एक प्रकार की गध होती है। कई प्रकार की मुसब्बर की जातियाँ बाजार मे मिलती है। यथा :

१ : पूर्वी अफ्रिका का एलुवा।
२ . जजीबार का एलुवा।
३ क्रेप का एलुवा।
४ : पश्चिमीय द्वीप समूहो का एलुवा।

वर्तमान काल मे एलुवा की प्राप्ति भारतवर्ष मे बाहर के बाजारो से ही होती है। यद्यपि भारतवर्ष मे इसकी सारी जातिया पाई जाती है और हजारो मन एलुवा जो बनता है उसकी घृतकुमारी नष्ट हो जाती है। परन्तु किसी भारतीय के मन मे इसके व्यापार की बात न सूझी।

विधि : प्राय प्रत्येक देश मे एलुवा सग्रह करने की विधि एक ही है। यथा : जमीन के भीतर २० इच लंबा और ६ इञ्च गहरा गढा खोद कर उसमे बकरे का चर्म या कैनवास का टुकडा रख देते है और इसके ऊपर ताजी कटी हुई पत्तियो को इस प्रकार एक दूसरे के ऊपर रख देते हैं कि पत्ते का चौडा भाग गढे की तरफ रहे। एक बार मे २ या ३ सौ पत्तो को तर-ऊपर रख देते है। धीरे-धीरे रस चूकर गढे मे एकत्र होता है। अच्छे मौसम मे सारा रस ६ से ८ घटे मे नितर जाता है। इसके बाद इसके रस को एक टीन मे डालकर मद आच पर पकाते है। धीरे-धीरे इसको गाढा होने देते है, इसको बराबर चलाते रहते है और बीच-बीच मे उठाकर देखते रहते है जब इसकी चासनी गाढी हो जाती है और पानी मे डालने पर जम जाती है एवं सरलता से टूट जाती है तो इसे ठीक समझते है और भिन्न-भिन्न प्रकार के डिब्बो मे सग्रह कर लेते हैं।

रासायनिक परीक्षा :

सामान्य प्रतिक्रिया : १ ग्राम औषधि को १०० मिलीग्राम औषधि मे

उबालते हैं और उसे छान लेते है । इस पर भिन्न-भिन्न रसो की प्रतिक्रिया भिन्न प्रकार की होती है ।

१ : शार्टेन की परीक्षा : छना हुआ विलयन ५ मिलीग्राम मे । .२ ग्राम सुहागा को मिलावे । तब तक ताप दे जब तक कि घुल न जाय । इसकी कुछ बूंदें जल भर कर डाले तो उसमे हरा झाग दिखाई देगा ।

२ : ब्रोमिन टेस्ट : एलुवा के २ ग्राम विलयन मे ब्रोमिन का ताजा किया हुवा विलयन डाले ।

हीराबोल की परीक्षा

वर्ग : गुग्गुल्वादि ।

आकृति विज्ञान : यह एक प्रकार के गूगलजातीय वृक्ष वालसमोडेंड्रन-मिर्हं नामक एक वृक्ष की गोद है जो कि वृत्ताकार छोटे-छोटे गोद के समूह के थक्को से जमा हुआ गोद का जमाव है । यह छोटे-छोटे टुकडो मे पीले लाल रंग के निर्यास के रूप मे मिलता है । गोल-गोल कणो के जमाव के कारण यह विषम सतह वाला होता है । स्पर्श मे यह खुरदरा और रूक्ष होता है । इसका वर्ण पीले लाल रंग का होता है । इसके साथ चिपके हुये वृक्ष के त्वग्भाग भी सम्मिलित होते हैं । इसके कण अल्प भासुर पारदर्शक होते है । इसमे एक प्रकार की सुगन्ध भी आया करती है । पानी मे डालने पर यह डूब जाता है । यह उष्णोदक मे पूर्णरूप से घुलनशील होता है । तैल व घी मे भी यह घुल जाता है । किन्तु राल का भाग तो घुल जाता है पर निर्यास का भाग नीचे बैठ जाता है ।

घुलनशीलता :

जल : जल मे घुल कर यह दूधिया पीत वर्ण बनाता है गाढा होने पर तो यह हल्के बादामी वर्ण का हो जाता है ।

तैल घृत : तैल व घृत मे धीरे-धीरे मन्द अग्नि देने पर पिघलता है और इसका वर्ण लाल हो जाता है ।

ज्वाला : जलाने पर यह लाल वर्ण की शिखा निकालता है ।

गंध : इसमे मंद सुगंध होती है । जलाने पर यह उग्र गध देता है ।

स्पर्श : स्पर्श में यह खर, कठिन रूक्ष, होता है ।

शब्द : ज्वलनकाल मे कोई शब्द नही देता ।

रस : रस मे यह तिक्त अधिक ईषत् कषाय और मधुर होता है ।

वर्ग : प्रायशः तिक्त, ईषत् कषाय और मधुर होने से यह तैजस वर्ग का है।

द्वितीय भेद :

परिचय . यह एक ओलियोगमरेजिन जाति का भी फोरा मोलमोल नामक पेड के निर्यास का जमाया हुआ थक्का है।

वर्ग : वरसेरेसी वर्ग का है।

प्राप्ति : उत्तरी पूर्वी अफ्रिका व दक्षिणी अमेरिका से प्राप्त होता है।

आकृति विज्ञान : यह जमा हुआ एक अनियमित थक्का है। जो छोटे-छोटे टुकडो के रूप मे पाया जाता है।

वर्ण : रक्त पीत या रक्त व भूरा।

सतह : शुष्क सूक्ष्म कणो से व्याप्त होता है।

शब्द : यह भंगुर होता है। टूटने पर इसकी सतह अनियमित, चमकदार, भूरे वर्ण का अर्द्धपारदर्शक होता है।

गंध : सुगधित।

स्वाद : तिक्त, कटु, सुगंधयुक्त।

घुलनशीलता : पानी मे यह दूधिया इमल्शन की तरह होते है। अलकोहल मे यह कुछ घुल जाता है।

सर्जरस : रेजिन्स (Resins)

परिचय . सर्जरस की प्राप्ति देवदार्वादि वर्ग की यह ओषधियो के निर्यास को परिश्रुत करने के बाद चुवा हुआ राल का अंश है। यह ओलियो रेजिन जाति के पदार्थों के शेष रह जाने पर जम कर बन जाता है।

वर्ग : देवदार्वादि वर्ग।

स्थान : भारत वर्ष, अमेरिका व आल्पस पर्वत से।

आकृति निरीक्षण : यह जमे हुए थक्केदार जमावट के रूप में अनियमित आकार का कोणीय अथवा गोलाकार डडो के रूप मे प्राप्त होता है।

आकार प्रकार : अनियमित विभिन्न प्रकार् के जमावट के रूप मे होता है।

वर्ण : पीला अथवा पीत रक्त वर्ण का।

सतह : चिकना, चमकदार कभी-कभी श्वेत वर्ण की धूलि से युक्त होता है।

भंगे : यह भंगुर होता है।

गध . सुगधित व तारपीन के गध से मिलता जुलता।

स्वाद : जिह्वा पर इसका स्वाद कुछ नही ज्ञात होता है। तैल व घृत मे घुल कर यह तिक्त स्वाद का हो जाता हैं। जल मे यह बहुत कम घुलता है।

घुलनशीलता : यह जल में अल्प किन्तु तैल व घृत मे पूर्ण रूप से घुल जाता है।

तत्त्व : इसमे उबेटिक एसिड, रेजिन, उडनशील तैल व तिक्त पदार्थ रहते है।

वर्ग : प्रायसः तिक्त, ईषत् कषाय होने से यह आग्नेय वर्ग का है।

रासायनिक परीक्षण :

१ : सर्ज चूर्ण को : १ ग्रेन चूर्ण को १ मिलीग्राम एसेटिक एनहाइड्राइड मे मिलाइए। गर्म करिए, ठंडा होने दीजिए। एक बूँद गंधक का तेजाब मिलाइए।

परिणाम : प्रथम पाटल रक्त वर्ण फिर भायलेट व पश्चात भूरा रंग दिखाई पड़ेगा।

२ : १० मिलीग्राम के हल्के पेट्रोलियम मे १-१ ग्रेन चूर्ण को मिलाइये। इसे छान कर कापर एसिटेट द्रव के ·१ प्रतिशत को दूने मात्रा मे मिलाइए। अलग होने दीजिए।

परिणाम : ब्लूईश ग्रीन वर्ण दिखाई पडेगा।

३ : तैल मे घोलिए व गर्म करिए, लाल पीला वर्ण दिखाई पड़ेगा।

४ : शुद्ध घृत मे डालकर घोलिए, गर्म करिए, पीत वर्ण मिलेगा।

५ : इसके चूर्ण को आग पर जलती आग पर डालिए, ज्वलित हो उठेगा।

६ : आग मे डालिए, सुगंधित धूम उठेगा।

शल्लकी निर्यास परीक्षा, बोसवेलिया सेराटा

नाम : शल्लकी निर्यास, कुन्दुरु।

वर्ग : परीक्ष्य द्रव शल्लकी निर्यास है।

वर्ग : गुग्गुल्वादि वर्ग।

आकृति विज्ञान : शल्लकी निर्यास विषमाकृति के छोटे-छोटे टुकडो के रूप मे प्राप्त होती है। यह स्पर्श मे खर और कठिन होते है। इसका वर्ण विषम है। कही यह श्याव, कही पीत श्वेत व रक्त होता है। वर्ण मिश्रित दिखाई पडते है। जब नया होता है तब यह पीताभ रक्त वर्ण का दिखाई देता है। थोडा-थोडा निर्यास निकल कर के एक बडा टुकडा बन जाता है। इसके कुछ टुकडे पीताभ गोल चमकदार होते है। कुछ अर्द्धपारदर्शक होते है। अधिक समय तक वायु

मे रखने पर यह ऊपर से श्वेत वर्ण का दिखाई पड़ता है। पानी मे भिगोने पर यह मृदु और श्वेत वर्ण का दिखाई पड़ता है।

अग्नि के सम्पर्क मे यह स्वयं जलने लगता है। जलते-जलते अंत में कृष्ण वर्ण का अवशेष रह जाता है। चूर्ण करने पर यह सूक्ष्म चूर्ण नही होता। यह आसानी से टूटता भी नही।

छेदन : छेदन करने पर कोई विशेष प्रकार की रचना नही दिखाई पड़ती

परिणाम : सामान्यरूप से इसके टुकडे ३० ग्रेन तक बडे मिलते है।

वर्ण : प्राकृत, श्वेत पीताभ अथवा पीत रक्ताभ।

कर्पे भग्ने : श्वेत पीत।

चूर्ण : श्वेत पीत।

क्वाथ : श्वेत, दुग्ध वर्ण का।

तैल : पीत।

घृत : पीत।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि मे अधिक घुल जाता है।

तैल व घृत : अल्प।

रस : प्रधान रस मधुर। अनुरस : तिक्त व कषाय।

गंध : मृदु सुगंधित, आर्द्र, उग्र गन्धयुक्त ..धूपन मे उग्र गंध।

स्पर्श : कठिन, खर, रूक्ष व गुरु।

शब्द परीक्षा : ज्वलनकालीन शब्द कुछ नही।

गण निर्णय : प्रायशः मधुर और ईषत् तिक्त कषाय होने से यह पार्थिव वर्ग का द्रव्य है।

लोहबान। वेनजोयनम् (Benzoinum)

निर्यास :

नाम : लोह निर्यास शाल निर्यास, लोहबान।

प्राप्ति : यह एक प्रकार का निर्यास है जो कि लोहबान के पेड स्टाईरेक्स वेनजोइन के पेड से प्राप्त किया जाता है। इसके लिये पेड के ऊपर क्षत करके उसका निर्यास निकालते हैं जब यह सूखकर गोद की तरह कडा हो जाता है तब इसको एकत्र कर लेते हैं। व्यापारी इसे सुमात्रा का लोहबान कहते है।

वर्ग : लोहबान वर्ग या स्टाईरेसी (Styraceae)

प्राप्तिस्थान : सुमात्रा व जावा द्वीप।

आकृति विज्ञान : यह निर्यास थक्को के रूप मे ऊँचे-नीचे विषम रूप मे स्थित मिलता है। जिस मे पेड के त्वगीय अंग भी मिले रहते है। यह विभिन्न प्रकार के थक्को के रूप मे ही मिलता है।

वर्ण : भूरे रंग से लाल भूरे ताम्र वर्ण का अपारदर्शक निर्यास के रूप मे मिलता है। इसके भंग श्वेत या रक्तिम वर्ण के होते हैं। यह भंगुर प्रकृति का सरलता से टूट जाने वाला निर्यास होता है।

गंध : इसकी गंध अच्छी व हृद्य होती है। गंध गूगल के गंध से मिलता-जुलता होता है।

रस : ईषत् तिक्त होता है।

घुलनशीलता : जल मे नही घुलता। मुख के लालारस मे भी नही घुलता। अलकोहल या स्प्रिट मे कुछ अंग घुल जाता है।

संगठन : इसमे बेनजोइक एसिड, (Benzoic Acid) सिनेमिक एसिड (Cenemic Acid) सर्ज या राल का अंश (Resin) इस्टर आफ बेनजोइक (Ester of Benzoic) आदि मिलते हैं।

ब्रिटिश फार्माकोपिया मे इसका संगठन निम्न है :

१ : गुगल निर्यासवत द्रव्य १९ से २९ प्रतिशत।

२ : वालसमिक एसिड ३० से ६० प्रतिशत।

रासायनिक परीक्षा :

१ : एक शुष्क टेस्ट ट्यूब मे थोडा सा लोहबान चूर्ण डाल कर गर्म करिये। पहले लोहवान पानी मे पिघलता है। फिर उसमे से श्वेत धूम निकलता है। लिटमस पेपर पर अम्ल का चिह्न देता है। ठंडा होने पर इस पर श्वेत वर्ण की वस्तु जम जाती है।

२ . आधी ग्रेन चूर्ण डालकर उसमे एक प्रतिशत घोल पोटैशियम परमेगनेट का डालिये। १० मिलिग्राम। इससे एक प्रकार का लोहवान का तीव्र गध निकलेगा।

तत्सम तज्जातीय द्रव्य :

१ : स्याम बेनजोइन (Ceam Benzoin) यह स्टाइरेक्स टानकिनेस कैव के पेड से प्राप्त होता है।

२ : पेनांग बेनजोइन : (Penang Benzoin)

३ प्लैबेंग बेनजोइन : (Paleambang Benzoin)

यह तीन प्रकार के लोहबान मिलते है। व्यापार मे पृथक्-पृथक् या लोवान के साथ मिला कर बेचे जाते हैं। इनका पृथक्करण इस प्रकार कर सकते हैं।

स्थान :	वर्ण :	भंग :
१ सुमात्रा, जावा।	रक्त भूरा अपारदर्शक	श्वेत दुग्धवत
२ पेनाग, सुमात्रा	भूरे रङ्ग का	ग्लास की तरह गंधरहित
३ : पैलेम बैग, सुमात्रा	भूरा या लाल ब्राउन	अल्प दर्शक लघुभारी या श्वेत अल्प गन्धी

मधु : हानी : (Honey)

संग्रह : मधु का सग्रह मधुमक्खी की एक जाति एपिस मेलिफिका लिन नामक मक्खी से सग्रहीत होता है। इनका सग्रह मधु के छत्तो मे होता है। यह मधुर, स्वादिष्ट गाढा द्रव होता है।

प्राप्तिस्थल : भारतवर्ष के प्रत्येक स्थान पर मिलता है। केलिफोर्निया, जमैका आदि स्थानो से भी प्राप्त होता है। भारत वर्ष के हरे-भरे जगल इसके प्रधान स्थल है।

मधुमक्खी का जाति वर्ग एपाइडी . होमेनी टेरा।

निरीक्षण : आकृति मे यह एक गाढा, चिकना, अर्द्धपारदर्शक, ताजा रहने पर पीत वर्ण व गरम करने पर लाल हो जाता है। रख देने पर कालान्तर मे इसमे शर्करा नीचे बैठ जाती है। यह गाढे द्रव जाति का द्रव्य है।

वर्ण : देश की स्थिति के अनुसार इसका वर्ण भिन्न प्रकार का होता है। भोरो का श्वेत, मधुमक्खी का लाल वर्ण का होता है।

स्वाद : अति मधुर, कुछ विशिष्ट स्वाद का।

आपेक्षिक गुरुत्व : एक से अधिक होता है।

घुलनशीलता : जल व अलकोहल मे सर्वांश मे घुल जाता है।

संगठन : यद्यपि देशानुसार इसका संगठन भिन्न होता है तथापि निम्न रूप सामान्य होता है।

१ : डेक्सट्रोज ३० से ४० प्रतिशत।

२ : लेव्यूलोज़ ३५ से ४० प्रतिशत।

३ : जल १५ से २० प्रतिशत।

४ : सुक्रोज़, थोडा डेक्सट्रिन, अल्प सुगन्धित द्रव्य व मोम तथा पराग कण।

रासायनिक परीक्षा :

१ : एक भाग मधु मे चार भाग जल का मिलाइए।

२ . परीक्षण नली मे समान भाग द्रव का व फेहलिंग का द्रव डालिए। वाष्प पर गर्म करिए। वर्ण परिवर्तन दिखाई पड़ेगा।

खदिरसार परीक्षा

नाम : खदिर सार, कत्था, खैर।

गण :

चरक : कुष्ठघ्न गण, कषाय स्कध।

सुश्रुत : सालसारादि गण।

प्राकृतिक वर्ग : बब्बूल कुल माइमोसी।

आकृति विज्ञान :

यह एक प्रकार का सार का भाग है जो कि खदिर के काष्ठ से व त्वचा को क्वथित करके रसक्रिया द्वारा घना करके तैयार किया जाता है। घन होने पर इसको जमा करके सुखा कर चतुष्कोण या वर्गाकार चक्रिकाये बना ली जाती है। ऊपर से देखने मे यह घन कृष्ण व लाल वर्ण का दिखाई देता है। तोडने पर यह सरलता से टूट जाता है और किनारो पर कृष्णाभ हल्के कषाय वर्ण का तथा बीच मे यह श्वेताभ दिखाई पड़ता है। बाजार मे यह कई प्रकार के टुकडो मे मिलता है। काले रग के टुकडे, कत्थई वर्ण के टुकडे तथा श्वेत वर्ण के गुलाबी रग के टुकड़े व श्वेत वर्ण के टुकडो मे मिलता है। कुछ कारखाने पपडी की तरह पतले-पतले चौकोर टुकडो मे बना देते हैं। इनमे नकली व मिलावट वाले भी होते है। खदिर के साथ बबूल के छाल को भी पका कर मिला देते है। यह खैर काले वर्ण के व तोडने मे कठिनता से टूटते है।

रस परीक्षा : रस मे कषाय व ईषत् तिक्त होता है।

विलेयता : यह जल मे पूर्ण विलेय है। तैल व घृत मे अत्यल्प घुलता है।

गंध : इसका कोई विशेष गंध नही होता। शुष्क व गधहीन। चूर्ण मे पानी मिला कर सूघने पर मृत्तिकावत सोधा गंध होता है।

स्पर्श परीक्षा : स्पर्श मे कठिन, खर, रुक्ष व होता है।

शब्द परीक्षा : भग्न होने पर चट की आवाज होती है।

वर्ग : प्रायशः कषाय रस होने से यह वायव्य वर्ग का है।

अन्य परीक्षा :

१ : खदिर के घोल मे चीड की लकडी की एक सलाई डुबाकर सुखा दीजिये। इस पर एक बूंद तेजाब का डालिए। लाल रग दिखाई पडेगा।

२ खदिर का एक रत्ती चूर्ण पाच मिलीग्राम गर्म अल्कोहल मे मिलाइये। छानिये। हरा रग मिलेगा।

३ : गैम्बियर परीक्षा : ३ ग्रेन कत्था चूर्ण दो मिलीग्राम अल्कोहल मे

मिलाइये। छानकर इसमें २ मिलीग्राम सोडियम हाइड्रोआक्साइड व २ मि० ग्रा० हल्का पेट्रोलियम मिलाइये धीरे-धीरे हिलाइये। हरा रंग पेट्रोलियम स्तर पर मिलेगा।

अणुवीक्षण परीक्षा : थोडा सा चूर्ण स्लाइड पर रखिये। यंत्र में देखिये। असंख्य छोटे-छोटे सूई की तरह रचना वाले दाने दिखाई पडेंगे।

मोचरस का विवरण

नाम : मोचरस, शाल्मलि निर्यास।

गण :

चरक : पुरीष विरजनीय, शोणितास्थापन, वेदनास्थापन, कषाय स्कंध।

सुश्रुत : प्रियग्वादि।

प्राकृतिक वर्ग : कार्पास कुल।

परिचय : मोचरस यह शाल्मलि का निर्यास है जोकि एक प्रकार के कीट के द्वारा शाल्मलि की शाखाओ पर निर्माण किया जाता है। यह एक प्रकार का काले रग का जमा हुआ सेमल का रस होता है। यह आकार मे विषम ऊँचा-नीचा, काले-भूरे वर्ण का होता है। कुछ लोगो का विचार है कि यह शाल्मलि का निर्यास है परन्तु ऐसा नही होता यह रस का जमा हुआ भाग होता है जो कि चमकदार भूरे रग का, भीतर से खोखला और भंगुर होता है। यह स्पर्श मे रुक्ष, खर, कठिन होता है। आर्द्र करने पर फूल कर चिकना व चिपचिपा हो जाता है। इस पर सलवटे पडी हुई रहती है। तोडने पर स्तर दिखाई पडते है।

वर्ण : इसका वर्ण रक्त कृष्णाभ, चूर्णित दशा मे कृष्ण व भूरा होता है। इसका क्वाथ रक्त वर्ण का व तैल व घृत मे यह लाल कालिमा युक्त होता है। ज्वाला पीत वर्ण की दिखाई देती है।

विलेयता : जल मे अधिक घुलनशील है। घृत व तैल मे अल्प।

रस : प्रायशः कषाय व कुछ मधुर होता है।

गध : मृदु व सुगधित होता है।

स्पर्श : मूर्त गुण . कठिन, खर, रुक्ष व लघु।

शब्द : भगुर।

वर्ग : प्रायशः कषाय व ईषत् मधुर होने से यह वायव्य वर्ग का है।



allingly degenerate descendants of the ıen of the seventeenth and eighteenth enturies who, recognizing no national rontiers in the great realm of the human nind, kept the European comity of that ealm loftily and even ostentatiously bove the rancors of the battle-field. Tearing the Garter from the Kaiser's leg, triking the German dukes from the roll of our peerage, changing the King's illustrious and historically appropriate surname for that of a traditionless locality, vas not a very dignified business; but he erasure of German names from the British rolls of science and learning was a c

our friends' bereavements at their peace value. It became necessary to give them a false value, to proclaim the young life worthily and gloriously sacrificed to redeem the liberty of mankind, instead of to expiate the heedlessness and folly of their fathers, and expiate it in vain. We had even to assume that the parents and not the children had made the sacrifice, until at last the comic papers were driven to satirize fat old men, sitting comfortably in club chairs, and boasting of the sons they had "given" to their country.

No one grudged these anodynes to acute personal grief, but they only em-

ng themselves to pervert their divine stinct for perfect artistic execution to ie effective handling of these diabolical ungs, and their economic faculty for rganization to the contriving of ruin id slaughter. For it gave an ironic edge) their tragedy that the very talents they 'ere forced to prostitute made the prostitution not only effective, but even intersting; so that some of them were rapidly romoted, and found themselves actually ecoming artists in war, with a growing :lish for it, like Napoleon and all the ther scourges of mankind, in spite of iemselves. For many of them there was ot even this consolation. They "stuck ," and hated it, to the end.

EVIL IN THE THRONE OF GOOD

This distress of the gentle was so acute hat those who shared it in civil life, by taking their authors away fron natural work for four critical year only were Shakespears and Platos killed outright; but many of th harvests of the survivors had to be in the barren soil of the trenches this was no mere British conside: To the truly civilized man, to the European, the slaughter of the G youth was as disastrous as the sla of the English. Fools exulted in "G losses." They were our losses as Imagine exulting in the death of hoven because Bill Sikes dealt hi death blow!

STRAINING AT THE GNAT ANI SWALLOWING THE CAMEL

But most people could not co hend these sorrows. There was a ous exultation [illegible]